प्रकाशकः—
मनोहरलाल ऋषभकुमार जैन
फ़र्म लक्ष्मणदास बाबूराम
हालसीरोड, कानपुर
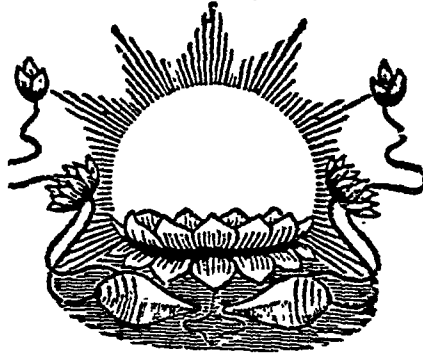
मुद्रक
सुकवि प्रेस, फ़ीलखाना, कानपुर

दो शब्द

जैन-धर्म भारतवर्ष का एक प्राचीनतम धर्म है। जैन सिद्धान्तानुसार इसके प्रवर्तक भगवान् ऋषभदेव (आदिनाथ स्वामी) सृष्टि के प्रथम आरे में उत्पन्न हुए और उन्होंने ही मानव-धर्म संस्थापन की नींव डाली। उनसे लेकर स्वामी महावीर तक चौबीस तीर्थङ्कर हुए जो समय-समय पर मानवीय सभ्यता के विकास में सहायक होते रहे हैं। यद्यपि हमारे सिद्धान्तों और जैन सिद्धांतों में कुछ भिन्नता सी दीखती है, फिर भी हम निस्सङ्कोच भाव से यह कह सकते हैं, कि जैन-धर्म आर्ष धर्म से पृथक नहीं है। कुछ इतिहासज्ञों का मत है, कि इसके आदि

प्रवर्तक भगवान महावीर ही हैं। परन्तु जैन-शास्त्र इनको अपना अन्तिम तीर्थङ्कर मानते हैं।

जैन-धर्म की भी कई शाखाएँ उपशाखाएँ हैं; जैसे—दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरह पंथी आदि। स्थानकवासी सम्प्रदाय के परम प्रचारक श्री जैन-दिवाकर प्रसिद्ध-वक्ता पंडित मुनि श्री चौथमल जी महाराज से जैन-समाज भली भाँति परिचित है। आपके ओजस्वी और तर्क-पूर्ण भाषणों की जैन-जगत् में ही नहीं, किन्तु सारे भारतवर्ष में धूम है। आपकी विद्वत्ता के सम्बन्ध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखलाना है। आपकी व्याख्यान शैली सुमधुर और ललित है। आप लगभग चालीस साल से धर्म-प्रचार कर रहे हैं और भारत के कोने-कोने में आपके पुण्य-कार्यों की चर्चा है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा सेठ साहूकार आपके भक्त हैं। आपके व्याख्यानों से प्रभावित होकर अनेक राजा महाराजों ने अपने राज्य में होने वाली हिंसा को कई अंशों में बन्द कर दिया है। आप जहाँ जाते हैं वहाँ सत्य, अहिंसा, दया का पूर्ण रूपेण प्रचार करते हैं। हिंदू, मुसलमान, ईसाई सभी पर आपका पूर्ण प्रभाव पड़ता है। जहाँ आप चातुर्मास करते हैं वहां आपके दर्शनों को दूर-दूर से हजारों स्त्री पुरुष सपरिवार आते हैं और आपके व्याख्यानों से लाभ उठाते हैं। बहुत से लोग आपके उपदेश से मादक द्रव्यादि का परित्याग करते हैं। अनेक मुसलमान भी मांस - सेवन को सर्वथा त्याग देते हैं। कहां तक कहें आप त्याग और अहिंसा की साक्षात्

मूर्ति हैं और जन साधारण को अहिंसा-व्रत लेने के लिये उपदेश करते हैं। हमारे परम प्रिय मित्र लाला फूलचंद जी भी आप पर एक अर्से से श्रद्धा रखते हैं और प्रायः आपके दर्शनों को जहां आप चातुर्मास करते हैं, जाते रहते हैं। गतवर्ष आपने आगरा में चातुर्मास किया। वहां ला० फूलचंद जी कई बार दर्शनों को गये और मुनि महाराज से क़ानपुर में चातुर्मास करने के लिए प्रार्थना की। भक्तवत्सल मुनि महाराज ने भी परोपकारार्थ प्रार्थना स्वीक़ार कर ली। क्योंकि महाराज का जीवन परोपकार के लिए ही है। हर्ष का विषय है, और कानपुर निवासियों का सौभाग्य, कि इस वर्ष चातुर्मास यहां हो रहा है जिसका जन साधारण पर ख़ासा प्रभाव है। मुनि महाराज ने "भगवान महावीर का आदर्श जीवन", "आदर्श रामायण", "निर्ग्रंथ-प्रवचन" आदि अनेक महत्व पूर्ण ग्रंथों की रचना की है। एवं आपके सुयोग्य शिष्य गणिवर्य साहित्य-प्रेमी पं० मुनि श्री प्यारचंद जी महाराज ने भी अनेक ग्रंथ लिखे हैं। प्रस्तुत पुस्तक "आदर्श-उपकार" भी गणिवर्य जी द्वारा लिखी गई है, जिसमें जैन-दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज के उन प्रभावोत्पादक उपदेशों का संग्रह किया है जो कि राजा महाराजों को दिये गये हैं। तथा उनके व्याख्यानों और पुण्य कार्यों का भी दिग्दर्शन कराया गया है। साथ ही राजा महाराजा एवं अन्य महानुभावों के लगभग चालीस चित्र हैं, जिन्होंने समय-समय पर मुनि महाराज का उपदेश सुना और अपने परवाने अर्पित किये हैं। निग्रन्थ-प्रवचन-सप्ताह के उप-

लक्ष में इस उपयोगी ग्रन्थ का प्रकाशन कानपुर की प्रतिष्ठित फर्म "लक्ष्मणदास बाबूराम" आयरन् मर्चेण्ट (हालसीरोड कानपुर) द्वारा हुआ है। हमारी राय में यह पुस्तक सर्वसाधारण को अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

कानपुर
ता० १४-६-३७ ई० } स्वामी नारायणानन्द

स्व० श्रीमान् हिंदू-
कुल-सूर्य हि०हा०
महाराजाधिराज
महाराना सर
फतहसिंह साहेब
बहादुर जी. सी.
एस. आई.,
जी. सी. आई. ई.,
जी. सी. व्ही. ओ.,
आफ़
उदयपुर (मेवाड़)

जैन - दिवाकर
प्रसिद्ध वक्ता
पण्डित मुनि श्री
चौथमल जी
महाराज

स्व० श्रीमान् हिन्दू कुलसूर्य हि. हा. म. धिराज महाराना सर फतहसिंग साहेब

जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता

आदर्श-उपकार

ॐ णमो उसभाइ महावीराणं

आदर्श-उपकार

——○❀○——

ज्ञानामृतास्वादुरसैक - धाम ,
स्फुरत्प्रभामण्डल द्योतिताङ्गः ।
मनुष्यवृन्दार्चित पाद - पद्मः,
जयत्त्वसौ श्री मुनि चौथमल्लः ॥

पारसोली

संवत् १९५८ बड़ी सादड़ी का चातुर्मास पूर्ण होने पर श्री जैन-दिवाकर' प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमल जी महाराज, वहाँ से निम्बाहेड़ा और चित्तौड़ होते हुए, पारसोली (मेवाड़) पधारे। रावत जी साहब श्री रत्न सिंह जी श्रीमान् मेवाड़ाधीश हिन्दूवासूर्य महाराणा साहब के सोलह जागीरदारों में से एक थे। आप जैन-धर्म से परिचित थे, उसमें आपकी श्रद्धा भी थी। जैन

मुनियों को बड़े आदर-भक्ति की दृष्टि से देखते और उनका सम्मान करते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि जैन साधुओं जैसी त्यागवृत्ति अन्यत्र नहीं पाई जाती। रावत जी साहब के हृदय में जैन-धर्म के प्रति इतनी श्रद्धा और भक्ति तपस्वी महाभागी रत्नचन्द जी महाराज, गुरु जवाहरलाल जी महाराज, पण्डित मुनि श्री नन्दलाल जी महाराज तथा सरल स्वभावी कविवर श्री हीरालाल जी महाराज की सत्सङ्गति के कारण हुई थी।

उपर्युक्त मुनिवरों का रावत जी साहब पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे स्वयम् कहा करते थे, यदि मुझे कोई लकड़ी या पत्थर से मार भी दे, तो मैं उससे बदला लेने की चेष्टा नहीं करूँगा और न कुछ दण्ड ही दूँगा। शिकार खेलने का विचार तो उनके हृदय से बिलकुल निकल ही गया था। यदि उनको जैन श्रावक की पदवी दी जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। क्योंकि उनके आचार-विचार वैसे ही थे, जैसे एक श्रावक के होने चाहिए। एक दिन रावत जी साहब चौथमल जी महाराज से शिक्षा के तौर पर बोले कि आपकी अवस्था अभी थोड़ी है, अतएव जितना भी ज्ञान उपार्जन किया जा सके, कीजिये। इसके साथ ही गुरु की सेवा-भक्ति में तत्पर रहना भी आपका ख़ास लक्ष्य होना चाहिए। आपने दुपहर और सायंकाल को जो व्याख्यान दिये वे बहुत ही उत्तम थे। उन व्याख्यानों को सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि आपकी यही प्रगति रही तो गुरुदेव के शुभाशीर्वाद से, समय पाकर, जैन सिद्धान्तों के धार्मिक क्षेत्र

में आपका एक विशेष और अत्यन्त आदरणीय स्थान होगा। वहाँ से चल कर जैन-दिवाकर जी महाराज संवत् १९६२ में पंचेड़ पधारे।

ठाकुर साहेब का जैन-धर्म से प्रेम

जैन-धर्म की छाया बहुत प्राचीन काल से फैली हुई है, पर पंचेड़ के ठाकुर साहब श्री रघुनाथ सिंह जी और उनके सुयोग्य भ्राता श्री चैनसिंह जी जैन-धर्म से पहले-पहल इसी वार महाराज श्री के द्वारा परिचित हुए। मुनि महाराज के व्याख्यानों और सदुपदेशों का आप पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि आपने कतिपय जानवरों को न मारने की प्रतिज्ञा ही कर ली। अस्तु, जैन-साधुओं में सर्व प्रथम महाराज श्री से ही पंचेड़ के ठाकुर साहब का परिचय हुआ और ठाकुर साहब बड़े प्रभावित हुए। तब से जैन साधु और धर्म के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा हो गई।

वहाँ से संवत् १९६६ में जैन-दिवाकर जी महाराज गोगूँदे गाँव में पधारे। वहाँ के रावजी साहब श्री पृथ्वी सिंह जी और उनके पौत्र श्री दलपत सिंह जी ने उनके व्याख्यानों में योग दिया तथा अच्छी सेवा-भक्ति की। इस व्यख्यान के प्रभाव से राव जी साहब ने प्रति वर्ष दो बकरों को अमर करने की प्रतिज्ञा की जो वहाँ बलिदान किये जाते थे। इस प्रकार वहाँ और भी कितने ही कृषकों ने जीवहिंसा और मदिरा का त्याग किया।

इसके बाद जैन-दिवाकर जी महाराज संवत् १९७० में

तारापुर पधारे । वहाँ पर अठाणें के राव जी साहब की ओर से दो चोबदार आपके पास निमन्त्रण लेकर आये । राव जी साहब ने प्रार्थना की थी कि आपका उपदेश बड़ा सुबोध और व्याख्यान बहुत ही सरस और सरल होता है । बड़ी कृपा हो,यदि आप यहाँ पधार कर हम लोगों को कृतार्थ करें । जैन-दिवाकर जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और अठाणें पधारे । वहाँ राव जी साहब और अन्य लोगों को आपका उपदेश बहुत पसन्द आया । अनेक त्याग हुए और ख़ासा धर्म-प्रचार हुआ ।

पालनपुर चातुर्मास

वहाँ से संवत् १९७२ में जैन-दिवाकर जी महाराज का चातुर्मास पालनपुर में हुआ । जब नवाब साहब को आपके आने की सूचना मिली तो आप एक हाफ़िज़ और एक पण्डित को साथ लेकर उनके दर्शनार्थ आये । नवाब साहब श्रीमान् सर शेर मुहम्मद ख़ाँ जी बहादुर के. जी. सी. आई. ई. आपके सारगर्भित व्याख्यानों को सुनकर बड़े आनन्दित हुए और अपने सौभाग्य को सराहने लगे कि ऐसा सुयोग मिला । व्याख्यान की समाप्ति पर उन्होंने जैन-दिवाकर जी से तात्त्विक रहस्य पर बहुत कुछ वार्त्तालाप किया । नवाब साहब बहुत प्रसन्न हुए और दो ढाई घण्टे तक महाराज श्री की सेवा में ठहरे । जब वे वहाँ से जाने लगे तो उस ओर बढ़े जहाँ मुनि श्री शंकरलाल जी महाराज, मुनि श्री छगनलाल जी महाराज तथा मुनि श्री प्यारचन्द जी

महाराज सिद्धान्त-कौमुदी का अध्ययन कर रहे थे। वहाँ ज्ञान-खाते की एक पेटी रखी हुई थी। उस पर उनकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने पूछा, यह क्या है ? उत्तर में उनसे कहा गया कि जो लोग यहाँ आते हैं वे ज्ञान-वृद्धि के लिए इसमें कुछ न कुछ द्रव्य डालते हैं। यह सुन कर उन्होंने उसमें ४०) डाले। इसके बाद महाराज श्री के पास उनके सन्देश बराबर आया करते थे। व्याख्यान के बारे में वे प्रतिदिन पूछताछ किया करते थे। उनकी कामना तो यही थी कि वे प्रति दिन व्याख्यान सुनें, किन्तु वृद्धावस्था तथा अशक्तता के कारण वे अपनी इच्छा की पूर्ति न कर सके। व्याख्यान में एक दिन फिर आये। उस दिन के व्याख्यान में बहुत उपकार हुआ।

अब शीतकाल शुरू हो गया था। सरदी विशेष न थी। फिर भी, पालनपुर के नवाब साहब ने जैन-दिवाकर जी के लिए दो बहुमूल्य दुशाले मँगवाये और अपने कर्मचारी मघा भाई से कहा—"केम मघा भाई ! आ दुशालानी जोड़ महाराज श्री ए आपीयेते सारी केम।" इसके उत्तर में मघाभाई बोले—"महाराज श्री दुशालानी जोड़े न थी लेता केम के परिग्रहना त्यागी छे। जो ते लेता होत तो अमें शा माटे न थी आपता।" इस पर दरबार ने कहा "तो महाराज श्री नी शूँ भक्ति करीए छीए।" तब मघा भाई बोले—"दया तथा परोपकार मां वधारे लक्ष्य आपवो एज महाराज श्री नी खरी खरे सेवा छे" आदि। यहां का चातुर्मास पूर्ण कर महाराज श्री डीसा केम्प होते हुए धानेरे पधारे। मार्ग में पालनपुर के नवाब

साहब के दामाद श्री जबर्दस्त खां जी ने आकर साक्षात किया। हमारे जैन-दिवाकर जी के उपदेश से उन्होंने कई जीवों पर गोली न चलाने की प्रतिज्ञा की। नवाब साहब पालनपुर ने पहले ही सब राज्य-कर्मचारियों को आदेश देदिया था कि महाराज श्री की सेवा में किसी प्रकार की त्रुटि न हो, तदनुसार राज्यकर्मचारियों ने समुचित प्रबन्ध कर रक्खा था।

देवगढ़ (मेवाड़)

संवत् १९७४ में श्री जैन-दिवाकर जी महाराज देवगढ़ में पधारे और वहाँ सरकारी मकान में ठहरे। वहां के राव साहब श्री विजयसिंह जी, महाराणा उदयपुराधीश के सोलह उमरावों में से हैं। वहां श्री जैन-दिवाकर जी के व्याख्यान की प्रशंसा राव जी साहब तक भी पहुँची। वे जैन - धर्म से सर्वथा अपरिचित थे। पहले एक बार वितण्डावाद करने के लिए उन्होंने कुछ पंडितों को किसी जैन-मुनि के पास भेजा भी था। उसके पश्चात् एक दिन वे स्वयम् भी उसी मार्ग से हो कर निकले जिधर उन मुनि जी का व्याख्यान हो रहा था। वे व्याख्यान-मंडप के निकट आकर कहने लगे कि हम इस मंडप की छाया में हो कर नहीं निकलेंगे, अतः इस पर्दे को हटा दो। उनकी आज्ञा के आगे श्रावक क्या कर सकते थे? लाचार हो कर उन्हें पर्दा खोल देना पड़ा। एक जमाना वह था, परन्तु कुछ दिनों के पश्चात् लोगों ने देखा कि वे ही राव जी साहब व्यख्यान-स्थल पर जन-साधारण के साथ

आदर्श-उपकार

स्वर्गीय श्रीमान् हिंदू-कुल-सूर्य हिज़ हाईनेस महाराजाधिराज
महाराना साहब सर फ़तहसिंह जी साहब बहादुर जी. सी.
एस. आई., जी. सी. आई. ई., जी. सी. व्ही. ओ.
ऑफ़ उदयपुर (मेवाड़)

उसी छाया में बड़ी प्रेम-भक्ति से बैठ कर व्याख्यान सुनते थे। इतना ही नहीं, वे व्याख्यान के सिवाय और समय में भी आकर महाराज श्री से उपदेश-लाभ लेते थे और शंका-समाधान किया करते थे। कुछ दिन के बाद आपके रनिवास की रानियों ने भी महाराज श्री से यह प्रार्थना की कि हम भी आपके उपदेशामृत की प्यासी हैं। महाराज श्री ने यह प्रार्थना स्वीकार की। राव जी साहब ने सर्व-साधारण को व्याख्यान सुनने के लिए अपने महलों में आने की आज्ञा दे दी। बहुमूल्य गलीचे बिछाये जाने के बाद वहाँ महाराज श्री को आदर पूर्वक लिवा ले गये। किन्तु वहां की सजावट देख कर महाराज ने अपने आसन के सारे बिछावन हटवा दिये और अपने नेश्राय के वस्त्र बिछा कर विराजमान हुए। यह देख कर राव जी साहब ने भी अपना गलीचा उठवा दिया और सर्व-साधारण की तरह बैठ गये। मधुर मनोहर मंगलाचरण के साथ महाराज श्री ने व्याख्यान शुरू किया। महाराज श्री ने अपने इस व्याख्यान में ॐकार शब्द की मार्मिक व्याख्या की। व्याख्यान सुन कर राव जी साहब बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने साल के अधिकांश मासों में क़तई शिकार न करने और हमेशा के लिए कुछ जानवरों को न मारने की प्रतिज्ञा की। गाँव में आपके और भी कुछ व्याख्यान हुए। अनन्तर जैन-दिवाकर जी ने अकस्मात् वहाँ से विहार कर दिया। जब यह ख़बर राव जी साहब को मिली तो वे शीघ्र ही ५०-६० आदमियों को साथ ले कर बड़े बाग़ पर महाराज श्री की सेवा में आये।

राव जी साहब बड़े प्रतिष्ठित हैं और जब कभी जहाँ कहीं भी जाते हैं तो आपके साथ ५०-६० व्यक्ति हमेशा रहते हैं। किन्तु देर हो जाने से महाराज श्री न जाने कितनी दूर पहुँच जायँ—यह सोच कर साथ के लोगों को छोड़-छाड़ आप अकेले बड़ी ही शीघ्रता से महाराज श्री के निकट पहुँचे और अनुनय-विनय कर आपको पुनः नगर में वापस ले आये।

अस्तु, महाराज श्री फिर वहाँ कुछ दिन और विराजे। फिर वहां से बिहार कर रायपुर होते हुए कोसीथल पधारे। वहां ठाकुर साहब श्री पद्मसिंह जी के सुपुत्र श्री जवानसिंह जी तथा उनके छोटे भाई दोनों महाराज श्री के दर्शनार्थ आये। वहां से विहार कर आप चित्तौड़ पधारे। संवत् १६७५ में देवगढ़ के राव जी साहब ने अपने राज-कर्मचारी को महाराज श्री की सेवा में भेज कर निवेदन करवाया कि मुझे उदयपुर जाना आवश्यक है, अतः जल्दी पधार कर दर्शन दें। तदनुसार श्री महाराज देवगढ़ पधारे और सरकारी मकान में ही ठहरे। सब जगह की भांति आबादी के अनुसार वहां भी जनता ख़ूब आती थी। राव जी साहब ने दो-तीन दिन सेवा-भक्ति की। उनकी इच्छा थी कि आप कुछ दिन और ठहरें, किन्तु अवकाश कम होने से आप और अधिक न ठहर सके। यहां से चलकर महाराज श्री उदयपुर पहुँचे। वहां पर हिन्दवासूर्य महाराणा श्री फ़तह सिंह जी के ज्येष्ठ भ्राता महाराज हिम्मत सिंह जी ने महाराज श्री की प्रेमपूर्वक सेवा-भक्ति की और हाकिम मानसिंह जी गिराही ने भी सेवा का लाभ लिया।

जोधपुर चातुर्मास

अनन्तर संवत् १९७७ में महाराज श्री ने जोधपुर में चातुर्मास किया। वहाँ पर आपकी सेवा में रहने वाले तपस्वी फौजमल जी महाराज ने ६७ दिनों की तपस्या की। जब तपस्या का पूर निकट आया तो उस दिन जीव-हिंसा बिलकुल न होने देने के लिये प्रयत्न किया गया। ओसवाल लोग मिल कर राजसभा में गये। वहाँ उन्होंने तपस्या का वृत्तान्त सुना कर अगते के लिये प्रार्थना की। उनकी यह प्रार्थना स्वीकृत हुई। हिज़ हाइनेस लेफ्टिनेएट जनरल महाराजा सर प्रतापसिंह जी बहादुर, जी० सी० एस० टी०, जी० सी० व्ही० ओ०, जी० सी० बी०, एल० डी०, डी० सी० एल०, ए० डी० सी० नाइट आफ़ सेएट जॉन आफ़ जेरुसलेम, रिजेएट आफ़ मारवाड़ स्टेट ने शहर कोतवाल के द्वारा घोषणा करा दी कि अमुक दिन हिंसा बिलकुल बन्द रहे। दो-एक क़साइयों ने कहा कि हाकिमों के यहां तथा सरकारी रसोड़े में जाता है। तब श्री मंगल चन्द जी संघवी ने टेलीफोन द्वारा श्री प्रताप सिंह जी से पूछा और श्री जालिम सिंह जी को सूचना दी। उत्तर आया कि कहीं नहीं लिया जायगा। यहां तक कि शेरों को भी मांस के बदले दूध दिया गया। इस प्रकार उस दिन क़साइयों ने हिंसा तथा हलवाई, भड़भूजे, तेली, तमोली, लोहार आदि सबने अपना कार्य बन्द रक्खा। क़साइयों के २०० बकरों के प्राण बचाये गये। और राव राजा रामसिंह जी ने ३० बकरों को अभय दान दिया।

संवत् १९७८ में महाराज श्री घटियावली पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब श्री यशवंत सिंह जी तथा उनके काका श्री जालिम सिंह जी नियमित रूप से व्याख्यान सुनते थे। ठाकुर साहब ने परिन्दे जानवरों को न मारने की प्रतिज्ञा की। श्री जालिम सिंह जी ने शेर, सुअर तथा परिन्दे जानवरों को न मारने की प्रतिज्ञा की और श्री कालूसिंह जी ने चार जानवरों के अतिरिक्त किसी जीव को न मारने की प्रतिज्ञा की।

रतलाम-नरेश

अनन्तर जैन-दिवाकर जी रतलाम पधारे। वहां आश्विन कृष्णा १२, तारीख २८ सितम्बर, सन् १९२१ को हिज़ हाइनेस कर्नल (अब मेजर जनरल) महाराजा सर सज्जन सिंह जी, के० सी० एस० आई०, के० सी० व्ही० ओ० आदि रतलाम, अपने कौन्सिल के मेम्बरों, सरदारों और अफ़सरों के साथ व्याख्यान सुनने को पधारे। सरकार का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था, औषधि का सेवन हो रहा था, तो भी १॥ घण्टे तक विराज कर बड़े ध्यान से व्याख्यान सुनते रहे। बीच-बीच में ३-४ बार जैन-दिवाकर जी ने व्याख्यान समाप्त करना चाहा, किन्तु श्रीमान् महाराजा साहब ने वैसा न होने दिया। अन्त में व्याख्यान समाप्त हो जाने पर आपने जैन-दिवाकर जी से निवेदन किया—अभी तो आप विराजेंगे ही। मैं फिर दर्शन-लाभ लूँगा। वहां से चल कर आप सारङ्गी पधारे। वहां के ठाकुर

साहब ने बड़ी श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित की। एक दिन वहां 'पर-स्त्री-गमन-निषेध' पर महाराज श्री का ओजस्वी भाषण हुआ। इस व्याख्यान के प्रभाव से अनेक लोगों ने पर-स्त्री-गमन न करने की प्रतिज्ञा की। व्याख्यान की समाप्ति पर ठाकुर साहब की ओर से एक पत्र आया। ठाकुर साहब ने लिखा था—

श्रीमान् महाराज चौथमल जी जैन श्वेताम्बरास्थानक-वासी की सेवा में—

आप कृपापूर्वक मेरे गाँव में पधारे। व्याख्यान सब पक्षपातरहित एवम् उपदेशपूर्ण थे। अवसर न होने से आपका विराजना अधिक न हुआ। इससे मैं असन्तुष्ट रहा। आज आपने जो व्याख्यान 'पर-नारी-गमन' पर दिया वह तो महत्त्वपूर्ण हुआ। मुझे यह लिखते बड़ी प्रसन्नता होती है कि आप में विषय को समझाने की ऐसी उत्तम रीति है, कि जिससे हर एक बात मनुष्य के हृदय पर असर कर जाती है। यहां की जनता को आपने धार्मिक और शारीरिक पतन से बचाया। इसके लिये कोटिशः धन्यवाद। मैंने उस समय प्रतिज्ञा नहीं की थी। इससे सम्भव है, आपको शंका उत्पन्न हो, किन्तु उसका कारण था। और वह यह है कि मैं क्षत्रिय हूँ। क्षत्रिय-धर्म में पर-स्त्री-गमन-निषेध है। उस पर मुझे एक कविता (पद्य) याद है। मैं इसको हमेशा ध्यान में रखता हूँ और उसका पालन करता हूँ।

छप्पय

यह विरद रजपूत प्रथम मुख झूँठ न बोले।
यह विरद रजपूत काछ पर-त्रिय नहिं खोले॥

यह विरद रजपूत दान देकर कर जोरे।
यह विरद रजपूत मार अरियां दल मोरे ॥
जमराज पांव पाछा धरै, देखि मतो अवधूत रो।
करतार हाथ दीधी करद, यह विरद रजपूत रो ॥

मेरे इस पत्र में कोई अप्रामाणिक शब्द आया हो तो क्षमा चाहता हूँ।

संवत १९७८ } शुभेच्छु
पौष कृष्ण ६ } जोरावर सिंह, साहरङ्गी

एक दिन महाराज श्री का व्याख्यान 'अहिंसा परमो धर्मः' पर हुआ। ठाकुर साहब के चित्त पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। उसके अनुसार उन्होंने अपनी रियासत में दो सरक्यूलर भी जारी कर दिये।

देवास-नरेश

संवत् १९७९ में महाराज श्री देवास पधारे। वहाँ देवास-नरेश (पांति २) सर मल्हार राव बाबा, के० सी० एस० आई०, ने महाराज श्री की सेवा में पधार कर कुछ प्रश्न किया। महाराज श्री ने यथोचित उत्तर दिया फिर धर्म-धुरन्धर महाराज सर मल्हार राव पँवार, के० सी० एस० आई०, व्याख्यान में भी पधारे। आप जैन-दिवाकर जी के निवास-स्थान पर भी पधारते और अनेक उपयोगी विषयों पर चर्चा किया करते थे। एक बार सरकार ने जैन-दिवाकर जी से प्रार्थना की कि

आप यहां कुछ दिन और विराज कर जनता का अज्ञानान्धकार दूर करने की कृपा करें। इसे उपकार समझ आपने स्वीकार किया। पहले व्याख्यान कन्या-पाठशाला में होते थे, किन्तु जब श्रोतागण अधिक आने लगे तो व्याख्यान तुकोगञ्ज के मैदान में होने लगा। सरकार सर तुकोजी राव बाबू साहिब पँवार, के० सी० एस० आई० तथा इनके छोटे भाई ने व्याख्यानों में योग दिया। इसके बाद महाराज श्री का व्याख्यान राजवाड़े में हुआ, जहाँ सर्वसाधारण को सरकार ने आने दिया। राजवाड़े के व्याख्यान के दिन, महाराजा सरकार साहिब की ओर से, स्थूल पेड़े की प्रभावना बाँटी गई। फिर दरबार ने महाराज से गोचरी की प्रार्थना की। महाराज ने स्वीकार किया दरबार ने विचार-पूर्वक जैन-धर्म की क्रिया के अनुसार आहार दिया। आप जैन-दिवाकर जी को पहुँचाने के लिए खुले पांव राजवाड़े के दरवाजे तक पधारे।

देवास (१) राज्य की ओर से भी एक व्याख्यान के लिए प्रार्थना की जा रही थी। वहां भी राजवाड़े में दो व्याख्यान हुए, जहां स्वयम् हिज़हाईनेस दी महाराजाधिराज सर तुको जी राव बापू साहब पवाँर के० सी० एस० आई०, पधारे। उन्हीं की तरफ़ से स्थूल पेड़े की प्रभावना भी बँटी।

संवत् १९८० में श्री जैन-दिवाकर जी महाराज पिपलोदे पधारे। वहाँ प्रति वर्ष माता जी के यहाँ बकरे का बलिदान होता था। उसको ठाकुर साहब नें जैन-दिवाकर के उपदेश से बन्द

करवा दिया और स्वयम् उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि शेर और सुअर के अतिरिक्त तीतर, कबूतर आदि परिन्दे जानवरों को न मारूँगा। ठाकुर साहब ने जैन-दिवाकर जी से कुछ दिन और ठहरने के लिये आग्रह किया, किन्तु समयाभाव के कारण जैन-दिवाकर न ठहर सके।

अनन्तर जैन-दिवाकर जी महाराज विहार कर तुकोगञ्ज पधारे। वहाँ उनके व्याख्यान के समय कुशलगढ़ के श्रीमान् राव रणजीत सिंह जी व्याख्यान सुनने के लिये आये। व्याख्यान के अनन्तर, मध्यान्ह के समय आप फिर पधारे और धार्मिक चर्चा करते रहे। फिर उन्होंने जैन-दिवाकर जी से क्षेत्र स्पर्शना की आग्रहपूर्वक प्रार्थना की। कहा कि यदि आप पधारें तो बड़ी कृपा हो। क्योंकि मेरी प्रजा को भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो जाय। जैन-दिवाकर जी ने उत्तर दिया कि यह बात सुविधानुसार अवसर पर निर्भर है।

बनेड़ा

संवत १६८१ में जैन-दिवाकर जी महाराज बनेड़े पधारे। यह राज्य उदयपुर में शाहपुरा से उत्तर पूर्व में स्थित है। वहाँ जैन-दिवाकर जी केशरिया जी के मन्दिर में ठहरे। श्रीमान् महाराजा अमर सिंह जी रईस बनेड़ा, ने जब महाराज श्री के व्याख्यान की प्रशंसा सुनी तो वे भी व्याख्यान में पधारे। व्याख्यान सुन कर उन्होंने महाराज श्री के शुभागमन को अपना सौभाग्य माना। उन्होंने महाराज श्री के उपदेशों की सराहना की

हिंदू-कुल-सूर्य हिज हाईनेस महाराजाधिराज महाराना साहब श्रीमान् सर भूपालसिंह जी साहब बहादुर के० सी० आई० ई० ऑफ़ उदयपुर (मेवाड़)

और दूसरे दिन आने का भाव प्रदर्शित कर चले गये। दूसरे दिन आप फिर पधारे। उन्होंने प्रार्थना की कि तीसरे दिन का व्याख्यान नजर - बाग में हो ताकि राज-महिलाएँ भी लाभ ले सकें। ऐसा ही हुआ। सर्वसाधारण लोग भी वहाँ आये। राजा साहब की ओर से दाख-बादाम की प्रभावना हुई। मध्यान्ह को स्वयम् नरेश महाराज श्री के निवासस्थान पर आये और धार्मिक विषय पर वार्त्तालाप करने लगेः—

नरेशः—महाराज, क्या जैन-धर्म बौद्ध-धर्म की शाखा है?

मुनिः—नहीं, जैन-धर्म स्वतंत्र है। बौद्ध-धर्म की शाखा नहीं है। बौद्ध-धर्म में बुद्ध ही पहला अवतार माने गये हैं। और वह हमारे चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी के समकालीन हुए हैं। वैसे तो जैन-धर्म अनादि है। पर अवसर्पिणी काल में जैन-धर्म के सर्वप्रथम अवतार श्री ऋषभ देव हुए हैं। उनको हुए करोड़ों वर्ष हो चुके, जिनका श्रीमद्भागवत में भी कुछ उल्लेख हुआ है। इससे सिद्ध है कि जैन-धर्म प्राचीन और स्वतन्त्र है, न कि बौद्ध-धर्म की शाखा—जैसा कि कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने बिना खोज किये ही लिख दिया था। इसी कारण भ्रम में पड़ कर लोग इसे बौद्ध-धर्म की शाखा बतलाने लगे। परन्तु, अब उन्हें खोज करने से पता चला है कि जैन-धर्म बौद्ध धर्म की शाखा नहीं है, बल्कि उससे बहुत प्राचीन है। इस प्रकार कई प्रमाणों से आपने जैन-धर्म की प्राचीनता सिद्ध की।

नरेशः— महाराज, जीव किसी का मारा मरता नहीं है।

"नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः
(श्रीमद्भगवद्गीता, अ० २, श्लोक २३)

तब आप हिंसा करने से क्यों रोकते हैं ?

मुनिः—आप कहते हैं सो ठीक है। बेशक, जीव किसी का मारा नहीं मरता। वह अजर, अमर और अरूप है। पर स्थूल शरीर के संयोग से आत्मा दुःखी होती है। क्योंकि आत्मा स्थूल शरीर को अपना घर मान कर उसमें निवास करती है। जब उसके शरीर को कष्ट पहुँचता है तो उसके साथ ही आत्मा भी दुःखी होती है। बस इसी तरह आत्मा को दुःख पहुँचाने का नाम ही 'हिंसा' है। मान लीजिये, एक मकान में कोई मनुष्य बैठा हुआ है, उसको आप धक्का देकर बाहर निकालना चाहते हैं। एक तो वह अपनी इच्छा से चला जाय और एक यह कि उसको जबर्दस्ती निकाला जाय—अब आप सोचिए, उसको किस अवस्था में सुख होगा ? इसी तरह सब प्राणी मात्र, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक, आयुष्य रूप अवधि से पहले अपने शरीर को छुड़ाने वाले से क्या दुखी नहीं होंगे ? अतः मनुष्य मात्र का दया करना मुख्य धर्म है। महात्मा तुलसीदास जी ने कहा भी है:—

दया धर्म का मूल है, पाप-मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्रान॥

नरेशः—महाराज, पृथ्वी, वायु और वनस्पति में भी

जीव है, तो सांसारिक अवस्था में रह कर उनकी रक्षा कैसे की जाय ?

मुनि—हाँ, सांसारिक अवस्था में दया का पूर्णतः पालन होना बहुत कठिन है। परन्तु जितना मनुष्य से होसके उतना तो उसे करना ही चाहिये। अकारण एकेन्द्रिय जीवों को सताना महा पाप है ?

नरेश—तो महाराज, आपके द्वारा बिल्कुल दया होती है ?

मुनि—ध्यान तो यही रखते हैं कि हमारे द्वारा जीव हिंसा न, हो। इसीसे आपने देखा होगा कि हम लोगों में बोलने चलने फिरने आदि प्रत्येक अवस्था में पूरी एहतियात रखी जाती है। कोई व्यक्ति हमसे कहीं आने जाने की आज्ञा मांगे या सम्मति ले तो हम उत्तर में 'दया पालो' ऐसा कहते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि हमारे निमित्त से कोई कार्य ऐसा न हो जिससे हिंसा की संभावना हो। कच्चा पानी भी हम इसी लिये नहीं पीते हैं क्योंकि पानी की एक बूँद में ही असंख्य त्रस जीव होते हैं। पहले तो सम्भव है, हमारी ऐसी धारणा पर लोगों को विश्वास न हुआ हो; किंतु, अब तो विज्ञान प्रत्येक बात को स्पष्ट कर रहा है। अभी हाल ही में 'सिद्ध पदार्थ-विज्ञान' नामक पुस्तक इलाहाबाद प्रेस से प्रकाशित हुई है। जिसमें सा० ने सिद्ध किया है कि पानी की एक बूँद में सूक्ष्म यन्त्र द्वारा ३६४५२ जीवाणु चलते-फिरते देखे

गये हैं। उस यन्त्र का चित्र देखिये।

हम लोग छाछ करने अथवा स्नान के निमित्त जो गर्म जल लिया जाता है, उसे अथवा दाख, पिस्ता, चावल आदि का धोवन (जल) लेते हैं। चाहे जितनी ठण्ड क्यों न पड़े परन्तु तीन वस्त्र जो हमने ओढ़ रक्खे हैं इससे अधिक नहीं रख सकते और न ओढ़ सकते हैं। गृहस्थ से भी नहीं मांग सकते और न अग्नि द्वारा ही शीत निवारण कर सकते हैं। हम नाई से बाल नहीं बनवाते, अपने हाथों से घास की तरह उखाड़ डालते हैं। रेल, मोटर बग्घी, हाथी, घोड़े आदि किसी भी प्रकार की सवारी नहीं करते। पैदल ही शहर और गांवों में घूम-घूम कर उपदेश देते फिरते हैं। बोझा उठाने को साथ में आदमी नहीं रखते। गृहस्थ से हाथ-पांव नहीं दबवाते। नोट, हुण्डी, अशर्फ़ी, रुपये, पैसे, कार्ड, लिफ़ाफ़े अर्थात् सप्त धातुओं से बनी हुई कोई भी वस्तु अपने पास नहीं रखते न अन्य किसी से अपने लिए रखवाते हैं। यहाँ तक कि कपड़ा सीने के लिए सुई की आवश्यकता हो तो गृहस्थ से लाते हैं। यदि भूल से वह एक रात भी पास रह जाती है तो एक उपवास का दण्ड लेना पड़ता है। पात्र सब काष्ठ के रहते हैं; क्योंकि तांबे, पीतल, कांसे के पात्र में नहीं खाते और न उन्हें पास रखते हैं। रात को अन्न-जल ग्रहण नहीं करते। दिन में भी एक ही घर

से भोजन न लाकर अनेक घरों से थोड़ा - थोड़ा लाते हैं। इसी लिए इसको गोचरी कहते हैं। हमारे लिए कैसा भी अच्छे से अच्छा क्यों न बनाया गया हो उसे हम नहीं लेते।

नरेश—महाराज तब आप कैसा भोजन करते हैं?

मुनि—जो कुछ गृहस्थी के निमित्त बनाया गया हो उसमें से थोड़ा-थोड़ा लेते हैं। हमारे लिए क्रय-विक्रय करके भोजन दे तो उसे हम अङ्गीकार नहीं करते। गर्भवती स्त्री के हाथ से भोजन नहीं लेते, क्योंकि उसको उठने-बैठने, चलने-फिरने में कष्ट होता है। किवाड़ खोल कर भोजन दे अथवा कच्चा जल, अग्नि, वनस्पति, नमक, बीज, फूल आदि का सङ्घटन कर भोजन दे तो उसे भी हम नहीं लेते। ककड़ी, भुट्टा, खरबूजे, जामफल, सीताफल, नारंगी दाड़िम आदि फलों को नहीं खाते क्योंकि इनमें जीव हैं। बंगाली विज्ञानवेत्ता डाक्टर जगदीशचन्द्र बोस ने वनस्पति आदि में प्रत्यक्ष जीव बताये हैं।

हम गांजा, भांग, चण्डू, चरस, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू और अफीम आदि किसी भी नशीली वस्तु का सेवन नहीं करते। किसी पुष्प की गन्ध नहीं लेते। पुष्प-माला कभी नहीं पहनते। इत्र तैलादि का लेप नहीं करते। हाथ में मोजे और पांव में बूट शू इत्यादि कुछ नहीं पहनते। धूप से बचने को छाता नहीं रखते। जाजम,

कुर्सी, गद्दी आदि पर नहीं बैठते।

इस प्रकार हमारे चरित - नायक महोदय के मुखारविंद से स्थानक वासी साधुओं का आचरण सुन कर राजा साहब चकित हो बोले कि आपकी तपस्या बड़ी कठिन है। इस प्रकार वार्तालाप कर आहार पानी का समय हो जाने पर दूसरे दिन आने का वचन दे पधार गये। दूसरे दिन प्रातः काल व्याख्यान हुआ। राजा साहब की मां साहब की ओर से बादाम खारकों की प्रभावना हुई।

(दूसरा दिन)

नरेश—महाराज ! आपके जैनागम प्राचीन समय के लिखे हुए होंगे ?

मुनि—हां, जी, लगभग १००० वर्ष पहले के। उस समय के ग्रन्थ प्रायः कहीं कहीं मिलते हैं। हमारे पास एक अन्तकृत-जी नामक शास्त्र है जो मूल संवत् १५०० के द्वितीय श्रावण का लिखा हुआ है। (उसे आपने राजा साहब को दिखाया)।

नरेश—महाराज आपके माननीय आगमों में कौन सा आगम बड़ा है ?

मुनि—भगवती जी और पन्नवणादि सूत्र देखिये।

नरेश—श्रीमहावीर स्वामी की जन्मभूमि कहां थी और उन्होंने कब दीक्षा ली तथा कैसे तपस्या की ?

मुनि—इस पर आपने महावीर स्वामी का जीवन, जन्मभूमि

आदि बतलाई और तपस्या के लिए कहा कि उन्होंने ५ महीने २५ दिन की तपस्या सब तपों से उत्कृष्ट की थी। जिसका पारण धनावह सेठ के घर राजा की कन्या चन्दन-बाला के द्वारा हुआ।

नरेश—महाराज! चन्दन बाला राजा की कन्या हो कर सेठ के घर क्यों?

मुनि—सुनिये मैं संक्षेप में आपको उसका वृत्तांत सुनाता हूँ। चम्पापुरी का राजा महाराज दधिवाहन था। उसकी पतिव्रता स्त्री श्रीमती धारिणी की कोख से एक कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम वसुमती था।

धर्मशाली माता-पिता की संतान प्रायः धर्मात्मा ही निकला करती है। क्योंकि ऐसे धर्मात्माओं के यहां ही योगभ्रष्ट आत्माएँ अपने अपूर्ण योग को पूर्ण करने के लिए अवतार लिया करती हैं। वसुमती की आत्मा पूर्व जन्म में एक पदच्युत जीव था। इस जन्म में वह अपने घाती कर्मों को नाश करके मोक्ष-पद को पाने के लिए आई थी।

वसुमती का बाल्य काल शास्त्राध्ययन में बीता। धर्म्म-शास्त्र के ज्ञान के साथ वह जप, तप, व्रतादि धर्म-साधन क्रियाओं में भी बड़ी पक्की थी। अपनी यौवनावस्था में वह संसार में विख्यात हो गई। कारण कि एक तो वह अति रूपवती थी दूसरे यौवन काल, तीसरे ज्ञान की अन्तर ज्योति ने उसके सौन्दर्य को और भी बढ़ा दिया था।

संसार की कैसी विचित्र गति है। सृष्टि-पदार्थों की उन्नति में अनेक बाधाएँ आ पड़ती है, उनको अपने अभीष्ट साधन में तरह-तरह की विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, परन्तु धीर पुरुष ही धैर्य को न छोड़ते हुए दुख-सागर से पार जा सकते हैं—"धीरास्तरन्ति विपदम् न तु दीन-चित्तः"।

वसुमती जैसी कि लोक-प्रिय थी वैसे ही आपत्तियों का पहाड़ उस पर टूट पड़ा, परन्तु धन्य है! वह सती कि उसने धैर्य को न छोड़ा और संसार में हमारे लिए एक दृष्टान्त छोड़ गई।

राजा दधिवाहन का कौशांबी नगरी के राजा शतानिक से किसी कारण वैमनस्य हो गया। राजा शतानिक ने उसके साथ लड़ने का संकल्प किया और बहुत बड़ी सेना एकत्रित की। एक दिन अवसर पा कर चुपके से चम्पा नगरी पर चढ़ाई कर दी और नगर को घेर लिया। राजा दधिवाहन ने अपनी प्रजा की रक्षा के लिए बहुतेरे उपाय किये परन्तु सोये हुए शेर को हरएक मार सकता है। राजा शतानिक की जय हुई और दधिवाहन को नगर छोड़ कर भाग जाना पड़ा। इस प्रकार राजा शतानिक ने उसके नगर में प्रवेश किया, राज्य पर क़ब्ज़ा किया और प्रजा से अपनी आज्ञा का पालन कराने लगा। इसी प्रसङ्ग में राजा शतानिक ने दधिवाहन की रानी और कन्या वसुमती को एक सुभट के साथ कर दिया जो उन दोनों को अपने साथ ले चला। मार्ग में महारानी के अनुपम

आदर्श-उपकार

कर्नल हिज़ हाईनेस राज राजेश्वर सरमादि राजए हिंद
महाराजाधिराज श्री सर उमेदसिंह जी साहब बहादुर
जी. सी. एस. आई. जी. सी. आई. ई.
के. सी. एस. आई. के. सी. वी. ओ.
ए. डी. सी. महाराजा आफ
जोधपुर स्टेट

अनुपम सौन्दर्य्य को देख कर वह मोहित हो गया और उस से प्रतिदान माँगा। परन्तु पतिव्रता-धारिणी ने उसका तिरस्कार किया। कारण—

वरं शृङ्गोत्सङ्गाद्गुरुशिखरिणः क्वापि विषमे।
पतित्वायं कायः कठिनदृषदन्ते विगलितः
वरं न्यस्तो हस्तः फणिपतिमुखे तीक्ष्ण दशने।
वरं वह्नौ पातस्तदपिन कृतः शील - विलयः

"बड़े ऊँचे पर्वत की चोटी पर से गिरे हुए पत्थर से शरीर चूरा-चूरा भले ही हो जाय, तीक्ष्ण दांतों वाले सर्प के मुख में हाथ भले ही दे दिया जाय, अग्नि में हाथ भले ही जल जावे किन्तु, शील का भंग कदापि न होगा यह पतिव्रता स्त्रियों का सिद्धांत है।"

अपने शील की रक्षा करने के लिये धारिणी ने सुभट को बहुत समझाया क्रोध-वश हो कई बातें भी कहीं, परन्तु कामांध सुभट न माना और अयोग्य व्यवहार करने के निमित्त रानी की ओर हाथ बढ़ाया महासती रानी धारिणी ने किसी प्रकार भी अपने शील का बचाव न देखकर मृत्युदेव को अपनी सहायतार्थ बुलाया और आत्महत्या करके अपने शील को बचाया, क्योंकि सतियों की यह रीति चली आई है कि वे अपने शील के बचाने के समय अपने प्राणों की परवाह नहीं करतीं। यह

घटना देखकर सुभट हाथ मलता रह गया और मातृहीन वसुमती बहुत दुखी हुई। इस समय मातृ-स्नेह और वत्सलता के वश हो वसुमती बड़े करुण स्वर में रुदन करने लगी। इस हृदय-भेदक रुदन ने और शोककारक घटना ने सुभट के पाषाण हृदय को भी मोम बना दिया। अब वह सुभट वसुमती को धैर्य देने और कहने लगा—"वसुमती! क्यों व्याकुल हो रही है। शोक छोड़ दे मैं तेरे साथ पुत्री और बहन का सा वर्ताव करूँगा। सुभट के इन वाक्यों को सुन कर और ज्ञान-दृष्टि से शोक को त्याग वसुमती सुभट के साथ चल पड़ी। सुभट ने रानी अर्थात् वसुमती की माता के आभूषण उतार लिये और उसकी मृत देह को रथ से नीचे गिरा दिया और फिर रथ को हांक कर वसुमती को अपने घर ले आया।

एक सुन्दर कन्या के साथ सुभट को आता हुआ देख कर उसकी स्त्री उस पर अति क्रुद्ध हो गई और यद्वा तद्वा बोलना आरम्भ किया। जिसको सुन कर वसुमती को बाजार में जाकर बेच देना चाहिये के खोटे विचार ने उसके हृदय में प्रवेश किया वह उसे बाजार में ले गया और पुकार-पुकार कर कहने लगा "नगर-वासी जनो! एक सुन्दरी दासी बिकती है। जिसको खरीदना हो आ जावे।" इस आवाज को सुन कर बहुत से मनुष्य आ जमा हुए। उनमें एक वारांगना (वेश्या) भी थी जिसने ५०० सोने की मुहरें सुभट को दे कर वसुमती को खरीद लिया और अपने घर ले चली।

अब वसुमती के दुःखों का पारावार न रहा मनुष्य मात्र पर दुःख आते हैं परन्तु उनमें जो धैर्य को नहीं छोड़ता वही दुःखों के दुस्तर समुद्र को सुगमतया पार कर जाता है। वसुमती ने धैर्य को न छोड़ा। पिता का राज्य गया, माता दुख पाती हुई उसके सामने आत्महत्या कर गई। इस असह्य वियोग को उसने सहन किया। दुष्ट-मति दुर्जन सुभट के साथ बाजार में आना पड़ा, यह भी उसने जैसे-तैसे सहा परन्तु एक नीच कोटि की अधम स्त्री के घर में जोकि उसको कारागार से कुछ कम न था, शील और धर्म की रक्षा कैसे होगी, इस महा निरयपात में जीवन के दिन किस तरह बीतेंगे, इस प्रकार के विचारों से उसका धैर्य टूट गया। वारांगना, उसको दासी के तौर पर हाथ पकड़ कर अपने घर लिये जा रही थी कि वसुमती मूर्छा खा कर गिर पड़ी। हा! राज - सुखों को भोगने वाला और बड़े-बड़े योगियों के समान शास्त्रों में रमण करने वाला शरीर जमीन पर पड़ा है परन्तु उस वारांगना ने कोई परवाह न की।

कर्म की गति गहन है संसार के वातावरण में इस प्रकार की अदृश्य सत्ताएँ विचरती हैं जो कि निस्सहायों की सहायता करती हैं। वारांगना के घर की नरक-यातना के ख़याल से वसुमती गिरी ही थी कि तुरन्त उस वेश्या के मुख की भूषण रूप नासिका का कोई अदृश्य सत्ता छेदन कर गई। नासिका - छेदन से उपहास को प्राप्त, हुई वेश्या अपना द्रव्य वापस ले वसुमती को बिना ख़रीदे वहां से चली गई। शील - रक्षक देव ने बन्दर

जैसा रूप बनाकर वेश्या को नोच डाला। वेश्या ने विचारा कि अभी से यह हाल है तो आगे चल कर क्या होगा। अतः वसुमती को वहीं छोड़ गई।

फिर वह सुभट उसको बेचने के लिए दूसरे बाजार में गया। वहाँ एक धनावह नामक बड़ा धनाढ्य बनिया आ गया। उसने पूरे दाम दे कर वसुमती को खरीद लिया। जल से पूर्ण बादलों में पूर्णिमा का चन्द्र छिप गया, परन्तु उसके स्थान में वसुमती का चन्द्र-मुख धर्मशील के प्रभाव से प्रकाशित हो रहा था। उसके शांत मुख से धनावह को बहुत आनन्द मिलता था। वसुमती को दुखी देख कर धनावह ने कहा "पुत्री! तू डर नहीं। हमारे घर में धर्म का पालन होता है और साधु-साध्वियों की सेवा-सुश्रूषा भी यथाशक्ति होती है। तुम जिस तरह से चाहो धर्म करना। हमसे किसी प्रकार का भय न करो। हम तुम्हें अपनी पुत्री की तरह रखेंगे।" उस श्रीमन्त के अमृतमय वचनों को सुन कर वसुमती के हृदय को संतोष हुआ और वह उसके साथ चल पड़ी। धनावह सेठ ने घर आ कर अपनी स्त्री से कहा, "यह कोई अच्छे कुल की कन्या है। मैं इसे पुत्री समझ कर लाया हूँ। इसको तुम अच्छी तरह रखना। आज से हम इसको चन्दनबाला के नाम से पुकारा करेंगे।" सेठ के इस वचन को सुन कर उसकी स्त्री जिसका नाम मूला था, उससे दासी का काम कराने लगी। परन्तु, स्त्री-जाति अज्ञानता के कारण सहज में

मोह ली जाती हैं। दूसरी तरफ़ अपने पति की वसुमती से निर्दोष प्रीति को वह देख न सकती थी। जिसके प्रमाण में चन्दन - बाला के अनुपम सौंदर्य को देख कर उसके मन में शङ्का उत्पन्न हुई कि शायद इस स्त्री के रूप पर मोहित हो कर मेरा पति इसको मोल ले आया है। मूला उस समय तो कुछ न बोली और बदला लेने के लिए किसी अवसर की प्रतीक्षा करने लगी।

सेठ धनावह धार्मिक संस्कार और धर्म-शास्त्र का वेत्ता था और चन्दन बाला एक उत्तम श्राविका थी। इसी लिए वे परस्पर प्रेम-भाव रखते थे और एक दूसरे का मान करते थे। चन्द्रमा के समान शीतल सुश्राविका चन्दन बाला धनावह को पिता के तुल्य मानती थी और धनावह भी वात्सल्य भाव रखता था। चन्दन बाला को धर्माराधन के लिए बहुत अवकाश मिलता था, जिसका वह पूरा-पूरा उपयोग करती थी। सर्व प्रकार के रोगों को छोड़ कर शान्त और पवित्र जीवन विताने और कर्मों को क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्ति के सुसमय की राह देखने लगी। परन्तु जिनका कर्मफल क्षय नहीं हुआ, उनको अपने कर्मों के अनुकूल भोग भोगने ही पड़ते हैं।

एक दिन सेठ बाहर से घर पर आया। उस समय मूला कार्यवशात् बाहर गई हुई थी और चन्दन बाला धर्माराधन में लगी हुई थी। उसने अपने धर्म के पिता को आया जान उठकर योग्य सत्कार किया और बैठने के लिए आसन दिया।

धनावह सेठ अपनी पुत्री के समान उस पर प्यार करने लगा। इतने में मूला बाहर से आ पहुँची। उसने इन पिता पुत्री के पवित्र प्रेम को देख लिया, जिससे उसके दिल में ठहरी हुई शङ्का के विषय में उसको निश्चय होगया और वह विचारने लगी कि "सेठ इस युवती पर आसक्त है और मैं बूढ़ी होगई हूँ इसीसे शायद यह मुझे मारकर इसके साथ व्याह करना चाहता है। मैं यह कदापि न होने दूँगी।" यह सोच कर उसने चन्दन-बाला को नाश करने की दिल में ठान ली। एक दिन धनावह सेठ अपनी दूकान के काम में लगे रहने से घर न आया। मूला ने अपने अभीष्ट साधन के लिये इसे अच्छा समय जान कर एक नाई को बुलाया और चन्दन बाला के केश जो कि इसके सौन्दर्य्य के लिये भूषण रूप थे मुँडवा दिये और उसे बाँध कर घर के अंदर एक कोठरी में डाल दिया। इस महा-यातना से भी धीर हृदय चन्दन बाला को कुछ दुःख न हुआ। क्योंकि यह श्लोक उसको हर प्रकार आश्वासन दे जाता था:—

विपत्तौ किं विषादेन, सम्पत्तौ वा हर्षेण किम्।
भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशीगतिः॥

"विपत्ति में खेद किस बात का और सम्पति आने पर खुशी काहे की? क्योंकि कर्मों की तो ऐसी ही गति है जैसा होना होगा होकर ही रहेगा"।

इस प्रकार विचार करती हुई अपने एकान्त समय का सदुपयोग करने के लिये जिनेश्वर प्रभु की भक्ति में मग्न हो

नवकार मन्त्र का जाप करने लगी।

कार्य्य से निपट कर धनावह सेठ अपने घर आया और चन्दन बाला को न देख कर अपनी स्त्री से पूछने लगा। परन्तु उसने "कहीं यहीं होगी" यह कह कर उसे टाल दिया दूसरे दिन भी इसी तरह हुआ। परन्तु तीसरे दिन उसे इस उत्तर से शान्ति न मिली और वह व्याकुल हो गया। अपनी स्त्री को खूब धमकाया, तब वह कहने लगी कि उसका सङ्गी-साथी आया होगा, जो उसे लेगया होगा मुझे तो कोई खबर नहीं। इतना द्रव्य खर्च कर मैंने लड़की खरीदी थी अब व्यय भी गया और लड़की भी गई जिस के रञ्ज में मैं खुद मर रही हूँ। पर शोक तो यह है कि साथ ही आप भी मुझ पर निकम्मा क्रोध करने लग गये। यह कह कर मूला चुप हो गई।

धनावह सेठ ने उस समय भोजन नहीं किया। और "जब तक चन्दन बाला का मुख न देखूँगा अन्न नहीं खाऊँगा" यह प्रतिज्ञा कर अनशन व्रत धारण कर शोकातुर हो बैठ गया। इतने में एक वृद्ध पड़ोसिन ने आकर सेठ से कहा कि "तुम घर में क्या तलाश करते हो तुम्हारी स्त्री ने जिसका उसके ऊपर पहले ही से द्वेष था उसे बांध कर छिपा रक्खा है।" पड़ोसिन के वाक्य सुनकर धनावह व्याकुल हो गया। फिर उसने घर के बड़े खण्डों के ताले खोल - खोल कर तलाश करनी शुरू की। वह उस कोठरी में भी पहुँच गया जहाँ कि चन्दन बाला

नीचा सिर किये विचार-मग्न बैठी थी। अपनी प्राणप्यारी पुत्री की यह दुर्दशा देख उससे न रहा गया और तत्क्षण नीचे लाया। चन्दन बाला पञ्च परमेष्ठी नमस्कार रूप नवकार मन्त्र का जाप जपती ध्यानस्थ थी। धनावह ने उसे सचेत किया और उसकी इस दशा का कारण पूछा। चन्दन बाला को तीन दिन का उपवास था और शरीर क्षीण हो रहा था, इससे साफ़-साफ़ न बोल सकी, परन्तु मस्तक हाथ पर रख उसने संकेत से कहा, "कर्मों की माया।" विषाद के समुद्र में डूबा हुआ धनावह उसको बाहर लाया, परन्तु दुष्टा मूला सब द्वार बन्द करके बाहर चली गई थी। धनावह सीढ़ियों के नीचे उतर कर आँगन में आया और एक वृद्ध दासी से खाना लाने के लिए कहा। दासी ने कहा "इस समय और कुछ नहीं मिल सकता पर हाँ कुछ उड़द बाकलियां तैयार हैं। यदि आज्ञा दें तो लाऊँ।" धनावह ने कहा, "वही ले आ" वह एक बर्तन में कुछ पकाये हुए उड़द ले आई। धनावह ने उन्हें चन्दन-बाला को खाने के लिए दिया। मगर आज अष्टमी का पारण था और पारने के लिये उसने इस भोजन को स्वीकार किया। परन्तु उस भोजन को उपयोग में लाने से पहिले उसने यह भावना की कि "इस समय यदि कोई मुनि महाराज आवें तो उनका सत्कार कर अपने व्रत का पालन करूँ।"

न वै स्वयम् तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यम् चातिथिभोजनम्॥

लेफ्टिनेन्ट कर्नल हिज़ हाईनेस श्री महाराव सर उम्मेदसिंह
जी साहब बहादुर जी. सी. एस. आई. जी. सी. आई. ई.
जी. बी. ई. कोटा स्टेट

धर्मशास्त्र की यह देशना चन्दनबाला के हृदय में घर कर चुकी थी, इसी लिए उसके हृदय में ऐसी भावनाओं का उदय होता था।

इसी समय एक विचित्र घटना हुई। भगवान् महावीर स्वामी वहाँ भिक्षार्थ आ गये। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की हुई थी कि आज उस स्त्री से आहार लेंगे जो राजपुत्री हो, पर दासी-पद को प्राप्त हुई हो, सिर मुण्डा हो, पावों में बन्धन पड़े हों और आंख में आंसू हों और भिक्षा-काल व्यतीत होने के पीछे यदि उड़द की बाकलियां मिलें तो ही आहार लेंगे। यह भाव करके प्रभु कौशाम्बी नगरी के मन्त्री की सुश्राविका धर्मशालिनी पत्नी नन्दा के यहाँ भिक्षार्थ आये। परन्तु, वहाँ अपने अभियोग के सफल होने की सम्भावना न थी, इस लिए आहार स्वीकार न किया। नन्दा उदास हुई। कौशाम्बी के राजा की महारानी मृगावती के पास गई और प्रभु के आने तथा आहार अस्वीकार करने का उसने वृत्तान्त कहा। फिर मृगावती ने प्रभु के आहार के लिए निमन्त्रित किया, परन्तु वहां भी निज भाव की सानुकूलता न देख कर आहार स्वीकार न किया। महारानी मृगावती और नन्दा प्रभु से आहार अस्वीकृति का कारण पूछने लगीं, तो प्रभु ने उनकी चिन्ता को दूर किया।

इसके पश्चात् प्रभु फिरते-फिरते धनावह सेठ के यहां जा पहुँचे। साक्षात् भगवान् को अतिथि आये देख कर चन्दन-

बाला अति प्रसन्न हुई और आहार के लिए प्रार्थना करने लगी। यहां और तो सब बातें थीं लेकिन एक शर्त की कमी थी। वह क्या? चन्दन बाला के नेत्रों से अश्रुपात नहीं होता था। अतः प्रभु ने भोजन लेना स्वीकार न किया और वापस जाने लगे। अपने घर में आये अतिथि को नहीं-नहीं, भगवान् को आहार न पा कर लौटते देख, चन्दन बाला से रहा न गया, उसकी आंखें डबडबा आईं और वह रोने लग गई। फिर क्या था, कमी तो इसी बात की थी और तो सब शर्तें पहले ही सानुकूल थीं? भगवान् अपने भाव को सर्व विध पूर्ण होते देख, लौट पड़े और आहार स्वीकार कर लिया। यह देख चन्दन बाला के आनन्द का पारावार न रहा। इस समय आकाश - मण्डल में देवताओं ने दुन्दुभी बजाई और स्वर्ण - वृष्टि की। सेठ धनावह के घर में उत्सवादि होने लगे। राजा शतानिक, मन्त्री और परिवार के साथ वहां आया। सबने भगवान् की वन्दना की। इसके अनन्तर ५ दिन कम छः मास के बाद पारणा करके भगवान् ने वहाँ से विहार कर दिया। राजा शतानिक ने चन्दन बाला को तमाम स्वर्ण की स्वामिनी बना दिया, जोकि देवताओं ने बरसाया था और फिर अपने घर आया। इसके पश्चात् चन्दन बाला ने महावीर स्वामी से जब उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ, दीक्षा ली और साध्वी हो अपने जीवन को सार्थक किया।

आप में से राजपूत, राजा भी जब पहले ज्ञानी हो जाते

थे, तो इस असार संसार को दुख और अशान्ति का केन्द्र जान कर त्याग देते थे और वैराग्य ग्रहण कर लेते थे। हमारे यहां ऐसे कई नरेशों का वर्णन है, उसमें से आपको अनाथी मुनि का वर्णन सुनाता हूँ।

राज-ग्रही नगरी के श्रेणिक राजा के एक 'मण्डित कुक्षि' नामक बगीचा था। नये-नये वृक्ष और लता-मण्डप की सुव्यवस्था से उसकी शोभा बड़ी अपूर्व दिखाई देती थी। एक समय श्रेणिक राजा अपनी फ़ौज के साथ मण्डित कुक्षि बगीचे की तरफ़ गये। उसमें प्रवेश करते ही राजा की दृष्टि एक वृक्ष पर गई, जो वहां से कुछ दूर था। उसके नीचे उसको एक तेजस्वी आकृति दिखाई दी। यह कौन है, यह जानने को वह उस ओर गया। जैसे - जैसे आगे चलता गया वैसे - वैसे राजा के मन में सन्देह की मात्रा बढ़ती गई। पहले उसके मन में यह कल्पना हुई थी कि यह दिव्य आकृति किसी वस्तु की है, परन्तु निकट जाने पर मालूम हुआ कि यह तो सजीव मनुष्य है, जिसका सौन्दर्य अलौकिक है। अहा! इसका कैसा आकर्षक मुखमण्डल है, शरीर की दीप्ति कैसी उज्वल है और नेत्र कैसे मनोहर हैं। इसके अर्द्ध - चन्द्राकार कपोल ऐसे सुन्दर हैं जो देखने वाले को विस्मित कर दें। उसकी आकृति ही सुन्दर हो, सो नहीं, बल्कि "आकृति गुणान् कथयति" के अनुसार गुण भी इसमें ऐसे ही दिखाई देते हैं। इसकी शान्त मूर्ति भी बड़ी उत्कृष्ट प्रतीत होती है।

परन्तु, यह व्यक्ति है कौन ? शरीर पर पूर्ण यौवन झलक रहा है, किन्तु इसके पास सांसारिक सुख भोग की कोई भी सामग्री क्यों नहीं है ? इस के पास तो वस्त्राभूषण, नौकर चाकर वाहन आदि कुछ भी नहीं दिखाई देता। क्या इसकी ऐसी ही स्थिति होगी ? किन्तु यह तो सम्भव नहीं। इस के मस्तक के तेज के अनुसार तो यह कोई भाग्यशाली पुरुष होना चाहिये। और इस दशा में इसका सम्पत्ति-शाली होना भी निर्विवाद है। तो क्या उस सम्पति का इसने त्याग किया है ? यदि किया है तो किस लिए ? ऐसे एक के बाद एक अनेक प्रश्न राजा के मन में उत्पन्न होते गए। उनका स्पष्टी-करण करने वाला उस समय उसके पास कोई मनुष्य न था। इस कारण वह स्वयम् ही अपने वाहन से उतर कर उस दिव्याकृति धारी पुरुष के पास आया। त्यागी पुरुषों का अभिवादन करने की प्रणाली को जानने वाले राजा ने दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक नमाया और शिष्टाचार करके उस त्यागी युवक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने को उसके साथ वाग्-व्यापार शुरू किया। वह भव्याकृति-धारी पुरुष और कोई न था, एक पञ्च महाव्रत धारी मुनि थे। वृक्ष के नीचे एक आसन लगा कर शान्ति पूर्वक—समाधि दशा में लीन होरहे थे। राजा के प्रश्नारम्भ करने पर मुनि ने भी अपना ध्यान उस ओर आकर्षित करके बात-चीत करना शुरू किया। राजा ने पूछा कि आपने इस

तरुणावस्था में गृहस्थाश्रम का क्यों त्याग किया ? क्या आप पर कोई दुःख अथवा विपत्ति विशेष आगई थी या किसी से लड़ाई - झगड़ा हो गया था ? मुनि ने कहा कि राजन् ! न तो मेरा किसी के साथ लड़ाई झगड़ा हुआ और न कोई दुःख या आपत्ति ही आई । गृहस्थाश्रम परित्याग करने का केवल एक ही कारण है और वह है मेरी अनाथता । अर्थात् मेरा कोई सहायक, स्वामी या त्राण देने वाला न था, इसी से मैंने गृहस्थाश्रम में रहना उचित नहीं समझा ।

श्रेणिक—क्या तुम अनाथ थे ? तुम्हारी रक्षा करने वाला तुम्हें कोई मनुष्य नहीं मिला ?

मुनि—हां, मैं अनाथ था ।

श्रेणिक—यह बात तो मुझे संदेह भरी जान पड़ती है । तुम्हारा ऐसा सौंदर्य, ऐसा तेज और फिर भी तुम्हें आश्रय देने वाला कोई न मिले ! इसको मैं नहीं मान सकता । फिर भी सम्भव है, कदाचित् तुम सत्य कहते हो तो क्या तुम्हें किसी आश्रयदाता अथवा रक्षक की आवश्यकता है ? वैसा कोई तुम्हें मिल जाय तो क्या तुम उसे स्वीकार करोगे ?

मुनि—क्यों नहीं, अवश्य ।

श्रेणिक—तब तो बहुत अच्छा, चलो मेरे साथ । मुझे तुम पर बड़ी दया आती है—मैं तुम्हें बड़े प्रेम से देखता हूं । मैं तुम्हें अपने साथ ही रक्खूँगा । तुम्हारी रक्षा करने में—

तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करने में मैं किसी प्रकार की त्रुटि न होने दूँगा। तुम्हारे लिए रहने को सुन्दर महल दूँगा और रुपये-पैसे आदि जिस वस्तु की भी तुम्हें आवश्यकता होगी, मैं पूर्ण करूँगा। फिर क्या है ? चलो, करो सार की सैर।

मुनि—राजन्! तू मुझे तो फिर आमन्त्रित करना, पहले तू अपना तो विचार कर।

श्रेणिक—इसमें क्या विचार करना है ? मैं पूरी तरह से सामर्थ्य-वान और ऋद्धिशाली हूं। चाहे जिस दुश्मन का मुक़ाबला करने को मेरे पास काफ़ी बल और पराक्रम है। यदि कोई तुम्हारा दुश्मन होगा तो उससे तुमको बचाने की मेरे पास पूरी शक्ति है।

मुनि—राजन्! ठहर, ठहर! तू बोलने में बहुत आगे बढ़ा जा रहा है, विचारों की सीमा का उल्लंघन कर रहा है। अभि-मान के आवेश में मनुष्य अपनी सुध-बुध भूल जाता है। मुझे अपने दुश्मन से बचाने की तुझमें शक्ति नहीं है, यह तो निर्विवाद है। परन्तु, अपने दुश्मन से ख़ुद को को बचाने की शक्ति का तुझमें अभाव है। मेरे और अपने दोनों के दुश्मन के सामने तू दीन है, रङ्क है। इस कारण मैं ज़ोर दे कर कहता हूँ कि जिस प्रकार मैं अनाथ था, उसी प्रकार तू स्वयम् भी अनाथ है। तू स्वयम् अनाथ हो कर दूसरे का नाथ किस तरह हो सकेगा ?

श्रेणिक—मेरे पास कितनी फ़ौज है—कैसा बल है—कैसी ख्याति है, इसकी तुम्हें ख़बर नहीं है। इसीसे मुझ पर अनाथता का झूठा आरोप लगा रहे हो। महाराज! सुनो, मेरे पास तेंतीस हज़ार हाथी, तेंतीस हज़ार घोड़े इतने ही रथ और पैदल फ़ौज है। इसके सिवाय मेरे कोष में—अनन्त सम्पत्ति है। मैं चाहूँ उस वस्तु को पा सकता हूँ। सुखोपभोग की कोई वस्तु मेरे लिए अलभ्य नहीं है। चाहे जैसा दुश्मन हो किन्तु, मेरे साथ युद्ध करने का किसी को साहस नहीं हो सकता। इस कारण तुम ज़रा विचार कर बोलो। बिना विचारे किसी को अनाथ कह देना निरी अज्ञता और अविवेक है।

मुनि—राजन्! मैं अपनी अज्ञता प्रकट करता हूँ या तू अपनी मूर्खता ज़ाहिर करता है, इस बात को तो कोई तीसरा मध्यस्थ व्यक्ति ही कह सकता है। परन्तु, मैं तुमसे कुछ कहूँगा तो उसको सुन लेने पर तू स्वयम् ही स्वीकार कर लेगा कि वास्तव में मैं—स्वयम् ही मूर्ख हूँ। प्रथम तो अनाथ शब्द किस स्थान पर किस अभिप्राय से प्रयुक्त होता है, इसको तू नहीं समझता। मेरे घर में समृद्धि न थी अथवा कोई कुटुम्बी न था, इससे मैं अनाथ हूँ या किसी अन्य कारण से, इसे भी तू नहीं समझ सका।

श्रेणिक—तो 'अनाथ' शब्द का क्या आशय है और तुम किस तरह अनाथ हुए, यह मुझे सुनाओगे?

मुनि—बेशक, अगर तू विक्षेप दूर करके शांति पूर्वक सुनेगा, तो मैं प्रसन्नता पूर्वक सुनाऊँगा।

श्रेणिक—मुझे किसी प्रकार का विक्षेप नहीं, मैं उस बात को तो बड़े ध्यान से सुनने को तैयार हूँ। इस कारण आप सुनाइये।

मुनि—राजन्! यदि मैं अपना चरित्र अपने ही मुँह से वर्णन करूँगा तो उसकी गणना आत्मश्लाघा में हो जायगी। परंतु अनाथता और सनाथता का वास्तविक अर्थ समझाने के लिये इसके अतिरिक्त और कोई साधन है भी नहीं। मैं कौशाम्बी नगरी का निवासी हूँ मेरे पिता का नाम धन-संचय है। वे कौशांबी नगरी में एक इज्ज़तदार गृहस्थ हैं। राजा और प्रजा दोनों में उनका बड़ा मान है। उनके कोष में इतना संचित द्रव्य है कि उसकी गणना करना कठिन है। किम् बहुना उस कोष के आगे बड़े से बड़े राजा का खज़ाना भी कोई वस्तु नहीं। मेरा पहिले गुण-सुन्दर नाम था। मेरा बाल्यावस्था में उसी ढङ्ग से लालन-पालन हुआ है, जैसा कि एक धन सम्पन्न व्यक्ति की सन्तान का होना चाहिये। इसके पश्चात् मैं पढ़-लिख कर होशियार हुआ तो एक उच्च कुल की सुन्दर कन्या के साथ मेरा विवाह किया गया। उस समय का मेरा अपना सारा जीवन-काल खेल-कूद, भोग-विलास और सुख में व्यतीत हुआ। दुःख अथवा संकट

श्री हिंदवा-सूर्य स्वर्गीय महाराणा श्री फतहसिंह जी साहब
के ज्येष्ठ भ्राता स्वर्गीय श्री महाराजा हिम्मतसिंह जी
उदयपुर (मेवाड़)

क्या वस्तु है, इसका मुझे कभी ध्यान तक न आया। मेरे और भी भाई और बहनें थीं। उन सबका मुझ पर बड़ा स्नेह था। किसी भी बात में वे मुझे अप्रसन्न नहीं होने देते थे। युवावस्था में मेरी एक युवक से मित्रता हो गई थी, हम दोनों परस्पर बड़े मेल से रहते और यथावकाश विनोद की बातें कर अपना मनोरञ्जन किया करते थे। मेरा मित्र मुझसे प्रायः वैराग की बातें किया करता और कहा करता था कि सारे सांसारिक-सम्बन्धी स्वार्थ वृत्ति वाले होते हैं। यह सुन कर मैं उसका खंडन किया करता और अपना ख़ुद का उदाहरण दे कर उसको समझाता था कि, मेरे माता-पिता स्त्री आदि मुझ पर इतना प्रेम रखते हैं कि वे मुझे पल भर के लिए भी अपनी आँखों की ओट नहीं होने देते। यदि किसी दिन मैं उनको थोड़ी देर तक न दिखाई दूँ, तो उनका चेहरा उदास हो जाय और वे मेरी खोज करने लगें। हमारे कुटुम्ब में स्वार्थ-मय प्रेम किसी का है ही नहीं। बल्कि शुद्धान्तःकरण से ही सब मुझे चाहते हैं। मेरा मित्र मेरी इस बात को सच्ची न मान कर कहता था कि भाई! जगत् के पशु-पक्षी और मनुष्य सब मतलब के साथी हैं। मतलब निकल जाने पर कोई किसी के काम नहीं आता। एक समय हम किसी तालाब पर गये थे, उस समय वहां अनेक पक्षी क्रीड़ा कर रहे थे तथा कमल पर भौंरे गुञ्जार रहे

थे। दूसरी बार गये तो तालाब सूखा पाया और किसी पशु पक्षी को विचरते नहीं देखा। देखो यह स्वार्थान्धता !

दोहा

स्वारथ के सब ही सगे, बिन स्वारथ कोइ नाहिं।
सेवें पक्षी सरस तरु, निरस भये उड़ि जाहिं॥

बगीचा और मनुष्य, वृक्ष और पक्षी आदि अनेक उदाहरण देकर उसने मुझे सांसारिक स्वार्थ को समझाने का प्रयत्न किया। किंतु, मैंने उसकी बात पर ज़रा भी ध्यान न दिया। मैंने अपने निश्चित किये हुए विचार को ही ठीक समझा। मेरा मित्र मुझसे इस बात के लिए क्यों इतना ज़ोर देता है, यह बात मैं उस समय न समझ सका था। अन्त में वह मुझको समझाते-समझाते थक गया और कहने लगा कि अब मैं बाहर जाने वाला हूँ, इस कारण कुछ समय तक तेरे पास न आ सकूँगा। राजन् ! मेरा वह मित्र मेरे पास से गया कि शीघ्र ही अचानक मेरे अंग प्रत्यंग में वेदना होने लगी, हड्डियों में इस तरह की पीड़ा होनी शुरू हुई कि मैं मछली की तरह तड़पने लगा। घड़ी भर पलँग पर और घड़ी भर भूमि पर, किंतु मुझे किसी जगह भी चैन नहीं मिला। मानो भीतर से मेरे कोई सुई चुभो रहा हो, ऐसा असह्य कष्ट होने लगा। मेरे घर के और

बाहर के सब कुटुम्बी लोग इकट्ठे हो गये और सब मेरा उपचार करने लगे। कोई वैद्य को लाया तो कोई हकीम को। कोई ज्योतिषी को तो कोई मन्त्र-शास्त्री को। इस प्रकार एक के पश्चात् एक ने आ कर चिकित्सा की। परन्तु मुझे कुछ आराम नहीं मिला। समय बहुत हो गया था इस कारण मारे बेचैनी के मैं तो अधीर हो गया और सोचने लगा कि इसकी अपेक्षा यदि प्राणान्त हो जाय तो अच्छा। घर के सब लोग तंग आ गये, इस प्रकार मुझे कई दिन बीत गये। इसी बीच में वहां एक विदेशी वैद्य आये, वे देखने में जैसे सुन्दर थे वैसे ही अनुभवी भी प्रतीत होते थे। मेरे पिता ने उनको बुलाया और कहा कि, मेरे पुत्र को स्वस्थ करो तो मैं आपको मुँह मांगे रुपये दूँगा। वैद्य जी ने कहा कि रुपये का नाम क्यों लेते हो मैं तो परमार्थ के लिए ही दवा देता हूँ। मेरे पास ऐसी अक्सीर दवाइयां हैं कि, मैंने जिस रोगी को भी हाथ में लिया है, वही मेरे पास से स्वथ्य-लाभ कर के गया है। यह होते हुए भी मैंने किसी से एक पैसा नहीं लिया। चलो तुम्हारे लड़के की हालत देखूँ। ऐसा कह कर वे आये और मेरी नाड़ी-परीक्षा की। कुछ देर ठहर कर बोले कि, सेठ जी! इस लड़के के कोई रोग नहीं है, इसे तो कोई खटका "भूत का आवेश" है।

इस पर मेरे पिता ने कहा कि, वैद्यराज! इसका

उपाय भी आप ही के पास होगा। वैद्यराज जी ने कहाः—"हां, हां, अवश्य !" किंतु उसके अलावा मेरे पास कोई उपाय नहीं है। इस पर मेरे पिता ने कहा कि ख़ैर। अधिक उपाय से क्या काम है, एक उपाय तो है न? यदि इसी से यह स्वस्थ हो जाय तो दूसरे किसी उपाय की क्या आवश्यकता? वैद्य जी ने कहाः—"एक उपाय है तो अक्सीर परन्तु..................मेरे पिता ने कहा, फिर परन्तु क्या? आप कहते क्यों नहीं, रुकते क्यों हैं? इस पर वैद्य जी ने कहा कि वह उपाय जरा टेढ़ा है, कष्टसाध्य है। इतना अवश्य है कि उस उपाय से मैं इसके शरीर में से सब खटका निकाल डालूँगा। परन्तु उस रोग को लेने के लए तुम में से कोई एक मनुष्य तैयार होना चाहिए। यह खटका व्यन्तर ऐसा बुरा है कि जीव के बदले जीव लेता है। एक को बचाऊँ तो उसके बदले दूसरे व्यक्ति को मरने के लिए तैयार होना पड़ेगा।

यह सुन कर कुछ देर तक तो सब लोग विचार में पड़ गये। कुछ ऐसा भी कहने लगे कि यह वैद्य गप्पी मालूम होता है। ऐसा भी कहीं होता है? लेकिन ख़ैर, देखने तो दो। यह सोच कर कहने लगे कि वैद्यराज! आप गुणसुन्दर के शरीर से रोग निकालिये, फिर उसको जिसके लिए आप कहेंगे वही ले लेगा। हम सब यहीं मौजूद हैं। इस पर वैद्य जी ने कहा कि फिर पलट न सकोगे। इससे विचार कर

बोलना । सब ने कहा कि हां, हां, हम सब विचार कर ही बोले हैं । इस प्रकार पक्की बात करके वैद्यराज ने सबको उस कमरे से बाहर निकाला और उसके दरवाजे बन्द कर दिये । इसके पश्चात् उन्होंने मेरे शरीर पर एक बारीक वस्त्र ढक कर कुछ मंत्र पढ़ा, थोड़ी ही देर में मुझे पसीना आया, वस्त्र भीग गया । उन्होंने उसको एक प्याले में निचोड़ लिया और फिर मुझे उढ़ा दिया । इस प्रकार तीन बार उस वस्त्र को निंचोड़ा । इससे सारा प्याला पसीने द्वारा रोग से भर गया । तब मुझे एकदम शान्ति अनुभव हुई । इसके पश्चात् वैद्य जी ने किवाड़ खोल कर सबको भीतर बुलाया और दर्द का प्याला हाथ में ले कर कहा कि देखो! अब यह लड़का बिल्कुल आराम हो गया है । इसका सारा रोग अब इस प्याले में इकट्ठा होगया है । कहो, तुम में से कौन इसको पीना चाहता है ? इस पर मेरे पिता, माता, भाई, बहन और भौजाई आदि सबको पृथक्-पृथक् बुला कर वैद्य जी ने कहा । परन्तु, प्याले के भीतर का द्रव्य पदार्थ जो तेजाब की तरह खदबदा रहा था और जिसमें धुआं तथा अग्नि की ज्वाला जैसी ज्वाला निकल रही थी, उसको पीने का किसी को साहस न हुआ । पिता ने कहा कि मैं पीजाऊँ लेकिन दूकान का सारा कारोबार मेरे हाथ में है । प्याला पी लेने पर यह रोग मुझे घेर लेगा और उस दशा में मैं अपने व्यापार की कुछ देख भाल न कर सकूँगा । माता ने कहा कि गुणसुन्दर के पिता का मिजाज ऐसा तेज है कि उसको

मेरे सिवाय दूसरा कोई बरदाश्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार भाई और भौजाइयों ने भी इन्कार कर दिया। बहनों को उनके पतियों ने रोक दिया, स्त्री ने भी कुछ बहाना ले लिया। रहे दूसरे आत्मीय, सो वे भी एक-एक करके पेशाब-पाखाने का बहाना करके चलते बने। आख़िर को वैद्य जी ने वह दर्द का प्याला मुझ पर ही छोड़ दिया। इससे मुझे जैसी पीड़ा पहले थी, वैसी ही होने लगी। वैद्य जी वहाँ से चले गये। उस समय मुझे अपने मित्र की बात याद आई। सांसारिक स्वार्थ पर मुझे बड़ा ख़याल गुज़रा। सोचा कि अभी तक काँच को हीरा और पीतल को सोना मान कर मैं मोह-जाल में लिपटा रहा और इस प्रकार मैंने जो अपना अमूल्य समय नष्ट किया उसका भान हुआ। शीघ्र ही मैंने विचार किया कि यदि अब मेरा यह रोग दूर हो जाय, तो मैं इस स्वार्थी संसार का त्याग करके संयम-मार्ग को अंगीकार कर लूँ। यह विचार कर लेटा इतने ही में मैंने एक स्वप्न देखा, स्वप्न में मेरे मित्र से भेंट हुई। उसने कहा कि मित्र! सँभल-सँभल, अब भी सँभल जा! तू और मैं दोनों देव थे। पूर्व जन्म में जब तेरी आयु पूर्ण होने लगी, तो तैंने मुझसे कहा कि:—"तेरी आयु अभी शेष है इस कारण मैं यहाँ से मर कर मनुष्य होता हूं, वहाँ तू मुझे समझाने के लिए आना और चाहे जिस तरह मुझको शिक्षा देना।" उसके लिए उससे मैंने वचन ले लिया। मैंने वचन दिया कि, अवश्य ही मैं

तुझे समझाने को आऊँगा । क्या तू उस बात को बिल्कुल भूल गया ? उस समय का तेरा वैराग्य सब कहाँ रफू हो गया ? मित्र ! आज मैं (वचन देने वाला देव) तेरे पास तीसरी बार आया हूँ । एक बार मित्र की भाँति तुझसे सम्बन्ध जोड़ा, तुझ को हर तरह से संसार का स्वरूप समझाने की कोशिश की, परन्तु तू नहीं समझा । तब मैंने यह कष्टसाध्य, परन्तु अनुभव कराने वाला दूसरा उपाय किया । दूसरी बार वैद्य बन कर तेरे पास आया, वह भी मैं ही था । मैंने तुझको वचन दिया था, इसी से आज तीसरी बार स्वप्नावस्था में तेरे पास आया हूँ । अब बता कि, तुझे संसार के स्वार्थ-मय सम्बन्ध की पहचान हुई या नहीं ? यदि हो गई हो तो उसको त्याग कर आत्मसाधन करने को कटिबद्ध हो जा । इससे तेरी वेदना शीघ्र ही दूर हो जायगी । इतने ही में मेरी नींद खुल गई तो देखा कि वे देवता अदृश्य हो गये । मैंने तो संसार परित्याग करने का विचार पहले ही से कर लिया था, किन्तु स्वप्नावस्था के विचार ने मेरी इच्छा को और भी मजबूत कर दिया । मैंने संकल्प कर लिया कि इस वेदना के मिटते ही संसार का परित्याग करूँगा । ऐसा निर्णय करते ही धीरे-धीरे मेरी वेदना कम होने लगी । कुछ ही देर में मुझे बड़ी शान्ति से गहरी नींद आ गई । दूसरे दिन प्रातः-काल सो कर उठा उस समय सगे-सम्बन्धियों से मेरा सारा कमरा भर गया, गड़बड़ होने से मैं जाग न जाऊँ इस लिए

सब लोग शान्ति पूर्वक बैठे हुए मेरे जगने की राह देख रहे थे। मेरे जगते ही सब लोग मेरी तबीअत का हाल पूछने लगे। जब मैंने कहा कि अब मेरी तबीअत पहले से अच्छी है, तो सुन कर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि ईश्वर ने हमारी अभिलाषा पूर्ण की। कोई कहने लगा मैंने अमुक यक्ष की मानता की थी। कोई कहने लगा मैंने अमुक माता जी को प्रसाद चढ़ाने का संकल्प किया था। आदि, इस पर मैंने उन सबसे कहा कि तुम में से किसी की मानता सफल नहीं हुई है। केवल मेरी ही मानता फलीभूत हुई है। मेरे माता-पिता ने पूछा कि तेरी कौन सी मानता है वह बता ? हम सबसे पहले उसी को पूर्ण करेंगे। मैंने कहाः—"खंतो दंतो निरारंभो पवइए अणगारियं" अर्थात् मैंने ऐसी मानता की है कि यह वेदना मिट जाय तो क्षमा का पाठ सीखूँगा और इन्द्रियों का दमन करके आरम्भिक परिग्रहों को छोड़ कर साधु-धर्म को ग्रहण करूँगा। यह विचार करते ही मेरी वेदना एकदम शान्त हो गई इस कारण अब मैं अपने आत्म-कर्म की साधना करूँगा। किसी को मेरे इस संकल्प में विघ्न नहीं डालना चाहिए। बस, मैं सबसे इतनी ही कृपा करने की याचना करता हूँ।

इसके पश्चात् मेरे माता-पिता तथा मेरे सम्बन्धियों से बहुत कुछ वाद-विवाद हुआ। किन्तु, अन्त में मैंने सबको समझा कर दीक्षा ले ली। तभी से अनाथता से छुटकारा पा कर मैं

हिज़ हाईनेस कर्नल श्रीमान् महाराजा सर सज्जनसिंह जी
के. सी. एस. आई. के. सी. वी. ओ. ए. डी. सी.
टू हिज़ रायल हाईनेस दि प्रिंस ऑफ़ वेल्स
रतलाम (मालवा)

सनाथ हुआ हूं। अब मैं केवल अपनी ही आत्मा की नहीं, बल्कि दूसरे प्राणियों की भी रक्षा करता हूं, इस कारण अपना खुद का और साथ ही दूसरों का भी नाथ हुआ हूँ। इसी पर से विचार कर ले कि तू स्वयम् अनाथ है या सनाथ? तू मुझको जो ऋद्धि और भोग-विलास के साधन देने को कहता है, इनकी अपेक्षा अधिक साधन मुझको प्राप्त थे। सगे-सम्बन्धी, स्नेही-मित्र आदि भी यथेष्ट थे, किन्तु यह सब होते हुए भी मुझे दुःख से कोई बचा न सका। इससे स्वयम् सिद्ध है कि मैं अनाथ था।

क्या तुझमें किसी को दुःख अथवा मृत्यु से बचाने की शक्ति है? मनुष्य का बड़े से बड़ा वैरी मृत्यु अथवा कर्म्म है। उससे बचाने की शक्ति तुझमें नहीं है, इसी से मैंने तुझको अनाथ कहा था। यदि अब तुझे मेरे वचन अनुचित लगते हों, तो उन्हें वापस ले लूँ।

श्रेणिक—महाराज! आपके वचन सत्य हैं, मेरी ही भूल है। अब मुझको विश्वास है कि इस हिसाब से मैं स्वयम् भी अनाथ हूँ। मैंने अपनी सम्पत्ति के लिए वृथा अभिमान किया। मृत्यु रूपी वैरी के सामने चाहे जितनी सम्पत्ति अथवा चाहे जैसी सत्ता हो, लेकिन वह तुच्छ है। आप एक दृढ़ वैरागी और सच्चे त्यागी हैं। ऐसी दशा में आपको सांसारिक भोग-विलास के लिए प्रेरित कर मैंने जो अपराध किया, इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ और आप से

धर्म सुनने का अभिलाषी हूं।

इसके पश्चात् मुनि ने धार्मिक बोध दिया जिसको श्रवण कर श्रेणिक राजा ने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। मुनि की स्तुति, सम्मान और वन्दना नमस्कारादि करके श्रेणिक राजा वहां से विदा हुए। मुनिवर भी पृथ्वी-मण्डल के अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोधित कर आन्तरिक शत्रुओं को जीत कर अन्त में अनन्तपद को प्राप्त हुए, सनाथ हो गये। परन्तु दूसरे लोगों को समझाने के लिए उन्होंने अपना नाम 'अनाथ' ही रखा' इसी से उनको अनाथी ही कहा जाता है।

जिसके पास इतना बड़ा राज्य था, जो ऐसा समृद्धि-शाली था, ऐसे गुण सुन्दर और श्रेणिक राजा जैसे भी अनाथ थे, तो सामान्य पुरुष किस प्रकार सनाथता का दावा कर सकते हैं?

इस प्रकार मुनि महाराज और बनेड़ा-राजा साहब से बात-चीत हुई। राजा साहब ने कहा कि, आपसे वार्तालाप कर बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा बड़ा सौभाग्य है जो आप जैसे महात्मा के दर्शन हुए। आपका व्याख्यान किसी मजहब वाले को कटु नहीं होता, प्रत्येक की समझ में आ जाता है। कृपया एक व्याख्यान महलों में भी दें। तदनुसार आपने एक व्याख्यान दिया, जिसे रनिवास में से मां साहब, रानी साहब, कुँवरानी साहब ने भी सुना। पश्चात् राजा साहब ने मलमल के थान

महलों में बैठाने का आग्रह किया, किन्तु मुनि महाराज बोले कि हमारी उत्तम से उत्तम भेंट यही है कि आपकी ओर से कोई दया अथवा उपकार का कार्य हो जाय। जब राजा साहब का बहुत आग्रह देखा तो आपने उसमें से तीन हाथ वस्त्र ले लिया। फिर राजा साहब ने प्रार्थना की कि आगे का चातुर्मास यहां करें। जैन-दिवाकर जी ने कहा यह चातुर्मास तो सादड़ी का स्वीकार हो चुका, फिर जैसा अवसर होगा, कह कर आप मांडल पधारे। मार्ग में बनेड़ा-सरकार का दया-विषयक पट्टा लेकर कारभारी आये।

यहाँ से चल कर जैन-दिवाकर जी महाराज कांसिथल पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब श्री पद्मसिंह जी के सुपुत्र श्रीमान् जवानसिंह जी ने भी व्याख्यान सुना। उन्होंने कई त्याग किये और एक पट्टा भी दिया। फिर यहाँ से यथासमय विहार करके जैन-दिवाकर जी फरेड़े पधारे। वहाँ के राजा साहब ने व्याख्यान सुन कर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने कुछ और ठहरने के लिये आग्रह किया, किन्तु समयाभाव के कारण जैन-दिवाकर जी केवल पांच रोज ही ठहर सके। उसके बाद वहाँ से विहार कर ताल पधारे। वहाँ ताल के ठाकुर साहब की प्रार्थना पर आपने राजमहल में व्याख्यान दिया। ठाकुर साहब की माता ने जैन-रीत्यानुसार आपकी वन्दना कर अपनी पुत्रवधू (रानी) को सम्यक्त्व दिलाया। उन्होंने स्वयम् भी रात्रि-भोजन का परित्याग किया तथा प्रतिज्ञा की कि मैं यावज्जीवन इसका पालन करूँगी। रानी साहब तथा अनेक दास-दासियों ने मांस-

भक्षण, मदिरा-पान आदि कई प्रकार के त्याग किये। ठाकुर साहब उम्मेद सिंह जी ने महीने में २२ दिन शिकार न खेलने तथा पाँच जानवरों के सिवाय और किसी जानवर का शिकार न करने की प्रतिज्ञा की। साथ ही उन्होंने एक ऐसा भी हुक्म जारी कर दिया कि अब से इलाक़े के तालाबों में कोई व्यक्ति मछलियाँ न मारे। चलते समय ताल के ठाकुर साहब दो कोस दूर (थाणा) तक पैदल ही जैन-दिवाकर जी को पहुँचाने आये। थाणा के ठाकुर साहब ने भी परिन्दे जानवरों के शिकार का त्याग किया। यहाँ से चल कर जैन-दिवाकर जी महाराज लासाणी पधारे। वहाँ ताल के ठाकुर साहब श्री उम्मेद सिंह जी साहब प्रतिदिन व्याख्यान सुनने को पधारते थे। उन्होंने एक दिन व्याख्यान में यह प्रतिज्ञा की कि मेरे यहाँ वर्ष भर में राज्य के जितने बकरे आते हैं, उन्हें मैं 'अमरिया' कर दूँगा। लासाणी के ठाकुर साहब श्री खुमाण सिंह जी ने भी प्रतिज्ञा की कि भाद्र मास में शिकार न करूँगा। उन्होंने यह भी कहा कि चैत्र शुक्ल १३ को किसी जीव की हिंसा न करूँगा और मादीन जानवरों को तो आजन्म न मारूँगा। ठाकुर साहब प्रति दिन आकर व्याख्यान का लाभ लेते थे।

अनन्तर जैन-दिवाकर जी ने देवगढ़ की ओर विहार किया। लासाणी के ठाकुर साहब अपने पाटवी पुत्र सहित अपनी रियासत की सीमा तक पहुंचाने आये। ता० १५-१०-२४ को वूसी (मारवाड़) के ठाकुर साहब व्याख्यान सुनने आये।

जैन-दिवाकर जी के उपदेश से आपने ये त्याग किये कि मैं हरिण और पक्षी का शिकार न करूँगा और महीने में दस दिन मेरा शिकार खेलना बिलकुल बन्द रहेगा । आपके साथ एक सज्जन और थे, उन्होंने भी हरिण का शिकार न करने का प्रण किया ।

वहाँ से चल कर जैन - दिवाकर जी पाली पधारे। वहां जोधपुर के केप्टिन केसरीसिंह जी साहब देवड़ा (जागीरदार गलथनी, मारवाड़) पधारे और दर्शन तथा व्याख्यान का लाभ लेकर बोले—मैंने संवत् १६७२ में, कुचामण की हवेली (जोधपुर) में आपके उपदेश सुने थे । आपही के व्याख्यान-समुद्र से अहिंसा रूपी लहरें लेकर मैं जगह-जगह भ्रमण करता हूँ और अनेक जागीरी ठिकानों तथा अन्य लोगों में दारू-मांस के परित्याग का प्रचार करता हूँ। इसमें मुझे बड़ी सफलता मिली है। बहुत जगहों पर दारू-मांस का व्यवहार बन्द होचुका है। अवशेष प्रयत्न जारी है, यह सब आपके व्याख्यान का फल है। पाली से विहार करते समय श्रीमान् ठाकुर साहब अभय सिंह जी भी पहुँचाने आये । उन्होंने कहा, संवत १६७२ में आप यहाँ पधारे थे। उस समय मुझसे श्रावण और भादों मास में शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा कराई थी । अब आपका पुनः पदार्पण हुआ, इस लिये अब मैं आसाढ़ पूर्णिमा से कार्त्तिक पूर्णिमा तक शिकार न करूँगा। ठाकुर साहब के भ्राता श्री भगसह जी ने भी स्वयं शिकार न करने और दूसरों को भी न बताने की

प्रतिज्ञा की। ठाकुर साहब के साथ आने वाले एक आदमी ने हरिण पर वन्दूक न चलाने का प्रण किया।

अनन्तर जैन-दिवाकर जी महाराज ने सोलावास की तरफ विहार किया। रास्ते में शिकारपुर (मारवाड़) के ठाकुर श्रीमान् नाहर सिंह जी साहब की ओर से सन्देशा मिला कि ठाकुर साहब को आपका उपदेश सुनने की अभिलाषा है। जैन-दिवाकर जी ने यह विनती स्वीकार की। आप पीछे शिकारपुर पधारे। वहाँ एक व्याख्यान देकर आपने विहार किया। ठाकुर साहब बहुत दूर तक पहुँचाने आये। अनन्तर जैन-दिवाकार जी किशनगढ़ पधारे। वहाँ श्रीमान् किशनगढ़ नरेश (हिज़हाइनेस उमद् राजाट्टी बलन्द मकां लेफ्टिनेएट कर्नल महाराजाधिराज सर मदनसिंह जी बहादुर, के० सी० एस० आई० के० सी० आई० ई०) ने अपने राज्यकर्मचारियों के द्वारा महाराज श्री की सेवा में यह निवेदन करवाया कि मुझे व्याख्यान का लाभ लेनें की अभिलाषा है। परन्तु यकायक श्रीमान् महाराजा साहब कार्य-वश बम्बई चले गये, अतः उन्हें जैन-दिवाकर जी के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

उदयपुर हिन्दवासूर्य

जिन दिनों जैन-दिवाकर जी उदयपुर की जनता को अपनी रसमयी वाणी का रसास्वादन करा रहे थे, उन दिनों आपकी प्रशंसा प्रत्येक नर-नारी की हृत्तन्त्री में झंकृत हो रही

थी और जनता की जिह्वा पर शारदा नटी हो कर नाच रही थी। यह ख्याति धीरे-धीरे हिन्दू-कुल-सूर्य, हिज़हाइनेस दि महाराजाधिराज महाराना साहिब सर फ़तह सिंह जी साहिब बहादुर, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० व्ही० ओ०, महाराणा आफ़ उदयपुर और आप ही के सुपुत्र-रत्न स्वनामधन्य श्रीमन्त युवराज महाराजकुमार साहिब सर भूपालसिंह जी बहादुर के० सी० आई० ई० के श्रवणों तक भी पहुँची। युवराज महोदय ने डोढ़ी वाले महता जी साहिब श्रीमान् मदनसिंह जी महोदय और कोठारी जी साहिब, श्रीमान् रङ्गलाल जी तथा इनके सुपुत्र श्रीमान् कारूलाल जी महोदय आदि उच्च पदाधिकारियों के द्वारा महाराज श्री के पास सन्देशा भेजा कि आप समोर में पधार कर दर्शन देवें। अतः ता० १६-१-२६ को महाराज श्री सज्जन-निवास उद्यान के समोर नामक प्रासाद में पधारे, प्राचीन ऋषि-मुनियों की भांति श्रद्धा और भक्ति पूर्वक युवराज महाराजकुमार साहिब ने जैन-दिवाकर जी का स्वागत किया। आसन ग्रहण करने के अनन्तर महाराजकुमार साहिब ने पूछा कि आपका कब पदार्पण हुआ? उत्तर में जैन-दिवाकर जी ने कहा कि ता० ३१-१२-१९२५ को आपकी इस बस्ती में आगमन हुआ है। इसके पश्चात् मुनि श्री ने उपदेश प्रारम्भ किया—

श्रीमन्,

राजा-प्रजा, सेठ-साहूकार, रईस और सईस जितने भी

चराचर इस संसार में हैं, ये सब अपने-अपने पूर्व कृत पुण्यानुसार ही, श्रेष्ठ या हीन अवस्थाओं को प्राप्त हो कर सुख-दुख का भोग करते हैं। वरना हाथ-पाँव नाक-कान आदि इन्द्रियां तो सबके समान ही होती हैं। ये सब राजा ही हो कर संसार में नहीं आते, इससे जान पड़ता है कि उनके पुण्य राजा के पूर्व कृत पुण्य से हीन श्रेणी के होते हैं। अतः आपने भी अपने पूर्व भव में राजा बनने योग्य राजा ही क्यों एक उच्च क्षत्रिय वंशोद्भव राजा बनने योग्य सुकृतों का सञ्चय किया था। इसी तरह जिन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये, उन्हीं के अनुसार वे अभी इस भव में मज़ा उड़ा रहे हैं और अब इस भव में जिन क्रियमाणों का व्यवहार हो रहा है, उन्हीं के अनुसार परलोक बने और बिगड़ेगा, क्योंकि परभव में साथ रहने वाली चीज़ केवल कर्म ही है। समस्त सांसारिक विभूतियां तो यहीं देह के साथ ही, साथ छोड़ देती हैं। इसी लिए किसी ने कहा है कि—

कवित्त

कञ्चन के आसन बासन सब कञ्चन के,
कञ्चन के पलँग असमानत धरे रहे।
हाथी हुड़शालन में घोड़े घुड़शालन में,
बन्द जामदानन में कपड़े पड़े रहे।
बेटा, बहू, बेटी अरु दौलत का पार नहीं,
जौहरात-डिब्बों पर ताले ही जड़े रहे॥

आदर्श-उपकार

स्वर्गीय श्रीमान् हिज़ हाइनेस महाराजा सर मल्हारराव
बाबा साहब पँवार, के० सी० एस० आई०
देवास २ (मालवा सेण्ट्रल इण्डिया)

यह देह छोड़ कर लम्बे हुए प्राण जब,
कुल के कुटुम्बी सब रोते ही खड़े रहें ॥

अस्तु, मनुष्य की उत्तम देह पाकर, यह समझते हुए, मनुष्य मात्र को सुकर्म में प्रवेश करना चाहिए कि सदैव धर्म ही एक मात्र परभव का साथी है। किसी महात्मा का कथन है—

तन अनित्य,संगी धरम,प्रभू यशोमय सोय।
तीन बात जो जानई, तासों खोट न होय ॥

संसार की सम्पत्ति ज़मीन की ज़मीन हीं में रह जाती है। हाथी और घोड़े ज्यों के त्यों बँधे रह जाते हैं। स्त्रियाँ, जो कल चिरसङ्गिनी बनने का दम भर रही थीं और आंखें बिछाने को हाज़िर होरही थीं, घर की घर में ही रोकर बैठ जाती हैं। स्वजन, सम्बन्धी, नौकर-चाकर, बाँदे और गुलाम श्मशान तक के ही साथी हैं। बड़े यत्नों से लालित पालित यह परम प्रिय मानव-शरीर भी, यहीं का यहीं चिता में भस्मीभूत होकर, अपना अस्तित्व खो कर पड़ा रह जाता है। अस्तु, इस कराल काल के आगे किसी का भी जोर-ज़ुल्म नहीं चलता। फिर चाहे वह राजा हो या रङ्क, सम्राट हो या माण्डलिक, एक दिन पारलौकिक पासपोर्ट कटता ही है। अन्तर बस इतना ही होता है कि कोई दो दिन देर से जाता है और कोई दो दिन पहले ही। जैनागम में ऐसा कहा है कि—

जहहे सीहो व मियं गहाय, मच्चु नरं नेइ हु अन्तकाले,

न तस्स माया व पीया व भाया,कालम्मि तम्मंस,हरा भवंति।

—उत्तराध्ययन अ० १३, सं० २२

जैसे—जिस समय मृग को सिंह अपने अधिकार में करता है उस समय मृग का कुछ जोर नहीं चलता, वैसे ही जब मौत आकर खड़ी होती है तब माता, पिता, भाई, बन्धु, मुसद्दी, बाँदे, गुलाम कोई भी मौत से बचा नहीं सकते। बचाना तो दूर रहा; मौत को एक मिनट भी रोक नहीं सकते। सब के सब प्राणी, यहाँ के ऐश-आराम को सदा के लिये यहीं छोड़ कर, केवल कृत शुभ वा अशुभ कर्मों को ही लेकर परभव को जाते हैं। इसके लिये एक कवि का यों कहना है कि—

तर्ज़ बहर तवील

पहले आये जहाँ से तो आये नगन,
फिर भी जाओगे अन्त नगन के नगन।
या तो देवेंगे फूँक लगा के अगन,
याकि करदेंगे मिट्टी में खोद दफ़न।
दो ही चीजों का साथ चलेगा वज़न,
शुभ-अशुभ कर्म जो-जो कि बाँधे है मन।
देखो, यक दिन करोगे यहाँ से गमन,
करो उस पै अमल जो है सच्चा वचन।
क्रोध औ लोभ की लग रही है अगन,
देख लो हाथ में ले के दर्पन वदन॥

संसार की यही दशा देख कर मुनिजन और महात्मागण

इस लोक की विभूतियों को नश्वर जानते हुए, अपनी हृद्‌तन्त्री के तारों को झनकाया करते हैं कि—

अर्ब खर्ब लौं द्रव्य है, उदय अस्त लौं राज।
जो तुलसी निज मरन है,तो आवे केहि काज॥

जिस समय इस शरीर का जन्म होता है उस समय इसके पास न तो ओढ़ने को दुशाला और दुपट्टा ही रहता है, और न अन्य भूषण तथा वस्त्र ही। और जब यहाँ से जाता है तब भी नंगा का नंगा ही। हिन्दू होगा तो वह जला दिया जायगा और मुसलमान होगा तो उसे ज़मीन खोद कर गाड़ दिया जायगा। आगे यदि साथ जाने वाले कोई हैं तो पुण्य या पाप ही। फिर, पुण्य जैसे इस भव में सुखदाई होता है वैसा ही वह परलोक में भी। किन्तु पाप का परिणाम यहां पर भी खराब और परभव में भी खराब। इस लिए हमारी तो संसार के प्रति यही उद्‌बोधना है कि कोई किसी को कभी न सताये। सताने से फायदा ? एक सत्कवि ने कहा है कि—

कांटा किसी को मत लगा, जो मिस्ले गुल फूला है तू।
हक़ में तेरे तीर है, किस बात पर भूला है तू॥

जो यहां पर बिना अपराध ही किसी को क़ांटा चुभोया जावे तो परभव में चक्रवृद्धि से, चतुर व्यवहारियों के समान दैव इसी कांटे का तीर बनाकर, बदला निकलवाता है। कर्मों का बदला किसी को छोड़ता नहीं, चाहे वह एक मण्डलाधीश ही हो या एक कुटिया का कंगाल नर ही, चाहे वह अवतार

ही क्यों न हो, परन्तु कृत कर्मों का वदला अवश्य सबको चुकाना ही पड़ता है। अतएव कभी भी, किसी को, किसी भी रूप से, न सताना चाहिए। अपनी हैसियत चाहे कितनी ही वड़ी क्यों न हो, पर निर्वल को दुःख देना ठीक नहीं है। जो शक्ति मनुष्यों के पास है वह शक्ति उसे "शक्तिः परेषाम् पर पीडनाय"का समर्थन करने को नहीं, वरन् उसका सदुपयोग करके उसके द्वारा अज्ञानी जीवों को सन्मार्ग का पथिक वनाने को है, दुखी-दर्दियों की सेवा करने को है। इसके लिये एक कवि का कथन इस प्रकार है—

सवल होय के निवल को, दुख न दीजिये सेन।
आखिर मुश्किल होयगा, लेने से भी देन ॥

जैसे, किसी समय एक रहँट के चारों पलड़ों में मनुष्य वैठे हुए थे। ऊपर के पलड़े वाले ने खँखार कर थूकने का विचार किया। इतने ही में नीचे के पलड़े वाले ने कहा कि 'देख भाई, थूकना मत, नहीं तो मेरे कपड़े खराव हो जायेंगे।' परन्तु उसने उसकी वात पर जरा भी ध्यान नहीं दिया—इतना भी नहीं सोचा कि थोड़ी देर में मेरा पलड़ा भी नीचे जायगा। अन्त में, ऊँचेपन के ऐश्वर्य्य के मद में, उसने थूक ही दिया और उस थूक से नीचे वाले के कपड़े खराव होगये। पर अब की वार रहँट वाले के चक्कर देते ही नीचे पलड़ेवाले की ऊपर होने को वारी आई और ऊपर वाला नीचे आ गया। वस फिर क्या था, अव वह ऊपर वाला—जिसके कपड़े थूक से

खराव हो चुके थे नीचेवाले के ऊपर पेशाब करने की चेष्टा करने लगा। यह देख कर नीचेवाले ने कहा कि मेरे कपड़े बहुत ही खराब होजायेंगे। उसने उत्तर दिया कि भाई, यह तो तेरे थूक का वदला है। इस प्रकार जो किसी के हक़ में नुक़सान करने को उतारू होता है उसे उसका वदला, मूल और व्याज के रूप में सौगुना सहने के लिये, सदा तैयार रहना चाहिये। अतएव प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह पाप से दूर रहने का सतत् प्रयत्न करे। जिस तरह कंजूस रातदिन धनसंग्रह में लगा रहता है उस तरह पुण्योपार्जन करने में ही वह अपने जीवन का एकमात्र उद्देश्य समझे। पुण्योपार्जन—यह परभव के लिए सफ़र-खर्च है। जिस तरह कभी आपके वाहर पधारने पर रसद, डेरे-डाँडे आदि का इन्तिज़ाम पहले से करवा रखना पड़ता है, उसी तरह परभव का भी इन्तिज़ाम इसी भव में करना-करवाना अत्यन्त आवश्यक वात है। और वह इन्तिज़ाम वस यही है कि प्राणी मात्र पर सदैव दया का विशेष भाव रक्खा जाय। दया—यह सारे धार्मिक सद्ग्रंथों का सार-रूप मसाला है। श्री मद्भगवद्गीता में श्री कृष्णचन्द्र महाराज ने भी कहा है:—

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं, मार्दवंह्रीर चापलम्॥

—श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय, श्लोक १६

किसी स्थान पर एक ऐसी सन्दूक़ लगवा दी जाय

जिसमें प्रत्येक दुखी-दर्दी, दीन-अनाथ प्रजा अपने अन्तःकरण की पुकार की अर्जियाँ उसमें डाल सकें फिर आप स्वतः उस सन्दूक़ को खोलें और दुःखग्रस्त प्रजा की अन्तर्वेदना को जानें। इसके विपरीत, उनकी अर्जियाँ आप महानुभावों के पास पहुँचने के मार्ग में, बड़ी-बड़ी बाधायें हैं। अतः इसके लिए एक ऐसे सुगम मार्ग का अनुसन्धान और अवलम्बन किया जाय कि जिससे राज्यान्तर्गत अन्तर्वेदना का सच्चा ज्ञान आपको होजाय। अन्त में अपनी प्राणाधिक प्रिय प्रजा के साथ सहानुभूति दिखाने का यह मार्ग एक उत्तम राजदूत का काम हो जाता है। आपको ऐसा करना भी चाहिए। क्योंकि, इस समय राज्य के कार्यों का संचालन आप करते हैं। विशेष क्या कहा जाय, आप स्वयं अष्ट दिग्पालों के अंश से सम्भूत हैं, अवतरित हैं। हम जो कुछ भी कहते हैं वह स्वार्थ-शून्य भाव से प्रेरित होकर ही कहते और करते हैं। आप जानते ही हैं, न तो हमें भेंट में किसी से ज़मीन लेने की इच्छा है और न हम धन या जागीर की प्राप्ति के लिए ही साधुवेष धारण किये हुए हैं। अतएव हमें किसी भी वात की कोई भी इच्छा नहीं। यदि इच्छा और याचना है तो केवल यही कि आप जैसे नर-केशरियों के आश्रय में प्राणीमात्र को अभयदान का शुभ सन्देश मिले, अर्थात् हमारे गमन-आगमन के दोनों दिवस राजधानी में जीव-हिंसा न होने के लिए अगता पलाया जाय। वस यही हमारी प्राणों से भी प्यारी भेंट और उत्तम अभ्यर्थना

है । इत्यलम् ।

इस सारगर्भित भाषण को सुन कर श्रीमान् महाराज कुमार साहिब का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ और भेंट देने की स्वीकृति कर उन्होंने सारे शहर में अगता पलाने के लिए सनद नम्बर २६७६७ का हुक्म जारी कर के अपनी करुणा-शीलता का परिचय दिया ।

इसके पश्चात हिन्दूकुल सूर्य हिज हाइनेस दि महाराजाधिराज महाराना साहेब श्रीमान् फतहसिंह जी साहेब बहादुर जी. सी. एस. आई. जी. सी. आई. ई. जी. सी. ही. ओ. महाराना जी आफ उदयपुर की ओर से ता० २१-१-२८ को मेवाड़-राज्य के दीवान रायबहादुर स्व० पन्नालाल जी महता सी. आई. ई., के सुपुत्र श्रीमान फतहलाल जी महता द्वारा सूचना मिली कि 'मुनि श्री को यहाँ पधरावें'। सूचना मिलने पर अपने चौदह शिष्यों के साथ मुनि श्री शिव-निवास नामक राज प्रासाद में पधारे । श्रीमान महाराणा साहब ने भक्तिभाव पूर्वक जैन-दिवाकर जी का स्वागत किया । तदुपरान्त महाराणा साहब ने कहा—"आप पधारवा की बड़ी कृपा की धी ।" उत्तर में जैन-दिवाकर जी ने कहा कि हमारा तो यही कर्त्तव्य है । फिर निम्न लिखित श्लोक कह कर जैन-दिवाकर जी ने उपदेश प्रारम्भ किया—

ओंकारं विन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमोनमः ॥

ॐ—यह पवित्र शब्द परमात्मावाची है । इसका जप बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और सांसारिक जन सभी निर्वाण-पद की प्राप्ति के लिए करते हैं । इसके रटने से उस विश्वबन्धु को नमस्कार होता है । इस शब्द की उत्पत्ति जैनों में महामंत्र के आद्यक्षरों से होती है । यह एक बीजाक्षर है । इसके बोने का क्षेत्र अधिकारी मनुष्य का हृदय रूपी क्षेत्र ही है । इसके सिवाय बीज-वपन की कोई दूसरी भूमि इसके उपयुक्त ही नहीं होती । बस यही भूमि एक उत्तम स्थान है । देवता तक इस क्षेत्र के लिए प्यासे रहते हैं । वे भी सदा इसी धुन में लालायित हो कर अनिमेष नेत्रों से टकटकी लगाये रहते हैं कि कब हम भी मनुष्य हो कर परमात्मा के जाप का रस-पान कर सकें और कब निर्वाण-पद की प्राप्ति का शुभ संयोग पावें । मानव-शरीर ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य 'नर' से 'नारायण' बन सकता है । प्रथम तो, महत्वपूर्ण मानव-शरीर का मिलना ही दुर्लभ है । बिना पूर्व संस्कृति और सुकृति के उसका आत्म-चिन्तवन रत होना तो और कठिन बात है । ऐसा नर-जन्म नसीब ही कब होता है ? जैसा कि श्रीमद्भागवत् के ग्यारहवें स्कन्ध में कहा है कि—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम् ।
मायानुकूलेन न भस्वतेरितं पुमान् भवाब्धि न तरेत्स आत्महा ॥

श्री महाराणा साहिब ने जैन-दिवाकर जी से कहा कि—'ईं श्लोक को कईं अर्थ है ?' तब मुनि श्री ने भावार्थ कहा कि

हिंज हाईनेस महाराजा श्री दिलीपसिंह जी साहब बहादुर
सैलाना (मालवा)

हे हिन्दूकुल सूर्य मेवाड़ाधिपति, चौरासी लाख योनियों में मनुष्य-जन्म मिलना अति कठिन है। यदि परभव के पुण्योदय से कहीं मनुष्य-देह की प्राप्ति हो भी गई और आर्य-क्षेत्र नहीं मिला तो वह मानव-जन्म किस काम का? यदि मनुष्य-देह और आर्य-क्षेत्र दोनों की प्राप्ति हो भी गई और उच्च कुल न मिला तो भी जन्म की खेप व्यर्थ ही गई। यदि प्रगाढ़ पुण्यों के प्रताप से मनुष्य-जन्म, आर्यक्षेत्र और उत्तम कुल तीनों ही मिल गये, परन्तु चिरन्तन आयु की फिर भी अप्राप्ति ही रही, तो भी नर-जन्म व्यर्थ ही है। फिर, नर-जन्म, आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल और चिरन्तन आयु भी मिली और पूर्ण इन्द्रियों की अप्राप्ति ही रही तो भी यह नर देह किसी काम की नहीं। फिर यदि इन पाँचों की प्राप्ति भी हो गई, पर शारीरिक आरोग्य का फिर भी अभाव ही रहा, तो भी यह मानव-देह व्यर्थ है। अब इन छहों की प्राप्ति भी हो जाय, पर यदि निस्पृही उपदेशक का अभाव बना ही रहे तो भी सदुपदेश न सुनने से ज्ञान की अप्राप्ति ही रहेगी, नर-देह "ज्ञानेन हीनः पशुभिः समानः" हो जायगी। फिर यदि सातों की दैव-संयोग से प्राप्ति हो भी गई, तो भी सदुपदेश के वचनों में आस्तिक भाव रख कर विश्वास करना घोर कठिन है। अब यदि विश्वास भी कर लिया जाय तो भी तदनुरूप कार्य करना बहुत ही कठिन होगा। फिर यदि तदनुरूप कार्य करने की शक्ति भी मिल जाय तो भी प्रत्येक पुरुष को ऊपर की प्रत्येक बात का क्रमशः मिलना ही घोरातिघोर कठिन है। तब तो इन

सब का अचानक और अनायास मिलना अत्यन्त ही दुर्लभ है, परन्तु ये सब बातें आपको सहज ही में सम्प्राप्त हैं। अतएव मानना होगा कि आपने परभव में घोरातिघोर तपस्या की होगी। यह उसी तपश्चर्य्या का जीता-जागता प्रत्यक्ष फल है कि ये सब राजसी वैभव वर्तमान में आपको सुलभ हो रहे हैं। श्रीमानों के पसीने की बूँद बहते देख ये खड़े हुए दास-दासी अपने खून की नदी बहाने को तत्पर हैं। फिर जब यह निर्विवाद निर्धारित है कि परभव की उग्र तपस्या ही के कारण आप इस भव में वड़े भारी प्रतापी रईस हुए हैं, तो फिर भविष्य की पूँजी के लिये भी इस जन्म में जो आप पुण्योपार्जन कर रहे हैं, उससे अधिक करना चाहिए। इस के विपरीत यदि पुण्योपार्जन में ज़रा भी कोर-कसर रही तो आगे के लिए वही चौरासी की चक्रफेरी तैयार धरी है।

यह सूर्य्यवंश श्री भगवान् ऋषभदेव के भरत और सूर्य्य-सम्भव पुत्रों से चला आ रहा है। इसी वंश के सैकड़ों राजा तपोवल से परमपद निर्वाण के अधिकारी हुए हैं। अब आप को भी चतुर्थ आश्रम प्राप्त है। इस आश्रम का कार्य प्रभु-भजन और आत्म-चिन्तवन है। अतः आप भी प्रभु-भजन और आत्म-चिन्तवन करें और विशेष रूप से दीन-दुखियों पर दया-भाव रखें। जो आपने पहले किया था उसका आनन्द तो अब आप यहाँ लूट रहे हैं, यह बात तो है ही नहीं कि विना तपस्या किये ही राज्य प्राप्ति सम्भव हो। यदि यह सम्भव होता तो प्रत्येक

मनुष्य ही राजा बन बैठता, पर ऐसी बात नहीं है। जो जन पूर्व भव और इस भव में पुण्य-संचय करेंगे उनके चरणों में सांसारिक सुख स्वयं ही आ उपस्थित होंगे।

उदाहरणार्थ, किसी समय दो सखियाँ गाँव के बाहर कुएँ पर जल भरती हुई क्या देखती हैं कि एक राजा अपनी सवारी के साथ सैर करने को जा रहा है। पहले तो वह हाथी पर बैठा था, फिर चलते-चलते हाथी से उतर कर घोड़े पर जा बैठा। कुछ दूर और चलने पर घोड़े से उतर कर वह सुखपाल में आसीन हुआ। कुछ दूर चलने के बाद वह सुखपाल से भी उतर पड़ा और एक वट-वृक्ष के नीचे बैठ गया। बाँदे और गुलाम उसके पाँव दाबने लगे। उसकी यह दशा देख कर उन दोनों सखियों में से एक ने दूसरी से यों पूछा कि—

दोहा

हाथी चढ़ घोड़े चढ़थाँ, घोड़े चढ़ सुखचाँव।
कब का थाक्या ऐ सखी, अबे दवावे पाँव॥

हे सखी, हाथी पर चढ़ कर फिर घोड़े पर बैठे और फिर सुखपाल में बैठे। एक क़दम भी पैदल चले नहीं और पड़े-पड़े पाँव दबवा रहे हैं—तो ये कब के थके हुए हैं सो पाँव दबवा रहे हैं? उत्तर में दूसरी सखी ने कहा कि—

दोहा

भूखा मर भूवां मरे, कीन्हा उग्र गमन।
जब का थाक्या ऐ सखी, अबे दबावे चरन॥

हे सखी, पूर्व भव में इन्होंने तपस्या की, जीवों के प्रति दया पालन की, जहां-तहां जमीन पर पड़े रहे और बिना संवारी के ही धूप, वात और शीत सहकर के नंगे पैर ही विहार (गमन) किया। तभी से ये थके हुए हैं और अब हे सखी, ये पैर दबवा रहे हैं। यह सब पूर्व भव के किये हुए पुण्यों का प्रत्यक्ष फल है। इसलिए मनुष्यमात्र का परम कर्त्तव्य है कि यदि वह सुखी बनना चाहे तो प्राणीमात्र से द्वेष करना छोड़ दे। निरन्तर कार्यरूप से "आत्मवत् सर्व भूतेषु" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" इन महामन्त्रों का पाठ करता हुआ पुण्यों का सञ्चय करे। ऐसा करने पर अवश्य ही उसे यहां और परभव में सुख की प्राप्ति होगी। और अन्त में उसे मोक्ष मिलेगा। श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने गीता में कहा है कि—

अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः सम दुःख सुखः क्षमी॥

—श्री मद्भगवद्गीता, अध्याय १२, श्लोक १३ वां

अतएव, आप मूक जीवों पर विशेष रूप से कृपा दृष्टि रखें और रखवावें। अनाथ और दीन दुखियों की बातों को पहले श्रवण करें। प्रजा जो है वह आपके पुत्र तुल्य है। जैसे पुत्र पिता के आधार पर अवलम्बित रहता है, वैसे ही प्रजा भी आपके आधार पर अवलम्बित है। प्रजा को भी चाहिये कि वह अपने नरनाथ की आज्ञाओं को अपने पिता की आज्ञाओं के समान मान कर परिपालन करे और कभी उल्लङ्घन न करे। हम

सदैव यही बात प्रजा को भी उपदेश करते हैं कि किसी को भी कोई द्रोह की दृष्टिसे न देखे। झूठ न बोले। पर-स्त्री-गमन न करे। धन का अपव्यय करना छोड़ दें। झूठी गवाही न दे। किसी के साथ क्रोध, छल, कपट और दगाबाजी न करे। यदि इस उपदेश के अनुसार प्रजा चलने लगे तो फिर न तो पुलिस की जरूरत रहे और न क़ैदखानों की ही। इस पर श्रीमान् महाराणा जी साहब कहने लगे कि—

"हां सही बात है, पाछे कैदखाना की कांई जरूरत है!"

तब मुनि श्री फिर बोले कि मैं आपकी इस बस्ती में लगभग २५ दिनों से प्रजा को उपदेश दे रहा हूं। आपने भी सुधार आदि कार्यों के लिए हाकिम, मुसद्दी, पुलिस, सेनाओं आदि का वैतनिक प्रबन्ध प्रत्येक गांव में कर रक्खा है। और हम लोग तो निस्वार्थ भाव से ही आप की प्रजा को सुधार का मार्ग दिखा रहे हैं। इस पर श्रीमान् महाराणा साहब बोले कि—"वो काम तो कई है यो आपको कामहीज मोटो है"।

तदुपरान्त मुनि श्री ने अपने उपदेश को स्थगित कर स्वस्थित स्थान पर जाने की चेष्टा की। इतने में फिर महाराणा साहब ने फर्माया कि—"अब आप अठे कतराक दिन तक और विराजोगा?" उत्तर में मुनि श्री ने कहा कि यदि हम यहां पूर्ण कल्प करें तो चार या पांच रोज और ठहर सकते हैं। यदि नहीं ठहरें तो आज कल ही में विहार कर जायेंगे। किन्तु, जिस दिन विहार करेंगे उस दिन अगेता रखवाने के लिये श्रीमान् युवराज

महाराजकुमार साहब ने नं० २१७६७ की सनद लिख दी है। यह सुन कर महाराणा साहब ने अगते के लिए अपनी सम्मति और महाराजकुमार के साथ हृदय से सहानुभूति प्रदर्शित की। उपदेश सुन कर बड़े ही प्रसन्न हुए। फिर वे बोले कि—"आप लोगा का दर्शन कर मने बड़ी खुशी हुई। अतरादिन पहली मने आपकी मालूम नहीं थी।"

डौंड़ी पिटवाई

विहार के रोज श्रीमान् महाराणा साहब और कुँवर श्री बावजी राज की ओर से सारे शहर में नम्बर २१७६७ के हुक्म की पाबन्दी में घोषणा कराई गई कि—"काले चौथमल्ल जी महाराज विहार करेगा सो अगतो राखजो। नहीं राखोगा तो सरकार का कसूरवार होवोगा।" शहर में इस प्रकार की घोषणा होते ही लोगों ने अगता पाला।

सायंकाल को सालुम्बर रावत जी श्री ओनाड़ सिंह जी साहब मुनि श्री के दर्शनों को पधारे। रावत जी साहब महाराणा साहब के सोलह उमरावों में से एक हैं। दर्शन और वार्त्तालाप करने से उनका चित्त बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उन्होंने कहा कि—"जब मैं यहां आया हूँ तो कुछ न कुछ दया-विषयक पदार्थ आपके भेंट करना मुझे जरूरी है।" 'भिण्डल' जानवर मारने की मुझे बड़ी इच्छा रहती है, मुझे ही क्या, क्षत्रिय मात्र को रहती है। किन्तु आज से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उसे नहीं मारूँगा।"

जिस समय श्री जैन-दिवाकर जी महाराज हाथीपोल में व्याख्यान दे रहे थे उस समय वहां पारसोली के राव जी साहिब श्रीमान् लालसिंह जी ने भी व्याख्यान श्रवण किया। अनन्तर वहां से विहार कर मुनि श्री आहिड़ पधारे। सालुम्बर रावत जी साहब वहां भी एक दिन में दो वक्त, मुनि श्री के दर्शनों को पधारे। फिर मुनि श्री डबोक पधारे। वहां पर करजाली महाराज साहब श्रीमान् लक्ष्मण सिंह जी मुनि श्री के दर्शनार्थ पधारे। करजाली महाराज साहब श्रीमती महारानी साहिबा के भतीजे हैं।

सैलाना-नरेश

वहां से विहार कर मुनि श्री सैलाना स्टेट पधारे। वहां पर प्रजावत्सल सरकार श्रीमान् दलीपसिंह जी साहब ने तीन व्याख्यान श्रवण किया। उन्होंने प्रसन्न होकर मुनि श्री की प्रशंसा की। कहा कि—"सचमुच में आप जैसे स्वार्थत्यागी महोपदेशकों की वाणी में ही ओजस्विता और आकर्षण-शक्ति रहती है और इसके द्वारा अनेक उपकार होते रहते हैं। आपसे प्रार्थना है कि आप यह चातुर्मास यहीं करें। उत्तर में मुनि श्री ने कहा "कि इस चातुर्मास की विनती तो उदयपुर के लिए हो गई है।" तब उपस्थित जनता की ओर देख कर श्रीमान् सैलाना-सरकार ने कहा कि इस चातुर्मास के बाद संवत् १९८४ का चातुर्मास यहीं कराने की तुम लोग भरसक कोशिश करना। फिर वे मुनि श्री से बोले कि जब ये लोग आपके पास विनती

करने आवें तो इनकी विनती अवश्य ही स्वीकार की जाय।

यहाँ से विहार कर जैन - दिवाकर जी महाराज बड़ी सादड़ी (मेवाड़) पधारे। वहाँ राजराणा दुलहसिंह जी साहब ने दो व्याख्यान श्रवण किये। और व्याख्यान सुन कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की राजराणा साहब बोले कि क़साई मुझे टक्स देकर गोश्त की दुकान खोलना चाहता है, पर मैंने अस्वीकार कर दिया है। लोभ के लिए यहाँ ऐसा अनर्थ क्यों कराऊँ ? सो महाराज, मैंने मना कर दिया है। मुनि श्री बोले कि आपने बहुत ठीक किया। पश्चात् राजराणा साहब ने मुनि श्री की सेवा में भेंट-स्वरूप अभयदान का पट्टा प्रदान किया। उन्होंने अपने जागीरदारों और राज-कर्मचारियों से भी यथाशक्ति त्याग और प्रतिज्ञा कराई। विस्तार-भय के कारण इसका उल्लेख हम यहाँ नहीं कर रहे हैं।

बड़ी सादड़ी से विहार कर मुनि श्री बोहड़े पधारे। वहां राव जी साहब श्रीमान् नाहरसिंह जी तथा आपके सुपुत्र श्री० नारायण सिंह जी साहब ने तीन व्याख्यान श्रवण किये। फलस्वरूप रावत जी साहब ने मुनि श्री की सेवा में अभयदान का पट्टा प्रदान किया है। वहां से विहार कर मुनि श्री लूणदे पधारे। वहां के रावत जी साहब श्रीमान् जवान-सिंह जी और आपके कुँवर साहब ने मुनि श्री के प्रभावशाली उपदेश श्रवण किये। रावत जी साहब ने भी मुनि श्री की सेवा में भेंट-स्वरूप अभयदान का पट्टा अर्पण किया।

श्रीमान् महाराजा इंद्रगढ़-नरेश

वहां से विहार कर मुनि श्री कानोड़ पधारे। वहां रावत जी साहब श्रीमान् केशरीसिंह जी ने मुनि श्री का उपदेश श्रवण किया। रावतजी साहब ने भी मुनि श्री की सेवा में अभयदान का पट्टा भेंट किया। वहां से विहार कर मुनि श्री डूँगरे होते हुए भिण्डर पधारे। वहां महाराज साहब श्रीमान् भूपालसिंह जी ने तीन व्याख्यान श्रवण किये। उन्होंने भी अभयदान का पट्टा भेंट किया। वहां से विहार कर मुनि श्री बम्बोरे पधारे। वहां रावत जी साहब श्रीमान् मोड़सिंह जी ने दो व्याख्यान श्रवण किये। उन्होंने भी मुनि श्री की सेवा में अभयदान का पट्टा भेंट किया। वहां से विहार कर मुनि श्री कुरावड़ पधारे। वहां रावत जी साहब श्रीमान् बलवन्त सिंह जी ने दो व्याख्यान श्रवण किये। पश्चात् रावत जी साहब ने मुनि श्री की सेवा में अभयदान का पट्टा भेंट किया। वहां से विहार कर मुनि श्री बाठरड़े पधारे। वहां रावत जी साहब श्रीमान् दलीपसिंह जी ने दो व्याख्यान श्रवण किये। फलस्वरूप श्री रावत जी साहब ने मुनि श्री की सेवा में अभयदान का पट्टा भेंट किया।

उदयपुर चातुर्मास

वहां से विहार कर मुनि श्री आहिड़ पधारे। उस रोज उदयपुर में, घोषणापत्र नं० ५४२ के अनुसार, श्रीमान् महाराणा साहब हिन्दवासूर्य्य, और श्रीमान् कुँवर जी बापजीराज की ओर से घोषणा कराई गई कि—"काले चौथमल जी महाराज

पधारेगा सो अगतो राख जो । नहीं राखोगा तो सरकार का कसूरवार होवोगा ।" इस प्रकार घोषणा के होते ही लोगों ने अगता पाला । घोषणा-द्वारा ही जनता को मुनि श्री के शुभागमन का शुभ सन्देश भी मिला । बनेड़ा के राजा साहब श्रीमान् अमर सिंह जी श्रीमान् महाराणा साहब के भाइयों में से हैं । तुमुल जयघोषों के बीच, चौक बाजार घण्टाघर के पास, उन्हीं की हवेली में, ठाणा १२ से मुनि श्री का पदार्पण कराया गया । पारसोली से श्रीमान् रावत जी साहब का आषाढ़ शुक्ला द्वादशी का लिखा पत्र आया कि—"कार्ड नं० ४२ का मिला । पढ़ने से हालात मालूम हुए । श्रीमान् मुनि महाराज श्री १००८ श्री चौथमल जी साहब आषाढ़ शुक्ला ६ को चातुर्मास के लिये शहर (उदयपुर) में पधारे, इसकी बड़ी भारी खुशी है । ऐसे मुनियों का शुभागमन व उनका दर्शन व उनके धर्म - उपदेशों का लाभ उन्हीं मनुष्यों को होता है, जिनके पूर्वोपार्जित पुण्य का उदय हो । किमधिकम् । इसे शहर का अहोभाग्य समझना चाहिये । यहाँ पधारना नहीं हुआ, इसका पूरा खेद है, किन्तु क्या किया जावे । ऐसे मुनियों के दर्शन और सम्भाषण जब कहीं पुण्य का उदय होता है तभी प्राप्त होता है । अस्तु, यह हमारे नगर की बदनसीबी है । मुनि महाराज याद फ़रमाते हैं, यह उनकी कृपा है । मैं आश्विन कृष्ण तक उदयपुर पहुँचूँगा । श्रीमान् श्री श्री श्री १००८ श्री मुनि महाराज की सेवा में वन्दना मालूम हो ।

द॰ राव लालसिंह मु॰ पारसोली"

एक दिन भगवानपुरे के रावत जी साहब श्रीमान् सुजान सिंह जी मुनि श्री के दर्शनार्थ पधारे।

भाद्रपद शुक्ला ६ को हिन्दूकुलसूर्य्य, प्रजावत्सल, दयालु श्रीमन्त श्री महाराना जी साहिब और स्वनामधन्य दयालु श्रीमन्त बापजीराज की ओर से डौंडी द्वारा सारे शहर में अगता पलाया गया। इस दिन आठ बजे तक व्याख्यान हुआ। तदनन्तर जैन-दिवाकर जी, तपस्वी जी और अन्यान्य मुनिगण, तपस्वी जी के पारणा लेने के लिये स्वस्थितिस्थान से बाहर पधार रहे थे कि इतने ही में श्रीमन्त महाराणा साहब की ओर से शाह जी रत्नसिंह जी और यशवन्तसिंह जी ने मुनि श्री के पास आकर कहा कि आप राजमहलों में गोचरी के लिए पधारें। श्री महाराणा साहब आपकी राह देख रहे हैं। इस पर मुनि श्री ने विचार किया कि जैसे अन्न कृत सूत्र में, कृष्णचन्द्र जी महाराज के समय में, साधु लोग गोचरी के लिए राजमहलों में पधारते थे, वैसे ही उस समय का अनुशीलन कर श्री महाराणा साहब ने भी अपने पास सन्देश भेजा है। कोई हर्ज नहीं है, चलना चाहिए। तब अपने साथ तपस्वी जी और अन्य मुनियों को लेकर मुनि श्री गोचरी के लिए राजमहल में पधारे। साथ में लगभग ४०० मनुष्य भी थे। मुनि श्री अन्य मुनिगण के साथ 'शिवनिवास' महल में पधारे। वहाँ स्वयं श्री महाराणा साहब ने मुनि श्री का यथोचित स्वागत किया और अपने हाथों से कुछ कस्तूरी बहराई। पीछे थोड़ा सा गर्म दूध, श्री एकलिङ्ग जी

के महाप्रसाद में से थोड़ा सा वहराया और फिर कुछ लवंग वहराये। ये सब पदार्थ 'पाणेरे' नामक स्थान में रखे जाते हैं। पाठक लोग यह न समझें कि श्री महाराणा साहव ने मुनि श्री को थोड़ा-थोड़ा वहराया, किन्तु बात यह है कि मुनि श्री ने ही अल्प लिया। महाराणा साहब ने मुनि श्री को वहराकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने फिर एक वार उपदेश सुनने की इच्छा प्रकट करते हुए मुनि श्री से फ़रमाया, "एक दिन और भी आपको तकलीफ़ दूँगा अर्थात् एक रोज़ फिर भी यहां पधारजो।"

एक दिन वनेड़ा के राजासाहव के पाटवी राजकुमार श्रीमान् प्रतापसिंह जी और करजाली महाराज श्रीमान् लक्ष्मण सिंह जी के राजकुमार श्रीमान् जगतसिंह जी दोनों महानुभाव मुनि श्री के दर्शनार्थ पधारे और कुछ समय तक धर्म-विषय पर वार्त्तालाप करते रहे।

एक दिन महाराणा साहव के भतीजे करजाली महाराज श्रीमान् चतरसिंह जी साहव और श्रीमान् लक्ष्मण सिंह जी के पुत्ररत्न श्रीमान् जगत सिंह जी और अभयसिंह जी मुनि श्री के दर्शनार्थ पधारे। वहुत देर तक तात्विक विषय पर सम्भाषण होता रहा। इस वार्त्तालाप से उन महानुभावों का चित्त वहुत प्रसन्न हुआ।

आश्विन शुक्ला ७ को गोचरी के लिये मुनि श्री गणेश घाटी पर पधारे थे। उस समय श्रीमान् हरिसिंह जी की ओर से

घर पवित्र करने की प्रार्थना की गई है। उसे स्वीकार कर हवेली में पधारे। वहाँ किसी के द्वारा मालूम हुआ कि कल के दिन यहाँ बकरा मारा जायगा (जो कि दशहरे के कारण से प्रतिवर्ष मारा जाता है)। तब मुनि श्री ने श्री हरिसिंह जी से कहा— "जब हम यहाँ आये हैं तो भेंट-स्वरूप में हमें कुछ मिलना चाहिए। सो यही भेंट रखदें, कल बकरा बध न करने के साथ ही आगे को भी प्रति वर्ष बकरा-बध न हो।" मुनि श्री के इतना कहने के साथ ही चट श्री हरिसिंह जी ने प्रतिज्ञा करली कि अब प्रति वर्ष बकरा नहीं मारेंगे, प्रत्युत उसके कानों में अमर कड़ी डलवाया करेंगे।

आश्विन शुक्ला ११ को बनेड़ा के राजा श्रीमान अमरसिंह जी साहब और श्रीमान बदनोर ठाकुर साहब ने व्याख्यान का लाभ लिया। बनेड़ा के राजा श्रीमान् अमरसिंह जी साहब हिन्दू-कुल-सूर्य्य श्रीमन्त महाराणा साहब के भाइयों में से हैं। इनका बर्ताव बड़े उच्च कोटि का है। आप श्री वीरेन्द्र भीमसिंह जी के वंश के हैं, जिन्होंने अपने छोटे भ्राता महाराणा श्री जयसिंह जी को पिता की आज्ञा से राज दे आदर्श त्याग का परिचय दिया था। आश्विन शुक्ला १२ को ये श्रीमान् अमरसिंह जी साहब, बेदला के रायबहादुर श्रीमान नाहरसिंह जी साहब और मेजा रावत जी श्री जयसिंह जी साहब ने व्याख्यान श्रवण का लाभ लिया। आप सभी हिन्दू - कुल - सूर्य्य श्रीमन्त महाराणा साहब के सोलह उमरावों में से हैं।

आश्विन शुक्ला १४ को महाराणा साहब के भतीजे श्रीमान महाराज हिम्मतसिंह जी साहब के पुत्ररत्न श्री शिवदान सिंह जी, प्रतापसिंह जी और हमीरसिंह जी ने व्याख्यान-श्रवण का लाभ लिया।

आश्विन शुक्ला १५ को भदेहर रावत जी साहब श्रीमान तखतसिंह जी और लासांणी ठाकुर साहब श्रीमान खुमाणसिंह जी साहब ने व्याख्यान-श्रवण का लाभ लिया। श्रीमान ठाकुर साहब हिन्दू-कुल-सूर्य्य महाराणा साहब के बत्तीस उमरावों में से हैं।

कार्तिक कृष्ण १ को देलवाड़ा के राजराणा श्रीमान यशवन्त सिंह जी साहब ने व्याख्यान-श्रवण का लाभ लिया। आप महाराणा साहब के सोलह उमरावों में से हैं। सायंकाल को पारसोली रावत जी साहब श्रीमान लालसिंह जी मुनि श्री के दर्शनार्थ पधारे। आप भी महाराणा साहब के सोलह उमरावों में से हैं।

कार्तिक कृष्ण ४ को मध्याह्न के समय श्रीमन्त महाराणा साहब की ओर से श्रीमदनसिंह जी के साथ सन्देशा प्राप्त हुआ कि मुनि श्री को यहाँ पधरावें। ऐसी सूचना मिलने पर मुनि श्री शिष्य-मण्डली सहित शिव-निवास महल में पधारे। स्वयं महाराणा साहब ने विनय और भक्तिभाव पूर्वक मुनि श्री का स्वागत किया।

उपदेश

भक्तामर प्रणत मौलि मणि प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित पापतमो वितानम्।
सम्यक्प्रणम्य जिन पादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥
यः संस्तुतः सकल वाङ्मय तत्त्वबोधा-
दुद्भुत बुद्धि पटुभिः सुरलोक नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्त हरैरुदारैः-
स्तोष्ये किलाहमपितं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥

हे हिन्दू कुल सूर्य्य मेवाड़ाधिपते ! इस संसार में सबसे प्रथम भगवान ऋषभदेव ने सर्वार्थ सिद्ध विमान (छब्बीसवें स्वर्ग) से मरुदेवी की कुक्षी में आकर जन्म लिया था। इनकी आयु चौरासी लक्ष पूर्व की थी। इस पर श्री महाराणा साहब ने फ़रमाया कि "पूर्व किने केवे ?" उत्तर में मुनि श्री ने फ़रमाया कि ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व होता है। ऐसा शास्त्रीय प्रमाण देकर मुनि श्री आगे बोले—उन्हीं भगवान ऋषभदेव ने ८३ लक्ष पूर्व तक संसार में रह कर राज - नीति का प्रचार किया था और इसके साथ संसारी रीति-नीति का भी दिग्दर्शन कराया था। उस समय लोग खान-पान, शिल्पकला आदि का व्यवहार नहीं जानते थे। अतएव उन सबों को उस रीति से परिचित किया। ८३ लक्ष पूर्व के पश्चात् उन्हीं भगवान् ऋषभदेव ने १ - लक्ष पूर्व तक संसार के लोगों को धर्म बताया

और आत्मा-परमात्मा का भेद दिखाया। उस उपदेश का कुछ अंश इस प्रकार है:—अनेक जन्म-जन्मान्तरों में किये हुए पापों से जीवात्मा मुक्त हो जाय तो वही आत्मा परमात्मा के रूप में परिणित हो जाती है।

हे हिन्दू-कुल-सूर्य्य! ये पाप ही इस आत्मा के परिभ्रमण कराने के कारण हैं। यदि यह आत्मा भविष्य में पाप न करे और भूतकाल में किये हुए पापों को सत्कर्म द्वारा नाश करे तो उस आत्मा की सद्गति एवम् मोक्ष होने में कोई सन्देह नहीं है। अब रही यह बात कि पाप कितने प्रकार के हैं? और कौन से कार्य करने से संगृहीत होते हैं?—सो इसे भी श्रवण करिए।

हे महाराणा साहब! पाप अठारह प्रकार के हैं और अठारह कार्य करने से अठारह पाप संगृहीत होते हैं। उन में से प्रथम 'प्राणातिपात' का पाप है। इसका अर्थ यह है कि एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यंत प्राणियों के प्राण अपहरण करने को प्राणातिपात का प्रथम पाप कहते हैं। दूसरा पाप 'मृषावाद' झूठ बोलने का है। तीसरा पाप 'अदत्ता दान' किसी की वस्तु चुपके से चुरा लेने का है। चौथा पाप 'मैथुन' कुशील सेवन करने का है। पाँचवां पाप 'परिग्रह' धन पर ममत्व करने का है। छठा पाप 'क्रोध' क्रोध करने का है। सातवां पाप 'मान' घमण्ड करने का है। आठवां 'माया' कपट करने का है। नवां पाप 'लोभ' लालच करने का है। दशवां पाप 'राग' प्रिय वस्तु पर स्नेह करने का है। ग्यारहवां पाप 'द्वेष' अप्रिय वस्तु पर अप्रसन्नता

स्वर्गीय नवाब साहब श्रीमान् सर शेर महम्मद खां जी
बहादुर के० जी० सी० आई० ई० पालनपुर (गुजरात)

प्रकट करने का है। बारहवाँ पाप 'कलह' परस्पर लड़ने-झगड़ने का है। तेरहवाँ पाप 'अभ्याख्यान' किसी पर दोषारोपण करने का है। चौदहवाँ पाप 'पैशुन' किसी की चुग़ली खाने का है। पन्द्रहवाँ पाप 'परापवाद' औरों के अवगुण प्रकट करने का है। सोलहवाँ पाप 'रति - अरति' ऐश-आराम के कामों में प्रसन्नता और धर्म-कार्य में अप्रसन्नता प्रकट करने का है। सत्रहवां पाप 'माया मृषा' कपटयुक्त झूठ बोलने का है। अठारहवां पाप 'मिथ्यात्व दर्शन' जो देव को नहीं माने, गुरु को नहीं माने, धर्म को नहीं माने वह अठारहवें पाप का भागी है। इस पर महाराणा साहब ने फ़र्माया कि "ई तो बीस हेगिया"। उत्तर में मुनि श्री ने कहा—"अठारहवें पाप के ही भेद हैं।" इस जगह हमारे पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि श्रीमन्त महाराणा साहब कितनी दिलचस्पी के साथ श्रवण कर रहे थे।

तदनन्तर मुनि श्री ने कहाः—हे हिन्दू-कुल-सूर्य मेवाड़ाधिपते! ये जो अठारह पाप कहे गये हैं इनसे ही आत्मा मलिन होती है और आत्मा, परमात्मा में भेद होने का यही कारण है। इन्हीं पापों से आत्मा अनेक जन्म-जन्मान्तरों में कष्ट पाती है। इसी प्रकार संसार में इस आत्मा को अनेकों प्रकार के ऐश्वर्य सुख समृद्धि आदि भी प्राप्त होते हैं। वे नव प्रकार के पुण्यों के संचय होने के कारण होते हैं। इस पर श्री महाराणा साहब ने फ़रमाया कि "वी कसा नो पुन्न हैं?" मुनि श्री ने कहा कि

वे नौ पुण्य इस प्रकार हैं:—पहला पुण्य—'प्राण पुण्णे' भूखे को भोजन देना। दूसरा पुण्य 'पाण पुण्णे'—प्यासे को जल पिलाना। तीसरा पुण्य 'लेण पुण्णे'— विश्राम के लिये स्थान देना। चौथा पुण्य 'सेण पुण्णे'—आसन (बिछौना) आदि देना। पांचवां पुण्य 'वत्थ पुण्णे'—वस्त्र देना। छठा पुण्य—'मण पुण्णे'—मन से किसी का भला चाहना। सातवां पुण्य 'वचन पुण्णे'—हितकारी वचन बोलना। आठवां पुण्य 'काय पुण्णे'—काया द्वारा किसी को सहायता पहुँचाना। नवां पुण्य 'नमोकार पुण्णे'—नमस्कार करने से होता है। अतएव मनुष्य मात्र को चाहिए कि पाप कार्यों से पाप संग्रह न करे। क्योंकि ज्यों-ज्यों पाप किया जाता है, त्यों-त्यों आत्मा भवसागर के गहरे गर्त में गोता खाती है। ज्ञाता जी सूत्र में तुम्बिका का न्याय दिया गया है सण मिट्टी के बन्ध ज्यों-ज्यों तुम्बिका पर दिये जायेंगे त्यों-त्यों वह तुम्बिका जल में अधिक डूबती जायगी। और उसी जल में उस तुम्बिका से बन्ध ज्यों-ज्यों टूटते जायेंगे त्यों-त्यों वह तुम्बिका जल के ऊपर आती जायगी। ऐसे ही यह आत्मा भी पापों के बन्धन से भवसागर में चक्कर लगा रही है। यदि वे सब पापों के बन्धन आत्मा से पृथक होजायँ तो वही आत्मा मोक्ष में चली जाय।

अब रही बात यह कि पाप-बन्धनों से मुक्त किस प्रकार होवें?—तो इसका सीधासादा उत्तर यह है कि पहले जो पाप कहे गये हैं उन पापों को ज्ञान, श्रद्धा, त्याग और तप इन चारों

ही से नाश करे, तब वह आत्मा पवित्र हो जाती है—जैसे सुवर्ण (सोना) के मैल को दूर करने में चार वस्तुओं की आवश्यकता होती है।

दोहा

मूसी पावक सोहगी, फूकण तणो उपाय।
रामचरण चारों मिलें, मैल कनक को जाय॥

अर्थात् मुस, अग्नि, सोहागी और फूँकने वाला—इन चारों के मिलने पर सोने का मैल दूर हो जाता है। ऐसे ही आत्मा के पाप रूप मैल को दूर करने में ज्ञान, श्रद्धा, त्याग और तप की आवश्यकता होती है। बस मनुष्य इन चारों ही की सच्चे दिल से आराधना करे तो निसन्देह उस आत्मा से पाप-बन्धन पृथक हो जायेंगे। उसे परमात्मा पद मिलने में कुछ विलम्ब ही नहीं होगा। यदि ऐसे मानव-भव का अपूर्व संयोग मिल गया और फिर भी सत्कर्मों की तरफ़ लक्ष नहीं दिया तो परभव में विना पुण्य के और कौन सहायक होगा? ये हाथी, घोड़े, सेना और परिवार कोई भी परभव में सहायक न होंगे। नीति में कहा है—धनानि भूमौ पश्वश्च गोष्ठे, नारी गृह द्वारि सखा श्मशाने। देहश्चितायां परलोक मार्गे धर्म्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

अर्थात् धन तो भूमि में ही रह जायगा। जितने हाथी घोड़े हैं वे सब अपने-अपने स्थान पर ही रह जायेंगे। सात फेरे की पत्नी हुई स्त्री रोकर घर के द्वार तक ही जाकर घर ही में

रह जायगी। मित्र आदि मरघट तक भले ही चले आवें, पर यह शरीर—जिसको लोग बहुत अच्छे-अच्छे पौष्टिक पदार्थ खिला कर पुष्ट करते हैं, अनेक अलंकार वस्त्र सुगन्धादि से सजाए रखते हैं—यहीं चिता में भस्मीभूत हो जायेगा। साथ में चलने वाला केवल एक धर्म ही होगा। परभव में धर्म जितना सुखदायी होता है, पाप उतना ही दुखदायी होता है। अतएव मनुष्यों को चाहिए कि जिन पापों का पहले वर्णन किया गया है, उनसे सदा दूर रह कर पुण्य-संचय करें, नहीं तो ये पाप ही नरक में ले जाने के द्वार होंगे। श्री कृष्णचन्द्र महाराज ने गीता में कहा है:—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥
—श्री मद्भगवद्गीता, अध्याय १६ श्लोक २१

पुण्य कहो या नेकी कहो, इसका परिणाम परलोक में तो अति आनन्द-दायक होगा ही, पर इस लोक में भी उसकी नेकनामी रह जाती है। जैसे किसी ग्राम में यदि पुण्य संचय करने वाला कोई भला आदमी आयु पर मर जावे तो लोग उसको पीछे से याद करते हैं कि कैसा भला आदमी था, ग्राम का दीपक था आदि। यदि कोई मनुष्य इसके विपरीत कार्य करने में तत्पर रहे तो उसके मरने पर पीछे से लोग यही कहते हैं कि अच्छा हुआ जो मर गया, ग्राम का कंटक दूर हुआ। मतलब यह कि मनुष्य के भले-बुरे कार्यों की भलाई-बुराई इस

लोक में रह जाती है। देखिये, आज तक रावण की बदनामी बनी हुई है और श्री रामचन्द्र जी महाराज की प्रशंसा। ऐसा ही कौरव और पाण्डव, कंस और कृष्ण के सम्बन्ध में भी है। इसी बात को पुष्ट करने के लिये जोधपुर (मारवाड़) के नरेश मानसिंह जी ने कहा है कि:—

दोहा

गढ़पति रहे न गढ़ रहे, रहे न सकल जहान।
कहे मान नृप दो रहे, नेकी बदी निदान॥

अर्थात् न तो गढ़ रहते हैं और न उनके अधिपति, और न सारी दुनिया ही रहती है। केवल दो चीजें ही रहती हैं— नेकी और बदी। हम पहले ही कह चुके हैं कि नेकी (पुण्य) अच्छी है और बदी (पाप) बुरी। अतएव मनुष्य मात्र को चाहिए कि पाप-कर्मों से परहेज़ करें और पुण्य-कार्य करने में दिन प्रति दिन अग्रसर होते जायँ। बस यही मोक्ष का सच्चा मार्ग है। इतने कथनोपकथन के पश्चात् मुनि श्री ने उपदेश स्थगित करके कहा:—

हे हिंदू-कुल-सूर्य महाराणा साहब! आपने बहुत उपकार किया और अगते चलाकर जीवों को अभय-दान दिया। आपने बड़े पुण्य का कार्य किया। यदि इच्छा हो तो भेंट-स्वरूप में चैत्र शुक्ला १३ को, महावीर-जयन्ती के दिन, सदा के लिए शहर में अगता पालने के लिए हुक्म दिया जाय। तब श्रीमन्त महाराणा साहब ने मुनि श्री से फ़रमाया कि "या काँई बात"

फिर उन्होंने श्री० फतहलाल जी को फरमाया कि "जो महाराज फरमायो है सो फेर याद दिलाव जो" । बाद मुनि श्री को फरमाया कि "गरमी में अठे आवा की तकलीफ वीवेगा" । मुनि श्री ने कहा, हमारा तो कर्त्तव्य है कि शीत उष्ण परिषहों को सहन कर परोपकार करें और अन्य से करावें । ऐसा कह कर मुनि श्री अपने निवास - स्थान पर पधार गये । श्रीमन्त महाराणा साहब ने (फोटो देखिये) चैत्र शुक्ल १३ को सदा के लिये अगता पालने का हुक्म फरमा दिया ।

कार्तिक कृष्ण ५ को प्रातःकाल श्री महाराणा साहब की ओर से मुनि श्री को सूचना प्राप्त हुई कि "काले जो अठारह पाप और नौ पुण्य सुनाया था लिखी ने म्हारे पास आणा चाहिजे" । इस प्रकार श्रीमान् कस्तुरचन्द जी वोरदिया द्वारा सूचना मिलने पर मुनि श्री से श्री जीवनसिंह जी नलवाया ने लिखा और श्री महाराणा साहब के पास पहुँचा दिया गया । उन्होंने उन्हें पढ़कर स्वकीय पेशीदान में रक्खा ताकि हर घड़ी उन्हें देख सकें ।

कार्तिक कृष्ण ५ को, मध्यान्ह के समय, श्रीमान् युवराज कुमार साहब की ओर से, श्रीमान् मदनसिंह जी के द्वारा, सन्देश प्राप्त हुआ कि 'मुनि श्री को समोरबाग पधरावें' । इस प्रकार सूचना मिलने पर मुनि श्री अपनी शिष्य-मण्डली सहित समोरबाग में पधारे । युवराज महाराज कुमार साहब ने विनय और भक्ति-भाव पूर्वक मुनि श्री का स्वागत किया ।

फिर मुनि श्री और युवराज महाराजकुमार साहब में कुछ देर वार्त्तालाप होने के पश्चात् मुनि श्री ने उपदेश आरम्भ किया।

उपदेश

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा।
जं सोंच्चा पडिवज्जन्ति, तवं खंतिमहिंसयं॥

—उत्तराध्ययन, अ० ३, श्लोक ८

हे हिन्दूकुल - सूर्य युवराज कुमार साहब ! प्रथम तो इस संसार में उच्चकोटि का मानव - भव प्राप्त होना महा कठिन है, फिर वह पुण्योदय से प्राप्त हो भी गया तो सूत्र (सद्ग्रंथ) श्रवण करना कठिन से भी कठिन है, क्योंकि श्रवण विना आत्मा को अपना स्वरूप मालूम नहीं होता है। हां, इस जगह एक प्रश्न यह उत्पन्न हो जाता है कि सूत्र (सद्ग्रन्थ) किस मत (मजहब) का श्रवण करना चाहिए ? क्योंकि वर्तमान संसार में जैन, वैष्णव, इस्लाम, क्रिश्चियन आदि अनेक मत प्रचलित हैं। इसके उत्तर में यही कहना पर्याप्त होगा कि सूत्र वही हैं जिनके श्रवण करने से तीन बातों की अभिरुचि उत्पन्न हो। वही सूत्र और सद्ग्रन्थ है जिसके श्रवण करने से प्रथम 'तवं' तप करने की इच्छा प्राप्त हो, क्योंकि तप से राज्य-प्राप्त होता है। किसी ने कहा है:—तप बिन मिले न राज। इससे भी विशेष, तपस्या करने से मोक्ष प्राप्त होता है और यही मोक्ष पाने का प्रथम कारण है। दूसरे जिसके श्रवण करने से 'खंति'

क्षमा की अभिरुचि हो। क्षमा करना बड़ों का लक्षण है। किसी ने कहा है:—

क्षमा बड़न को होत है, ओछन को उत्पात।
कहा विष्णु को घटि गयो, जों भृगु मारी लात॥

अर्थात् क्षमा बड़ों को ही होती है। छोटे आदमी क्षमा नहीं कर सकते। इसीलिए तो यह क्षमा मोक्ष पाने का दूसरा कारण है। तीसरे जिसके श्रवण करने से 'अहिंसया' जीवों पर दयादृष्टि करने का भाव उत्पन्न होता है। जीव-दया बिना भी आत्मा मोक्ष में नहीं जाता, इसलिए यह भी मोक्ष पाने का तीसरा कारण है।

जीवों पर दया दृष्टि करना मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है। भगवान् महावीर ने कहा है:—

सव्वे जीवावि इच्छन्ति जीविउ न मरीजीउ।
तम्हा पाणावहं घोरं, निगन्था वज्जयन्ति णं॥

—दशवैकालिक, अध्याय ६ श्लोक ११

अर्थात् इस सृष्टि में जितने चराचर प्राणी मात्र हैं वे सब जीवितव्यता की इच्छा करते हैं। कोई भी मरने से प्रसन्न नहीं होते। सभी मृत्यु से भयभीत हो अपने प्राण बचाने की चेष्टा करते हैं। चाहे कितना ही दुखी एवम् पीड़ित जीव क्यों न हो, उसके शरीर को किसी दूसरे के प्रयोग से कष्ट पहुंचता है तो वह शरीर को अति शीघ्र संकुचित कर ही लेता है। आप जब चाहे देख लें, हाथ लगाने से चींटी भी अपने प्राण बचाने

आदर्श-उपकार

श्रीमान् तुकोजीराव बापू साहिब महाराज पँवार
के० सी० एस० आई०
देवास (मालवा सेण्ट्रल इण्डिया)

के लिये दूर भाग जायगी। इन बातों से सिद्ध होता है कि प्राणी मात्र को अपना जीव प्यारा है। अतएव प्राणियों के प्राण लूटना महापाप है। मनुष्य मात्र को चाहिए कि प्राणियों के प्राण न लूटे। उन्हें बचाने की इच्छा करे। किसी भी समय, किसी भी स्थान पर, किसी भी प्राणी को, किसी भी प्रकार का भय हो गया हो, तो उस भय को मिटाना प्रत्येक मनुष्य का परम धर्म है। संसार के प्रचलित दानों में भी भय-मुक्त करने को अर्थात् अभय दान देने को ही शास्त्रकारों ने सबसे श्रेष्ठ दान बतलाया है।

दाणाण सेठं अभय पहाणं, सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति।
तवेसु वा उत्तम वंभचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते॥

अर्थात् प्राणियों को अभय-दान देना ही दानों में सर्व श्रेष्ठ दान माना गया है। जिससे किसी को भी कष्ट न पहुँचे। ऐसी अनवद्य भाषा सब भाषाओं में श्रेष्ठ गिनी गई है। तपस्या में सबसे बढ़ कर ब्रह्मचर्य की तपस्या मानी गई है। इसी तरह संसार में सबसे श्रेष्ठ धर्मोपदेशक भगवान् महावीर स्वामी थे। मेरे कथन का तात्पर्य यही है कि अभय दान सबसे श्रेष्ठ है। देखिये एक राजा ने किसी अपराधी को प्राण-दण्ड देने का हुक्म दिया। सेवक लोग उस अपराधी को, सजा भुगताने के लिये, राजमहलों के गवाक्षों (गोखड़ों) के नीचे होकर ले जा रहे थे। उस समय अनायास ही राजा की रानी ने गवाक्ष में से उस अपराधी को देखा। पूछने पर दासियों द्वारा उसे मालूम

हुआ कि वह प्राण-दण्ड का अपराधी है। रानी ने उन सेवकों को हुक्म दिया कि दूसरे हुक्म के मिलने तक अपराधी को दण्ड न दिया जाय। उधर रानी ने अपने स्वामी से कहलाया कि मैं भी महाराज से एक वर मांग रही हूँ, उसे आप प्रदान कीजिये। वह वर यही है कि इस प्राण-दण्ड के अपराधी को आज के लिए छोड़ दिया जाय। अपराधी को उस दिन के लिए छोड़ दिया गया। रानी ने उस अपराधी को उस दिन अच्छा भोजन कराया और पांच सहस्र रुपये दिये। इसी प्रकार उस राजा की दूसरी रानी ने भी दूसरे दिन उस अपराधी का सत्कार किया और दस सहस्र रुपये दिये। तीसरी रानी ने भी उसे तीसरे दिन स्वादिष्ट भोजन से सन्तुष्ट कर पन्द्रह सहस्र रुपये दिये और उस दिन उसके प्राण बचाये। इतना आदर-सत्कार होने और इतना द्रव्य मिलने पर भी मृत्यु-दण्ड के कारण उस अपराधी को सुख प्राप्त न हुआ वह मन में सोचता था कि यह द्रव्य मरने के बाद किस काम में आयेगा ? वह तो केवल मृत्यु-भय से भयभीत हो रहा था। अन्त में चौथी रानी ने उस अपराधी को द्रव्य आदि तो कुछ भी नहीं दिया, पर उसने अपने स्वामी से वर मांग कर उस अपराधी को प्राण-दण्ड से मुक्त करा दिया। बस फिर क्या था, उस अपराधी का भय दूर हुआ; चित्त आनन्द से हर्षित हो उठा। परन्तु रानियों में परस्पर इस प्रकार का विवाद उठ खड़ा हुआ कि हम तीनों ने इतना-इतना द्रव्य उस अपराधी को दिया; पर चौथी रानी ने कुछ भी नहीं दिया। इस लिए उसको

कृपण की पदवी दे दी गई। तब चौथी रानी ने उन सबको उत्तर दिया कि अपराधी को मैंने जो कुछ दिया है, उसकी बराबरी तुम सब मिल कर भी नहीं कर सकतीं। अब विश्वास न हो, तो पतिदेव से पूछो। ऐसा अभिमान भरा वचन सुन कर उन तीनों ने राजा से पूछा। राजा जरा पशोपेश में पड़ गये कि मैं किसे भली बतलाऊँ और किसे बुरी ? उस अपराधी से ही उत्तर दिला देना यथेष्ट होगा, वैसा ही किया गया। अपराधी ने कहा, "जैसा उपकार मेरे साथ चौथी रानी ने किया है, वैसा किसी ने भी नहीं किया। जब तक जीवित रहूँगा तब तक इस चौथी माता का ऋणी रहूँगा। मेरा भय भोजन और रुपये से दूर न होता।"

देखिये उस अपराधी का भय दूर होने पर उसे कैसा आनन्द प्राप्त हुआ। यद्यपि वह अपराधी था, तथापि उसको बचा लेने पर उसकी आत्मा को कितना सन्तोष हुआ, इसी को अभय दान कहते हैं। यह अभय दान सबसे श्रेष्ठ और उत्तमोत्तम है।

तार्किक यह तर्क कर सकते हैं कि आत्मा तो अमर है, किसी की मारी मरती ही नहीं। देखिये श्रीकृष्णचन्द्र महाराज ने कहा है—

नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएवच ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

—भगवद्गीता अ० २ श्लोक २३-२४

अर्थात् आत्मा शस्त्रों से छेदी नहीं जाती, अग्नि से जल नहीं सकती, न जल में डूब सकती है और न वायु ही उड़ा सकती है—तो फिर अभय दान किसको दिया जाया ?

हाँ, यह बात सही है कि आत्मा मारी नहीं मरती। वह तो अजर-अमर है। परन्तु चाकू, छुरी, बन्दूक़, तलवार या और किसी शस्त्र द्वारा शरीर (स्थान) से आत्मा को पृथक कर देना ही पाप है। इसी को हिंसा कहते हैं। यदि हिंसा ही न होती, तो श्रीकृष्णचन्द्र महाराज यों कदापि न कहते—

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्व लोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीर चापलम् ॥
—भगवद्गीता अ० १६ श्लोक २

अर्थात् अपने द्वारा किसी को कष्ट पहुँचे तो वह पाप है। यही हिंसा कहलाती है। इसी से बचने के लिये श्री कृष्णचन्द्र महाराज ने जनता को अहिंसा का उपदेश किया। साथ में और भी उपदेश उन्होंने किया। अतएव यह निर्विवाद सिद्ध है कि किसी को कष्ट पहुँचाना ही हिंसा है। जैसे—गाँव में यों तो कई जन्मते हैं, मरते हैं, पर किसी को कोई विष या शस्त्र-द्वारा मार दे तो नियमानुसार उसे राज्य की ओर से पकड़ कर दण्ड दिया जाता है। यदि आयु पूर्ण होकर मरे तो किसी को न तो सरकार पकड़े और न सजा दे। इसी प्रकार पाँच सहस्र की कण्ठी किसी को इनाम के तौर पर दे दी जाय तो, न तो सरकार लेने वाले को पकड़ती है और न देने वाले को ही

कष्ट होता है। वही कण्ठी यदि उससे छीन कर या चुरा कर कोई ले लेवे तो अवश्य ही उसे सरकार पकड़ेगी, और जिसकी कण्ठी थी उसको भी चोरी जाने से कष्ट होगा।

इसी तरह प्राणी अपनी आयु पूर्ण कर मर जाय तो हिंसा का भार किसी के सिर नहीं होता। यदि प्राणियों के प्राणों को जबरन् चाकू, छुरी, तलवार, बन्दूक़, तोप या जहर-द्वारा लूट लें यानी जीवात्मा को शरीर से पृथक करदें तो उसी को हिंसा और महापाप कहते हैं। इसी प्रकार जो हिंसा और महा पाप करेगा उसी के सिर दुःख का बोझा पड़ेगा।

अहिंसा सर्व शास्त्र और धर्म-ग्रंथों का मसाला है। वेद व्यास जी ने भी कहा है:—

> अष्टादश पुराणेषु, व्यासस्य वचनं द्वयम्।
> परोपकारः पुण्याय, पापाय पर-पीड़नम्॥

अर्थात् अठारहों ही पुराणों में व्यास जी के दो ही सार वचन हैं। एक तो परोपकार के समान कोई पुण्य नहीं और दूसरे किसी को कष्ट पहुँचाने के समान कोई पाप नहीं।

इसी प्रकार मुसलमानों के धर्म-ग्रंथों में भी अहिंसा का उल्लेख है.—

> दिल बदस्त आवर कि हज्जे अकबरस्त।
> अज हजारां कावा यक दिल बेहतरस्त॥

अर्थात् दिल बीच हाथ के लावे तू तो हजारों अकबरी हज से भी बेहतर है। इसी तरह से और भी कंजुल अखलाक़ः—

*"अल मुसलिमो मनसले मलमुसलमूना मिन लिसानही वयदेही वलमोमनो मिन अमनेहः अन्नासो अलादेमाल हीम व अमवलिहिम।"

अर्थात् मुसलमान वह है जिसकी जबान और हाथ से दूसरों को रंज न पहुँचे। और मोमिन यानी ईमान का लानेवाला वही है जिससे सब की जानोमाल का अमन हो।

इसी प्रकार ईसामसीह ने भी इञ्जील में लिखा है—

Thou Shall Not Kill.

अर्थात् तू किसी को मत मार। कहिये, अब कौन सा धर्म-ग्रन्थ बाक़ी रहा? जिसमें जीव-दया का प्रमाण न हो। सभी ग्रन्थ पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि अभयदान जैसा परोपकार और कोई नहीं है। यही परोपकार परलोक में सहायक होगा और सब कुछ यहीं रह जायगा, साथ में सिवाय परोपकार के और कोई जानेवाला नहीं। लाल फ़क़ीर ने कहा है:—

धन छोड़े नंगे गए, अकबर शाह जलाल।
कहे लाल इक पलक में, भया बिराना माल॥

एक बार की बात है। अकबर बादशाह को किसी ने बढ़िया दुशाला भेंट किया था। जब बादशाह का अन्त समय आया तो उसने परिवार आदि के लोगों से कहा कि "इस दुशाले को मेरे मरने के पीछे जनाजे पर ओढ़ा देना। यदि तुम्हें लालच

---

*हिन्दी में उल्लेख करने पर किसी जगह अशुद्धि हो गई हो तो पाठक महोदय शुद्ध कर पढ़ें।

आ जाय तो मेरा जनाजा नंगा निकालना, पर दूसरा और कोई वस्त्र न ओढ़ाना।" बादशाह की ऐसी बात सुन कर स्नेही लोगों ने कहा—हुजूर, यह क्या बात कही! दुशाला क्या चीज है? यह सारी बादशाहत आप की ही है। आप जैसा कहेंगे वैसा ही किया जायगा।

बादशाह का अन्त समय आ गया। परिवार आदि के लोगों ने विचार किया कि यह दुशाला तो बहुत बढ़िया है, इस लिए इसे जनाजे पर न उढ़ा कर जनाजा नंगा ही निकाला जाय। आखिरकार ऐसा ही किया गया। उस समय बाजार में एक लाल नामक फ़क़ीर खड़ा था, उसने बादशाह जैसे बड़े आदमी के जनाजे को देख कर उपर्युक्त दोहा कहा कि अकबर बादशाह जैसा नंगा जा रहा है—यह कैसे आश्चर्य की बात है? देखो, पल भर में क्या था और क्या हो गया।

हे युवराज महाराजकुमार साहब! मनुष्य जो सत्कर्म करेगा वही साथ रहेगा और परलोक में आनन्ददायक होगा। यह धन-दौलत और पृथ्वी किसी एक के अधिकार में न सदा रही, न रहेगी।

किसी कवि ने ठीक कहा है—

हसन्ति पृथ्वी नृपतिर्नराणाम्, हसन्ति कालो यदि वैद्यराजः।
हसन्ति नारी पतिरक्षितानि, हसन्ति लक्ष्मी रति सञ्चितानि॥

अर्थात् जिस समय राजा मूछों पर ताव दे कर मुँह में दबाते हुए, हाथ में खड्ग ले कर खड़ा होता और कहता

है कि इस पृथ्वी पर मेरा शासन है। उस समय यह पृथ्वी हँसती है कि तेरे जैसे हज़ारों हो गये हैं, ज़रा देख तो सही, भरत राजा कहाँ है? जयचन्द और पृथ्वीराज राजा कहाँ हैं? बाहु-बली कौरव और पांडव कहां हैं? दूसरे और-और बलशाली कहाँ हैं, जिनके कारण क्षण भर में प्रलय मच जाता था। मैंने सबको अपने उदर में बसा लिया है। तुम नहीं जानते, मैं किसीके भी अधिकार में कभी रही हूं? किसी कवि ने कहा है:—

तर्ज़ क़व्वाली

क्यों ग़फ़लत की नींद में सोता पड़ा,
तेरा जावेगा हंस निकल एक पल में।
यह दुनिया है देख मिसाले रण्डी,
कभी इसकी बग़ल, कभी उसकी बग़ल में॥

और भी ज़रा ध्यान दीजिये:—

तर्ज़ भरतरी

बड़ा तो बड़ाने धरणी गल गई जी,
गल गया हिन्दू मूसलमान।
अमर कोई नेछै जी, अमर कोई नेछै जी,
ओ काची काया का सरदार अमर कोई नेछै जी॥

और रोग पीड़ित अवस्था में शय्या पर पड़ा हुआ कोई अन्तिम घड़ी गिन रहा है, उस समय भी जीवन की आशा से रोगों को दूर करने वाले वैद्य-डाक्टर बुलाये जाते हैं। उस

श्रीमान् राजा साहब अमरसिंह जी
बनेड़ा (मेवाड़)

समय मृत्यु हँसती है कि मैं तो आ पहुँची हूँ। अब ये बेचारे वैद्य क्या करेंगे ? कहीं मेरी धमक के सामने डाक्टर साहब ही चीं न बोल दें। महाराणी विक्टोरिया ने अपने जीवन को दीर्घ करने के लिए दूसरे प्राणी का रक्त तक अपने शरीर में प्रविष्ट कराया था, पर मेरे आगे रक्त ने भी कोई बल नहीं दिखाया।

पति जब स्त्री की रक्षा करता है, तब कहता है कि अमुक घर मत जाना, अमुक से बोलना मत। तब स्त्री हँसती है कि यों कहने और निगाह रखने से क्या कोई अपने शील-धर्म पर रह सकती है ? कदापि नहीं। यदि धर्म पर रहेगी तो अपनी कुल-मर्यादा से ही रहेगी। पति कहां तक निगाह रख सकता है ?

इसी तरह लक्ष्मी को अति संग्रह करने पर वह भी हँसती है कि मैं किसके अधिकार में रही और रहने की हूँ ? मुझको बहुतों ने अनेक प्रकार से अपने अधिकार में रक्खा, पर मैं चंचल एक स्थान पर कहीं भी न ठहर सकी। मुझको पा कर जिसने अच्छी तरह परोपकार कर लिया, वही परलोक में सुखी बनेगा। यदि मुझको पा कर किसी ने कुछ नहीं किया, तो मैं किस काम आऊँगी ? इस लिए मनुष्य को चाहिए कि जितना हो सके मेरे द्वारा परोपकार करे।

इस तरह लगभग एक घण्टे तक मुनि श्री ने उपदेश फ़रमाया। श्रवण-समय में युवराज महाराज कुमार साहब और उमराव महोदय हर्षोल्लास से मग्न हो गये थे। उपदेश श्रवण कर उन महानुभावों का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। श्रीमान् युवराज

ने फिर कभी एक बार और उपदेश श्रवण करने की इच्छा प्रकट की।

मुनि श्री ने कहा कि "कल श्री महारानी साहबा ने भी उपदेश श्रवण किया था। उन्होंने सदा के लिए चैत्र शुक्ला १३ को महावीर-जयन्ती के दिन अगता पलाने की स्वीकृति दी है। आज आर्यावर्त में महाराणा साहब बड़े दयालु और धर्म-रक्षक हैं एवं वंश-परम्परा के गुण धारण करने वाले हैं। हम कहाँ तक उनकी प्रशंसा करें? वैसे ही आप उनके परम दयालु पुत्ररत्न हैं। इस आर्यभूमि में आप दोनों ही नररत्न हैं। आपने भी जन-समूह का बहुत उपकार किया है। यदि और आपकी इच्छा हो तो पौष कृष्ण १० को पार्श्वनाथ-जयन्ती के दिन सदा के लिए शहर में अगता रखाया जाय। आपको परम लाभ होगा।" मुनि श्री के इस कथन को श्रवण कर दयालु बापजीराव (फोटो देखिये) ने स्वीकृति दी। मुनि श्री उपदेश स्थगित कर अपने निवास स्थान पर चले आये।

कार्तिक कृष्णा ५ के सायंकाल को मगरा हाकिम साहब के यहाँ मुनि श्री दर्शन देने पधारे। वहाँ एक बकरे को अभयदान दिया गया। कार्तिक कृष्ण ६ को महाराणा साहब के विश्वास-पात्र जागीरदार श्री जगन्नाथ सिंह जी साहब ने उपदेश का लाभ लिया। मण्डी की जनता का विशेष आग्रह होने से कार्तिक कृष्णा ९ को मुनि श्री धान-मण्डी में पधारे और लाघुवास की हवेली में निवास किया। व्याख्यान वहीं आम सड़क पर होते

थे। मेजा रावत जी साहब, भदेसर रावत जी साहब और वाठरडा रावत जी साहब महाराणा साहब के सोलह और बत्तीस उमरावों में से हैं। इन सब महानुभावों ने भी वहाँ के व्याख्यानों को श्रवण कर लाभ लिया। इस जगह यह कह देना उपयुक्त होगा कि महाराणा साहब के सोलह और बत्तीस उमरावों के कई उमरावों और अन्य सरदारों ने एक ही समय नहीं, बल्कि अनेक वार व्याख्यान श्रवण का लाभ लिया और चातुर्मास उठने के पश्चात् अपने-अपने राज के गाँवों में पधारने के लिये मुनि श्री से अत्याग्रह किया था।

कार्तिक कृष्ण १४ को सायंकाल के समय जब मुनि श्री शौच-क्रिया से निवृत्त होकर शहर की ओर पधार रहे थे उस समय बोहड़ा रावत जी साहब श्री नाहरसिंह जी मोटर द्वारा वायु-सेवन को जा रहे थे। रावत जी साहब महाराणा साहब के बत्तीस उमरावों में से हैं। उन्होंने मुनि श्री को देख कर मोटर ठहरा दी और मुनि श्री को भक्ति-भाव पूर्वक नमस्कार कर कुछ देर तक वार्त्तालाप किया।

कार्तिक शुक्ला २ को प्रातः काल के व्याख्यान में गोरक्षा की आवश्यकता बतलाई गई। श्री जैन महावीर मण्डल के सभासदों ने सायंकाल को सभा करने की योजना की। उन्होंने मुनि श्री से प्रार्थना की कि उस सभा में पहले आप उपदेश करें जिससे हमें शीघ्र सफलता मिले। नियत समय पर जनता लगभग ५००० की संख्या में उपस्थित हुई थी। शाहपुरा के

राजा साहब श्रीमान् नाहरसिंह जी साहब, मेजा रावत जी साहब पारसोली रावत जी साहब और शाहपुरा के बड़े राजकुँवर श्री उम्मेदसिंह जी साहब भी सभास्थल पर पधारे थे। मुनि श्री ने अपने प्रभावशाली और गम्भीर भाषण में उदयपुर में गोरक्षा की परम आवश्यकता बतलाई। राजाधिराज के बड़े राजकुमार साहब ने बड़ी योग्यता से इसका समर्थन किया। इससे जनता इस महत्वपूर्ण कार्य को करने के लिए उत्साहित हुई।

सभा-विसर्जन के बाद राजासाहब ने मुनि श्री से भक्तिभाव से कहा कि—"आपका उपदेश श्रवण कर मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। मेरा इरादा व्याख्यान श्रवण करने का कभी से हो रहा था, पर जुकाम होने की वजह से न आ सका।"

कार्तिक शुक्ला १५ को महाराणा साहब ने श्री पन्नालाल जी मेहता को आदेश दिया कि मुनि श्री को यहाँ पधरावें। सूचना मिलने पर मुनि श्री अपनी शिष्यमण्डली सहित "शिव-निवास" में पधारे। वहां महाराणा साहब ने विनम्र भक्ति-भाव से मुनि श्री का स्वागत किया। अनन्तर मुनि श्री ने उपदेश आरम्भ किया।

उपदेश

हे हिन्दू-कुल-सूर्य श्रीमन्त महाराणा साहब! यहां की प्रजा ने लगातार अनेक व्याख्यान श्रवण कर कई एक दूषणों का परित्याग किया है। मैंने यहाँ व्याख्यान के आरम्भ में लोगों को

सदा "भगवती जी सूत्र सुनाया है जिसे मैंने नये शहर से आरम्भ किया था।" श्री महाराणा साहब ने फ़रमाया—"अभी तक पूरो नी व्यो ?" उत्तर में मुनि श्री ने कहा—"हां अभी तक पूरा नहीं हुआ, क्योंकि उसमें गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से ३६००० प्रश्न पूछे हैं—वह भी हस्तलिखित हैं। हमारे पास सूत्र प्रायः हस्तलिखित ही हैं। मुद्रित सूत्रों में भार विशेष होता है। हम किसी दूसरे से बोझा उठवा भी नहीं सकते। हमारे पास जितने भी प्रामाणिक वस्त्र पात्र आदि हैं, उन्हें हम स्वयं उठाते हैं। श्री महाराणा साहब बोले—"ऊ भगवती जी सूत्र कशो है ?" मुनि श्री ने पुठ्ठे में से निकाल कर भगवती जी सूत्र दिखाया। श्री महाराणा साहब ने उसे स्वयं अपने हाथों में ले कर उसका दिग्दर्शन किया और मुनि श्री से कहा कि "आपको तकलीफ़ नी व्हे तो अणी में से दो-चार बातां फ़रमाओ।" तब मुनि श्री ने भगवती जी सूत्र का उच्चारण किया:—

"तेणं कालेणं तेणं समयेणं जाव एवं वयासि के महा वएणं भंते ? गोयम एमहत्ति महालये लोये पणंत्तं पुरत्थिमेणं असंखे आ जोयण कोडा कोडिउ, दाहिणेणं असंखे आउ एवं च्चेव पच्चत्थिमेणंवि एवं उत्तेरणवि एवं उड्ढं पि अहे असंखे आउ जोयण कोडा कोडिउ आयाम विखंभेणं एयंसिणं भंते महालये लोगंसि अत्थि केइ परमाणु पोग्गल मेत्तेवि पयेसं जहाणं अयं ज़ीवेन ज़ायेवा न मरेवा ? णो इणट्ठे समट्ठे।"

गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से प्रश्न किया

कि—"हे भगवान्! संसार कितना बड़ा है?" उत्तर मिला—"यह लोक बहुत विस्तार वाला है। असंख्य कोटानुकोटि योजन पूर्व में विस्तृत है। इसी प्रकार दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशाओं में है।" गौतम ने फिर पूछा—"हे भगवन्! ऐसे विस्तृत संसार में क्या कोई भी सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु का ऐसा स्थान है जहां जीवन जन्म या मृत्यु के रूप में प्रस्फुटित न हुआ हो?" भगवान् ने उत्तर दिया—"हे गौतम! ऐसा कोई भी स्थान शेष नहीं रहा जहां इस जीव का जन्म-मरण न हुआ हो।"

मुनि श्री ने कहाः—महाराणा साहब! यह सब कुछ ज्ञान श्रवण करने से होता है। भगवान् महावीर ने कहा है—

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयंपि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे॥

—दशवैकालिक,अध्याय ४, श्लोक ११

अर्थात् श्रवण करने से सन्मार्ग का बोध होता है और सुनने से ही पाप-मार्ग का ज्ञान होता है। फिर दोनों को जान लेने पर परलोक में जैसा श्रेयस्कर हो, आत्मा को जैसा हितकर हो, वैसे ग्रहण करना मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है। पर ऐसा ज्ञान और श्रवण तभी संभव होगा जब कि ऋषि-मुनियों का सत्सङ्ग प्राप्त हो। संसार में सत्सङ्ग सबसे श्रेष्ठ है, इसकी महिमा अपार है। आत्मा चाहे जैसी भी हो, सत्सङ्ग होते ही उसका उद्धार हो जाता है। ग्रन्थों के अनेक पृष्ठ सत्सङ्ग की महिमा से भरे पड़े हैं। सुनते हैं, पुराणों में एक कथा है कि साठ हजार वर्षों

तक तप करने वाले ऋषि और एक लव मात्र समय सत्सङ्ग करने वाले ऋषि दोनों में परस्पर इस बात का विवाद उठ खड़ा हुआ कि "तपस्या बड़ी या सत्सङ्ग ?" दोनों ऋषि इस बात का निर्णय कराने के लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवताओं के पास जा पहुँचे। इस अद्भुत झगड़े को सुन कर तीनों देवता विचार करने लगे कि हमारा निर्णय किस ओर होना चाहिए ? बहुत कुछ सोच-विचार के पश्चात् उन्होंने यह उपाय ढूँढ निकाला कि इन दोनों ऋषियों को शेषनाग के पास भेज दिया जाय। वैसा ही किया गया। इन ऋषियों की बात सुन कर शेषनाग भी असमंजस में पड़ गये। वे विचारने लगे कि इसका निर्णय अब कैसे हो। अन्त में शेषनाग को एक सामयिक युक्ति सूझी। उन्होंने ऋषियों से कहा:—"देखिये, आप लोगों का प्रश्न सोच-विचार का है। अतएव पृथ्वी के भार को थोड़ी देर अलग रखना पड़ेगा। आप लोग इस भार को सँभालें।" तब उन्होंने तपस्या वाले ऋषि से कहा—"आप कहिये कि हे पृथ्वी मेरी तपस्या बड़ी हो, तो बिना आधार के ठहर जा।" तप वाले ऋषि ने ऐसा ही कहा, पर पृथ्वी न ठहर सकी। इसी प्रकार सत्सङ्गी ऋषि से कहा गया। उन्होंने भी ऐसा ही कहा कि—"हे पृथ्वी मेरा किया सत्सङ्ग बड़ा हो, तो बिना आधार के ठहर जाना।" इतना कहने के साथ ही पृथ्वी ठहर गई। शेषनाग दोनों ऋषियों को सम्बोधित करते हुए बोले—"आपके झगड़े का निर्णय पृथ्वी द्वारा हो गया। जिसकी चीज़ बड़ी है उसी के

कहने से पृथ्वी ठहरी है।' इस कथा से प्रकट होता है कि सत्सङ्ग सब से महान् है। इसी के द्वारा अनेकों का उद्धार हुआ है। उनमें से एक का विवरण सुनाता हूँ:—

चौबीस सौ वर्ष पहले की बात है। सितम्ब का (श्वेताम्बिका) नामक शहर था जिसे आजकल पेशावर कहते हैं। इन दिनों यह हमारे सीमान्त प्रदेश (एन० डब्ल्यू० एफ० पी०) की राजधानी है। वहाँ पहले प्रदेशी नाम का एक राजा राज्य करता था। उसके आधीन में सात हजार गांव थे। उसकी रानी का नाम सुरीकंथा (सूर्यकान्ता) था, पुत्र का नाम सुरीकान्त (सूर्यकान्त) कुमार था। चित्त जी प्रधान थे जो राज्य का कार्य चलाते थे। राजा कुछ ऐसे विचारों का था कि वह ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, नरक आदि कुछ भी नहीं मानता था। इसी कारण से उसका हृदय भी पाषाण सदृश कठोर हो गया था। किसी का प्राण हरण करना उसके लिए एक मामूली बात थी। हिंसा करने में उसे तनिक भी ग्लानि नहीं होती थी। वह आत्मा-परमात्मा, मानता ही नहीं था। उसकी करतूतें उसे नास्तिक कहने के लिए कजबूर करती थीं।

एक दिन की बात है, उस राजा ने प्रधान को डाली दे कर श्रावती नगरी (जिसे आज-कल स्यालकोट कहते हैं, यह स्थान पंजाब प्रान्त के अन्तर्गत है) को भेजा। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करता था प्रदेशी और जितशत्रु में घनिष्ठ मित्रता थी। राजा प्रदेशी ने अपने प्रधान को यह आज्ञा दे रक्खी थी कि राजा

आदर्श-उपकार

स्वर्गीय श्रीमान् राजराणा श्री दुलेसिंह जी साहब
बड़ी सादड़ी (मेवाड़)

जितशत्रु तुम्हें यहाँ लौट आने की आज्ञा दें, तब आना। प्रधान वहां से चल कर श्रावस्ती आया। राजा जितशत्रु का कुशल-मंगल पूछ कर उसने अपने राजा की भेजी हुई डाली भेंट की। राजा ने प्रधान का यथायोग्य आदर-सत्कार कर उसे अपने यहां ठहराया।

उन दिनों वहाँ मुनि महाराज केशी श्रमण अपनी शिष्य-मण्डली सहित विराजमान थे। वे प्रत्येक दिन प्रातःकाल उपदेश किया करते थे। राजा भी उपदेश श्रवण करने के लिए जाया करता था। राजा प्रदेशी के प्रधान को भी किसी के जरिये मुनि श्री की खबर मिली। उसने सोचा कि चल के मुनि महाराज का परिचय लूँ, देखूँ वे कैसे हैं, उनका उपदेश कैसा होता है। वह भी उपदेश-स्थल पर पहुँचा। राजा जितशत्रु मुनि के समक्ष गया और उन्हें नमस्कार कर बैठ गया। प्रधान ने भी ऐसा ही किया। अनन्तर मुनि श्री केशी श्रमण का व्याख्यान शुरू हुआ। उनकी भाषा बड़ी ओजस्विनी थी, भाव गम्भीर थे। शब्दों की लड़ी सारगर्भित थी। उन्होंने अपने व्याख्यान में ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग और नरक का अस्तित्व प्रदर्शित किया। मुनि श्री के भाषण का प्रधान के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मुनि की भावमयी शब्दावली ज्ञान के मधुर रस से भीगी हुई थी। ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग और नरक का अस्तित्व प्रधान की आंखों के सामने आ गया। उपदेश समाप्त हुआ। उपदेश श्रवण कर प्रधान ने अपने को सौभाग्यशाली समझा। उसने मुनि से विनय की—"भगवन्

पहले मैं नास्तिक था। आज मैंने आपकी गम्भीर वाणी सुनी, मधुर ज्ञानामृत का पान किया। आज मैं नास्तिक नहीं रहा। अब मैं आस्तिक हूँ और अस्तित्व-धर्म को स्वीकार करता हूँ। स्वामिन्! जैसा मैं नास्तिक रहा हूँ, सितम्बका का राजा प्रदेशी भी वैसा ही नास्तिक है। यदि आप कृपा कर वहां पधारें और उन्हें उपदेश करें तो बहुत बड़ा उपकार होगा। आप कृपया मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे।" मुनि श्री केशी श्रमण ने उत्तर दिया कि "देखा जायगा।" प्रधान को लक्षणों से कुछ विश्वास हुआ कि मेरी प्रार्थना स्वीकृत हुई।

कुछ दिनों के पश्चात् राजा जितशत्रु ने प्रधान को डाली ले कर लौटने की आज्ञा दी। वह प्रधान अपने नगर में आया। उसने राजा प्रदेशी का कुशल-मंगल पूछा और राजा जितशत्रु की भेजी हुई डाली भेंट की। फिर उस प्रधान ने बागवान को बुला भेजा और उसे आज्ञा दी कि मुँह पर मुँहपट्टी बाँधे कोई साधु इधर आ निकले तो उन्हें विश्राम करने के लिए स्थान दे कर हमें उनके आने की सूचना देना।

कुछ काल व्यतीत हो जाने पर अनेक मनुष्यों को धर्मोपदेश देते हुए, वही मुनि केशी श्रमण सितम्बका आये। बात की बात में शहर में खबर फैल गई। मुनि के उपदेश श्रवण करने के लिए नगर के नर-नारी एकत्र होने लगे। प्रधान को खबर मिली, वह भी उपस्थित हुआ। उपदेश के पूर्ण होने पर प्रधान ने मुनि से प्रार्थना की—"स्वामिन्! ऐसा उपदेश राजा को दें तो अत्युत्तम

हो।" मुनि बोले "प्रधान जी! चार कारणों से मनुष्य को ज्ञान-श्रवण का लाभ होता है। प्रथम मुनियों के सम्मुख नम्र हो कर जाने से। द्वितीय मुनियों के निवासस्थान पर जाने से। तृतीय मुनियों को अपने हाथों से भोजन देने से और चतुर्थ किसी स्थान पर मुनि से भेंट होने पर नम्र भाव का बर्ताव करने से। तुम्हारे राजा में इन चारों में से एक भी नहीं, तब उसे ज्ञान प्राप्त कैसे हो?" प्रधान बोला—भगवन्! मैं राजा को एक बार तो अवश्य लाऊँगा।

समय पा कर प्रधान ने राजा से विनय की कि अमुक देश के घोड़े, गति-निपुणता के लिए, चाबुक सवार को दिये गये थे, वे अब निपुण हो गये हैं। रथ में बैठ कर उन्हें देखिये। राजा ने स्वीकार किया। प्रधान ने चाबुक सवार से रथ जुतवा कर मँगाया, राजा और प्रधान दोनों उस रथ में बैठ कर नगर के बाहर घूमने के लिए चल दिये। लौटती बार जिस बाग़ में मुनि विश्राम कर रहे थे उसी बाग़ में विश्राम करने के लिए ठहर गये। राजा की दृष्टि उन मुनि पर पड़ी। वह चौंक कर बोला—

"प्रधान, ये मूर्ख कौन हैं?"

प्रधान—प्रभो, ये मूर्ख नहीं हैं। ये बड़े विद्वान् हैं, शरीर और आत्मा को पृथक मानते हैं। ईश्वर, स्वर्ग और नरक को भी मानते हैं।

राजा—नहीं-नहीं प्रधान! इनको कोई तार्किक नहीं मिला,

इसलिए ये ऐसा मानते हैं। शरीर और आत्मा तो एक ही है, न नरक है न स्वर्ग !

प्रधान—नरनाथ, आप भले ही अपने काल्पनिक विचारों के अनुसार ऐसा मानें, परन्तु ये तो प्रमाण दे कर अस्तित्व धर्म बतलाते हैं।

राजा—हम इनसे प्रश्न करें तो क्या ये उत्तर देंगे ?

प्रधान—अवश्य देंगे।

राजा—तब ठीक है, चलो हम भी चलें।

राजा और प्रधान दोनों जाकर मुनि के सम्मुख खड़े हो गये। राजा को अभिमान था कि पहले ये मुनि हमारा स्वागत करें और हम से नम्र होकर बोलें। बहुत समय बीत गया। मुनि शान्त स्वभाव से बैठे रहे। उन्होंने राजा का कुछ भी स्वागत नहीं किया। तब राजा को कुछ समझ आई और वह मुनि से पूछने लगा।

राजा—स्वामिन्, क्या आप शरीर और आत्मा को पृथक मानते हैं ? यदि मानते हैं तो किस प्रमाण से ? क्या आपको ज्ञान की ऐसी भी शक्ति प्राप्त है कि आप न सुनी हुई न जानी हुई बातों को बतला सकें ?

मुनि—हे नरेश, जैसे कोई व्यापारी महसूल की चोरी कर माल ले जाने की चेष्टा करता है, ऐसे ही तुम यहाँ के विनय-भाव को चुरा कर ज्ञान रूपी माल को ले जाने का विचार कर रहे हो ! तुम्हारी यह बात ठीक ऐसी ही है।

मुनि के इस कथन को सुनकर राजा समझ गया और उनसे विनय पूर्वक बोला—

राजा—भगवन्! आप आज्ञा दें तो यहाँ बैठ जाऊँ।?

मुनि—राजन्! यह बाग तुम्हारा ही कहलाता है। इस धर्म-स्थल पर किसी को बैठने की मनाई नहीं है। मेरे पास आने के पहले तुमने जहाँ विश्राम लिया था वहां तुमने मुझे मूर्ख कहा था या नहीं?

राजा—आपका कहना सत्य है। मैंने आपको मूर्ख अवश्य कहा था। आप सच्चे ज्ञानवान हैं। (राजा के हृदय में विश्वास हुआ कि ये मुनि मुझे अवश्य समझायेंगे)

राजा—भगवन्! शरीर और आत्मा दो नहीं। यह तो पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पांच तत्वों का एक पुतला बना हुआ है। अन्त समय में पाँचों तत्व पृथक्-पृथक अपने तत्व में जा मिलते हैं। न कहीं स्वर्ग है, न नरक है, न पुनर्जन्म है। मनुष्य वृथा ही धर्म का ढकोसला चला रहे हैं। क्या आप स्वर्ग-नरक मानते हैं? आपके सिद्धान्त से शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं? यदि अलग-अलग हों तो एक बात बताइये। मेरा दादा मुझ पर बहुत प्रेम करता था। आपके कथनानुसार वह मर कर नरक में गया होगा, क्यों कि वह मुझ से कई गुना अधिक हिंसक था। उसका हृदय पाषाण के समान था। हिंसा करते समय वह दया को याद भी नहीं करता था। मृत्यु के पश्चात् वह नरक में अवश्य गया होगा। वह आ कर मुझे ऐसा

क्यों नहीं कह देता कि ओ पुत्र ! तू हिंसा आदि अत्याचार मत कर, नहीं तो मेरी तरह नरक में पड़ कर तुझे भी दुःख भोगना पड़ेगा ?

मुनि—राजन् ! ध्यान लगा कर सुनो। इसका उत्तर तो सीधा-सादा है। तुम अपनी स्त्रियों के साथ यदि किसी अन्य पुरुष को कुचेष्टा करते हुए देख लो, तो उस पुरुष को क्या दण्ड दोगे ?

राजा—दण्ड की क्या बात, मैं तो उसे जान से ही मार डालूँगा।

मुनि—ठहरो ! बोलने में इतनी जल्दी मत करो। अरे, उसे कुछ देर के लिए तो छोड़ोगे ?

राजा—नहीं, देरी का काम ही क्या ? उसको तो देखते ही तलवार से टुकड़े कर दूँगा। इसमें तो प्रधान तक की भी सम्मति लेने की कोई आवश्यकता नहीं।

मुनि—राजा ! इतनी जल्दी क्यों ? यदि थोड़ी देर के लिए वह तेरा अपराधी अपने कुटुम्ब से मिलने के लिए जाना चाहे और वह कुटुम्ब से यह कहना चाहे कि तुम लोग मेरी तरह अत्याचार मत करना, नहीं तो कभी मेरी तरह ही मारे जाओगे। तो उसे ऐसा करने को समय दोगे या नहीं ?

राजा—भगवन् ! यह आपने क्या कहा ? मैं उस अपराधी को घर जाना तो दूर रहा उसे मुँह से बोलने तक तो कभी दूँगा ही नहीं, तब उसकी सुने ही कौन ?

मुनि—राजन्! जब तुम एक ही अपराध करने वाले को थोड़ी देर के लिए भी नहीं छोड़ सकते, तो फिर तुम्हारे दादा को जिसने एक-दो नहीं सैकड़ों अत्याचार किये थे, परमधामी देव यहां क्यों आने देंगे? वे उसे कभी भी नहीं आने देंगे। बस, तेरे प्रश्न का यही उत्तर है।

राजा—भगवन्! आप बुद्धि के सागर हैं। न्याय और पत्थर जहाँ बैठावें वहीं बैठ सकता है, पर मैं नहीं मानता। अनेक अत्याचार करने वाले मेरे दादे को परमधामी देव न छोड़ें तो न सही, इसे जाने दीजिये। वह ऐसा करने में असमर्थ हैं; परन्तु मेरी दादी तो बहुत ही परोपकारिणी थी। वह हर एक को सदा सुख पहुँचाती रही। मतलब यह कि वह आपके मतानुसार कार्य करती रहती थी। आपके मतानुसार वह अवश्य ही स्वर्ग गई होगी। वही आ कर ऐसा क्यों नहीं कह देती कि पौत्र! मैं परोपकार करने के कारण स्वर्ग में सब तरह का आनन्द उठा रही हूँ। इसी तरह तू भी अत्याचार छोड़ कर परोकार कर जिससे स्वर्ग में आने पर आनन्द प्राप्त हो।

मुनि—हे राजन्! यही तुम्हारा प्रश्न है? तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है। मान लो किसी दिन वस्त्राभूषण से युक्त हो, देव-पूजन को देवालय में जा रहे हो, मार्ग में कोई मेहतर तुम्हें विष्टा की कोठरी में बुलावे तो क्या तुम वहाँ जाओगे?

राजा—भगवन! वहां जाना तो दूर रहा, मैं उसकी ओर आंख उठा कर देखने तक की भी इच्छा नहीं करूँगा।

मुनि—राजन्! बस तुम्हारे प्रश्न का उत्तर हो गया। जैसे तू वहां नहीं जाना चाहता ऐसे ही तेरी दादी यहां मृत्युलोक में कैसे आवेगी? कदापि नहीं आवेगी। क्योंकि, मृत्युलोक की दुर्गन्ध बहुत दूर तक फैली हुई है। अस्तु थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि देवता सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग कर के आ सकते हैं, पर इसमें भी उनके आने में विलम्ब हो जाता है। कोई धर्मात्मा जीव यहाँ से मर कर स्वर्ग में पहुँचते ही फिर यहां आना चाहे, तो अन्य देव-देवियाँ उससे कहती हैं कि—"तुम यहीं उत्पन्न हुए हो। यहाँ का दृश्य दो घड़ी तो देख लो। फिर मृत्युलोक में जाना और यहां की देखी हुई रचना का उल्लेख मृत्यु-लोक में करना, तो देवता होने की साक्षी देना।" बस फिर क्या क्या है, देवताओं की दो घड़ियां (मुहूर्त) यहाँ के दो हज़ार वर्ष के बराबर हैं। अब तुम्हीं कहो कि २००० वर्ष के बाद वह मृत्यु-लोक में किसी के पास आना चहे, तो यहां उसकी हड्डी तक का चिह्न मिलना कठिन है, कठिन क्यों असम्भव है।

राजा—ठीक है, एक बात मैं और पूछता हूँ। एक दिन मैं सिंहासन पर बैठा हुआ था। उस समय एक अपराधी को मैंने उसके गुरुतर अपराध के कारण प्राण-दण्ड दिया। मुझे तो यह परीक्षा करनी ही थी कि जीव और शरीर एक है या पृथक्? बस मैंने उस अपराधी को बिना मारे ही लोहे की एक मजबूत सन्दूक में बन्द कर उस पर ढक्कन दिलवा दिया, फिर चारों ओर से उसे इस तरह बन्द करा दिया कि भीतर हवा

श्रीमान् रावत जी साहब श्री केशरीसिंह जी महोदय

कानोड़ (मेवाड़)

घुसने के लिए कहीं भी छेद न रह जाय! सन्दूक़ को एक सुरक्षित स्थान में रखा दिया। उसकी रक्षा के लिए चारों ओर रक्षक-गण बिठा दिये गये। उनको समझा दिया गया कि यह सन्दूक़ टूटे-फूटे या इसमें से कोई निकले तो मुझे शीघ्र ही सूचित करना, किन्तु पाँच सात दिन तक उसकी कुछ भी सूचना मुझे नहीं मिली। तब मैंने स्वयं उस सन्दूक़ का निरीक्षण किया कि कहीं टूटी-फूटी तो नहीं? जब उस सन्दूक़ को तोड़ कर देखा गया तो उसमें वह अपराधी मरा पड़ा था। कहिए स्वामिन्, यदि शरीर से जीव अलग होता तो वह उस सन्दूक़ को तोड़ कर बाहर निकलता, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इससे सिद्ध होता है कि जीव नहीं है। जो कुछ है सो सब यह शरीर ही है।

मुनि—हे राजन्! ऐसी क्या भोली बातें तुम करते हो। क्या जीव को शरीर से निकलने के लिये मार्ग की आवश्क़ता है? कभी नहीं। जीव को रोकने के लिये लोह तो कोई चीज़ ही नहीं, वज्र तक की कुछ शक्ति नहीं। जीव तो अरूपी है। इसको इस दृष्टान्त से समझो। जैसे, किसी एक मकान के भीतर ही भीतर सातवें कोठे में कोई व्यक्ति वाद्य यंत्र लेकर बैठ जाय और सातों कोठों के किवाड़ बन्द कर वह वहां वाद्य-यंत्र बजावे, तो क्या उस वाद्य-यन्त्र का शब्द बाहर आवेगा?

राजा—भगवन्, शब्द तो अवश्य बाहर आवेगा।

मुनि—हे राजन्! वह शब्द किस मार्ग से होकर बाहर आया? बात यह है कि इसमें मार्ग की कोई आवश्यकता नहीं।

इसी तरह इस शरीर में से जीव बाहर निकल जाता है। इसके जाने के लिए मार्ग की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

राजा—खैर, इसे जाने दीजिये। मैं यह पूछता हूँ कि किसी प्राणदण्ड के अपराधी को मार कर पहले की तरह लोहे की सन्दूक़ में बन्द कर दिया। पांच-सात दिन के पश्चात् उसे खोल कर देखा तो उसमें लाखों कीड़े कलबल-कलबल कर रहे हैं! अब कहिये स्वामिन्! वे कीड़े किस मार्ग से जाकर भीतर घुसे? सन्दूक़ में कहीं एक छेद भी नहीं था!

मुनि—हे राजन्! तुमने कभी लुहार की भट्टी पर जाकर देखा होगा कि लोह-पिण्ड को जब विशेष गर्म करते हैं तब वह लाल सुर्ख हो जाता है कहिये राजन्! वह लाल क्या पदार्थ है?

राजा—वह तो अग्नि है।

मुनि—क्यों नरेश! रूपी अग्नि किस मार्ग द्वारा लोह-पिण्ड में प्रविष्ट हुई?

राजा—नहीं स्वामिन्! इसमें मार्ग की कोई आवश्यकता नहीं।

मुनि—बस, इसी तरह कीड़ों का भी प्रवेश हुआ। उनके लिए मार्ग की कोई आवश्यकता नहीं।

राजा—भगवन्! आपसे फिर मैं पूछता हूँ कि यदि शरीर और आत्मा पृथक प्रमाणित हों, तो नीरोग अवस्था वाला नवयुवक और रोगपीड़ित बालक-इन दोनों के चलाये हुए बाण बराबर दूरी पर क्यों नहीं पहुँचते हैं? इससे सिद्ध होता है कि

जो कुछ है सो शरीर ही है । शरीर की त्रुटि से ही दोनों के हाथों के छोड़े हुए बाण बराबर दूरी पर नहीं पहुँच सकते। इसलिए जो कुछ है सो शरीर ही है, आत्मा आदि कुछ भी नहीं ।

मुनि—हे नरेश ! नीरोग अवस्था वाले नवयुवक के समान रोगग्रस्त बालक बाण नहीं चला सकता। ऐसा केवल शरीर के कारण है, आत्मा तो एक सी ही है। जैसे नवीन 'कावड़' जितना बोझ उठा सकती है उतना बोझ जीर्ण 'कावड़' नहीं उठा सकती। 'कावड़ों' के उठाने वाले तो एक से हैं, पर कावड़ों में भेद है । ऐसे ही, नीरोग नवयुवक के शरीर और रोगग्रस्त बालक के शरीर में भेद है। इस कारण उन दोनों के बाण बराबर नहीं जाते हैं।

राजा—भगवन् ! जैसा युवा पुरुष लोह का भार उठा सकता है, वैसा ही बालक क्यों नहीं उठा सकता ? आपके कथनानुसार आत्मा तो एक सी ही है।

मुनि—हे राजन् ! आत्मा तो एक सी है, परन्तु सामग्री का अन्तर है । नवीन रस्सों से जितना भार उठाया जा सकता है उतना भार जीर्ण रस्सों से नहीं उठाया जा सकता। बालक की आत्मा तो युवा पुरुष की जैसी है, पर उसके अङ्गोपाङ्ग विकसित नहीं हुए हैं।

राजा—भगवन् ! आप की युक्तियाँ मेरे प्रश्न को बहुत ही जल्दी हल कर देती हैं, पर मेरे हृदय में अभी तक संशय बना हुआ है, समाधान नहीं हुआ । इस लिए आपसे फिर प्रश्न

करता हूँ। आप रुष्ट न होंगे। वह प्रश्न यही है कि किसी प्राणदण्ड के अपराधी को पहले तराजू में तौला जाय, फिर पीछे उसको मार कर उसे तौला जाय तो जीवित अवस्था में उसका जितना वज़न था उतना ही वज़न उसकी मृत्यु के पश्चात् भी निकलता है। तब हे स्वामिन्! अनन्त शक्तिमान आत्मा उस शरीर से निकल कर चली गई तो वज़न में शरीर हलका क्यों नहीं हुआ? हलका न होने के कारण प्रमाणित होता है कि सिर्फ़ यह शरीर ही है, इसमें आत्मा वग़ैरह कुछ भी नहीं है।

मुनि—हे राजन्! तुम्हारी इस शंका के बदले में हम यही कहना पर्याप्त समझते हैं कि—जैसे कोई व्यक्ति केवल दिवड़ को तौल ले और फिर उसी दिवड़ में वायु भर कर उसे तौले तो क्या उसके वज़न में अधिकता होगी? कदापि नहीं। इसी प्रकार शरीर में से आत्मा निकल जाने पर मृत शरीर भी वज़न में हलका नहीं होता है।

राजा—भगवन्! आप से एक प्रश्न और भी है। एक दिन एक प्राणदण्ड के अपराधी के पूरे ३२ टुकड़े किये और आत्मा को बार-बार देखा, पर शरीर में किसी जगह भी आत्मा दृष्टिगोचर न हुई। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा नहीं है, जो कुछ है सो शरीर ही है।

मुनि—हे राजन्! तुम अनभिज्ञ कठियारे जैसे हो। जैसे, काष्ठ बेचने वाले चार व्यक्ति थे। वे चारों ही एक दिन एकत्र हो कर जंगल में काष्ठ लेने को गये, वहाँ पर एक कठियारे से तीनों

जनों ने यों कहा कि "हम तो काष्ठ काट कर इकट्ठा करेंगे और तब तक अरणी के काष्ठ में से आग निकाल कर तुम भोजन तैयार रखना।" ऐसा कह कर वे तीनों जने जंगल में चले गये। उसने अरणी के काष्ठ में से आग प्राप्त करने के लिए काष्ठ के कई टुकड़े कर डाले और उनमें आग की खोज की, परन्तु आग कहीं भी दिखाई न पड़ी। वह मनुष्य क्रोधित हो कर ज्यों का त्यों बैठा रहा, कुछ देर के पश्चात् वे तीनों मनुष्य काष्ठ ले कर वहाँ आये और आते ही पूछा कि "भोजन बनाया कि नहीं?" वह क्रोधित तो था ही, इतना पूछने पर वह और भी क्रोध में आ कर बोला—"आग बिना क्या राख से भोजन बनाता? तुम लोग तो हुक्म देकर चले गये कि अरणी के काष्ठ में से आग निकालना, पर क्या इसमें आग धरी है?" तब वे तीनों मनुष्य हँस कर बोले—"अरे मूर्ख, अरणी के टुकड़े-टुकड़े करने पर क्या आग नजर आती है?" ऐसे ही हे राजन्, तुम भी शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर आत्मा को देखना चाहते हो!

राजा—भगवन्! अब मैं और कुछ न पूछूँगा और न मैं अब प्रश्नों की गम्भीर तरंगों में उतरूँगा। स्वामिन्! आप तो मुझे मेरी हथेली में आत्मा को बता दीजिये। बस, फिर मैं मान लूँगा कि आत्मा और शरीर पृथक-पृथक हैं। ईश्वर, पुण्य-पाप, पुनर्जन्म आदि सब कुछ हैं। ऐसा ही मैं भी मानूँगा।

मुनि—हे राजन्! वृक्षों (झाड़ों) की ओर देखो उनके पत्तों को कौन हिला रहा है?

राजा—स्वामिन् ! वायु हिला रही है ।

मुनि—तब क्या तुम उस वायु को देख रहे हो ? यदि सचमुच ही ऐसा हो, तो कुछ वायु यहाँ ला कर मेरी हथेली में मुझे बता दो ।

राजा—स्वामिन् ! हवा को न तो मैं देख रहा हूँ और न मैं उसे आपकी हथेली में ला कर बता सकता हूँ ।

मुनि—इसी प्रकार हे राजन् ! मैं तेरी हथेली में अरूपी आत्मा को कैसे बता सकता हूं और तुम भी उसे कैसे देख सकते हो ?

राजा—भगवन् ! आपने उत्तर बहुत ठीक दिया, पर मुझको अभी तक समाधान नहीं हुआ । अतः आपसे और पूछता हूँ कि हाथी की स्थूल आत्मा बहुत ही सूक्ष्म कुंथुआ में कैसे प्रवेश करती होगी ?

मुनि—हे राजन् ! जैसे दीपक को घर में रखें, तो वह सारे घर में प्रवेश करेगा और उसी दीपक को टोकरी से ढाँक दें, तो टोकरी में ही प्रकाश करेगा । इसी तरह उस दीपक को कटोरे से ढाँक दें, तो वह कटोरे में ही प्रकाश करेगा । हे राजन् ! अब तुम समझ सकते हो कि जिस प्रकार मकान जितना प्रकाश उस कटोरे में प्रवेश कर सका उसी प्रकार हाथी की स्थूल आत्मा कुंथुआ के शरीर में प्रवेश कर जाती है । छोटा-बड़ा होना शरीर का लक्षण है, आत्मा का नहीं । हाँ, निमित्त पाने पर आत्मा संकुचित-प्रसारित हो सकती है ।

राजा—भगवन् ! बस, मेरे प्रश्नों का उत्तर भली प्रकार से मिल चुका। मैं समझ गया। अब शरीर के विषय में मेरा और कोई भी प्रश्न नहीं रहा। अब मैं अपने शुद्ध अन्तःकरण से आप में श्रद्धा रखूँगा। लौकिक में मेरे बाप-दादों का जो मन्तव्य था मैं भी वही रखूँगा। इसमें सन्देह न करेंगे।

मुनि – हे राजन ! तुम्हारी इस बात से मुझे एक बात याद आई। किसी समय चार व्यापारी मिल कर दूसरे देश को जा रहे थे, रास्ते में उन्होंने लोहे की एक खान देखी। उस खान में से चारों ने अपनी-अपनी गठरी बांध ली। गठरियां ले कर आगे चढ़े। जाते-जाते आगे उनको ताँबे की खान मिली। वे विचार करने लगे कि लोह तो यहां डाल दें और यहां से तांबा बांध ले जायें। उनमें से तीन ने तो लोहा छोड़ कर ताँबा बांध लिया, पर चौथा व्यापारी बोला कि तुम मूर्ख हो, पहले जो बांध लिया सो बांध लिया घड़ी-घड़ी बांधना और खोलना ठीक नहीं। मैं तो लोहा ही रखूँगा। उन तीनों ने उसे बहुत समझाया, पर वह लोहा बाँधने वाला किसी के समझाये न समझा। वे तांबे की गांठें ले कर आगे चले। मार्ग में चांदी, सोने, हीरे और पन्ने की खानें मिलती गईं। वे क्रम से एक को छोड़ कर दूसरी चीज बाँधते गये। अन्त में उन तीनों ने पन्ने की गांठें बांध लीं, पर जिस व्यापारी ने लोहे की गाँठ बांधी थी, उसने कहीं से भी फिर दूसरी गांठ न बांधी। तब उन तीनों ने उसे अन्तिम खान पर फिर भी समझाया कि अरे भाई ! अब तो लोह डाल कर पन्ना बाँध ले !

उसने उत्तर दिया—"तुम सब वज्र मूर्ख हो! मुझे तो एक वार बाँधना था सो बाँध लिया।" अन्त में वे सब अपने गाँव में आये। उन चारों में से तीन तो सुखी हो गये, पर वह चौथा लोहा बाँधने वाला जैसा का तैसा ही दरिद्र बना रहा। राजन्! अब मैं पूछता हूँ कि क्या तुम भी लोह बाँधने वाले जैसे हो? उसने जैसे लोहा बाँधा क्या वैसे ही तुम भी बाँधना चाहते हो? तुमने अपनी अज्ञानावस्था में नास्तिक-धर्म स्वीकार कर लिया था तो खैर, कोई बात नहीं, पर अब तो तुमको ज्ञान रूपी पन्ने की खान मिल गई है! क्या अब भी नास्तिक-रूप लोह का त्याग न करोगे? याद रखो, अगर तुमने लोह का त्याग न किया, तो चौरासी लाख का चक्कर तैयार है!

राजा—भगवन्! अब सारा संशय मिट गया। हृदय में एक भी शंका शेष न रही। अब मेरा हृदय शुद्ध है। मैं उस लोह-व्यापारी जैसा नहीं हूँ। मैं सत्य का ग्राही हूं। मैं नास्तिक-रूप लोह छोड़ आस्तिक-धर्म रूप पन्ने की गठरी बांधूँगा।

ऐसा कह कर राजा ने आस्तिक-धर्म को स्वीकार किया। कहा कि अब मैं ईश्वर, पुण्य-पाप, आत्मा, शरीर, पुनर्जन्म आदि सब मानूँगा और धर्म पर निष्ठ रहूँगा। आज से मैंने नास्तिक-धर्म का परित्याग किया।

बाद में केशी श्रमण मुनि ने वहाँ से विहार किया और अनेक देश-देशान्तरों में धर्म का प्रचार कर मोक्ष में जा विराजे। राजा प्रदेशी ने भी धर्म पर निष्ठा रखी और दान, दया, परोपकार

श्रीमान् रायवहादुर नहारसिंह जी साहब
वेदला (मेवाड़)

आदि करता हुआ सद्गति को प्राप्त हुआ। इसका पूरा विवरण आपको "राय प्रसेणी सूत्र" में मिलेगा।

हे हिन्दूकुल-सूर्य मेवाड़ाधिपति, इस प्रकार उस प्रदेशी राजा ने सत्संग के कारण उच्च पद प्राप्त किया। सत्संग की महिमा का वर्णन कहां तक करें? इसकी महिमा अपार है। तदनन्तर मुनि श्री ने उपदेश को समाप्त करके कहाः—हे महाराणा साहब, आपकी इस नगरी में धर्म-ध्यान भली प्रकार हुआ और बहुत हुआ। सैकड़ों ने दूषणों का त्याग किया। आपने भी बहुत उपकार किया। हमारा चित्त भी बहुत प्रसन्न रहा।

पश्चात् श्री महाराणा साहब मुनि श्री से बोले—"काले कणी वखत पधारोगा?"

"एक या डेढ़ बजे के अन्दाज।"—मुनि श्री ने कहा।

"कठीने की तरफ पधारोगा?"—फिर श्रीमान् ने पूछा।

मुनि श्री ने कहा कि बहुत से गांव वाले लोग अपने-अपने गांव की ओर ले चलने का आग्रह कर रहे हैं। अवसर के अनुसार किसी ओर विहार करेंगे। इस पर महाराणा साहब मुनि श्री से बोले—"अठे फेरी कभी पधार जो।"

मुनि श्री वहां से अपने निवासस्थान की ओर वापस लौट ही रहे थे कि महाराजकुमार साहब की ओर से यह सूचना प्राप्त हुई—मुनि श्री को अठे पधराया जावे। ऐसी सूचना मिलने पर मुनि श्री सूर्य गवाक्ष महल में पधारे। महाराजकुमार साहब ने विनय और भक्तिभाव से मुनि श्री का स्वागत किया। पश्चात्

मुनि श्री ने उपदेश आरम्भ किया।

उपदेश

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठई सव्व संजए।
अनाणी किं काही किंवा, नाईए सेय पावगं॥
दश वैकालिक अ० ४ श्लोक १०

हे हिन्दूकुल-सूर्य के युवराज महाराज कुमार साहिव! इस संसार में सवसे प्रथम मनुष्य मात्र का, ज्ञान प्राप्त करना ही प्रथम कर्त्तव्य है क्योंकि विना ज्ञान के हित, अनहित का मार्ग सूझ नहीं पड़ता। और जीव अजीव को ज्ञान द्वारा जाने विना दया भी कैसे कर सकता है। ज्ञान ही से जीव, अजीव पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष तत्वों के रहस्य को जान सकता है। ज्ञान, ज्ञान-दृष्टि से प्रत्येक पदार्थों में से प्राप्त हो जाता है।

देखिये, जिस समय कोई वेश्या का नृत्य कराना चाहे, तो उसकी सूचना न होने पर भी उस समय विना वुलाये ही मनुष्य इकट्ठे हो जाते हैं! धर्म-स्थान पर विछाने को विछावन (जाजम आदि) की आवश्यकता हो, तो वहाँ नहीं (इनकार) करने में कुछ भी देर नहीं करते हैं और जो वेश्या के नृत्य कराने की जगह विछावन की मांग हुई तो शीघ्र ही चारों ओर से 'हां' होकर पहुँचने लग जाती है। हरेक भेजने को कहता है। यह सव कलियुग की महिमा है, पर ज्ञान होने से ज्ञानियों ने

वहां पर भी ज्ञान प्राप्त किया है।

सवैया

परिपूरण पाप के कारण ते, भगवंत कथा न रुचे जिन को।
शुभ काज को छोड़ कुकाज करे, धन जात है व्यर्थ सदा तिनको।
इक रांड बुलाय नचावत है, नहिं आवत लाज जरा तिनको।
मिरदङ्ग भनै धिक है धिक है, सुरताल कहे किनको-किनको।
तब हाथ पसारिके रांड कहै, धिक है इनको-इनको-इनको॥

अर्थात् कई एक मनुष्य भगवत्कथा को छोड़ कर वेश्या-नृत्य कराते हैं। ज्ञानियों ने वहाँ पर भी ज्ञान लिया है कि मृदङ्ग धिक-धिक करके धिक्कार दे रहा है। सुर-ताल पूछता है किस को? तब वह वेश्या लम्बा हाथ करके महफ़िल में बैठे हुए जनों को बता रही है कि इन देखने वाले सब जनों को धिक्कार है। मृदङ्ग कहता है कि, 'डुबक-डुबक-डुबक' डूबते हैं, तब सारंगी कहती है कि, 'कुन-कुन-कुन, कुननन' कौन डूबता है, कौन डूबता है? तब वह वेश्या लम्बा हाथ करके बताती है कि ये सब महफ़िल में बैठे हुए मुझे बुरी दृष्टि से देख रहे हैं ये सब डूबेंगे। ये लोग जानते हैं कि मोहनी ने हमारी ओर हाथों का झाला (इशारा) किया है। ज्ञानी कहते हैं कि वह झाला नहीं, किन्तु नरक में जाने का धक्का दिया है।

हे युवराज महाराज कुमार साहिब! ज्ञानी जन ऐसी जगह पर भी ज्ञान-द्वारा ज्ञान ही प्राप्त कर लेते हैं। यह ज्ञान ही मनुष्यों

के मोक्ष का कारण हो जाता है गरुण पुराण में कहा है:—

"मोक्षस्य कारणं साक्षात् तत्वज्ञानं खगेश्वर"

निदान यह है कि वस्तु का स्वरूप ज्ञान द्वारा विचारने से आत्मा को आत्मिक ज्ञान हो जाता है। कई सौ वर्ष पहले की बात है कि 'करकण्डु' नामक एक रईस था। एक दिन सैर करने के लिये जाते हुए मार्ग में गौ का वत्स देखा। उसी समय ग्वालिये को बुला कर कहा:—इसे खूब दूध पिलाना और इस से कुछ भी काम न लेना। ऐसा कह कर पीछे नगर को लौट आया।

कालान्तर में उसी वत्स को हृष्ट पुष्ट देख कर राजा का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ फिर कितने ही दिनों के पीछे उसी वत्स को देखा तो उस में न तो बैठने की शक्ति है और न उठने की। उसकी अवस्था का ऐसा रूपान्तर होता देख विस्मित हो राजा ने अपने प्रधान को बुला कर पूछा।

राजा—प्रधान! इस वत्स की यह क्या दशा हो गई? और आगे इस का क्या होगा?

प्रधान—महाराज! यह वृद्ध हो गया है, और आगे कुछ दिनों के वीत जाने पर यह मर जायगा।

राजा—मरना क्या होता है?

प्रधान—शरीर से आत्मा निकल जायगा।

राजा—अच्छा प्रधान! क्या इन जानवरों को ऐसा ही हुआ करता है?

प्रधान—नहीं नरेन्द्र! यह घटना तो सबों पर घटती है।

राजा—तो क्या मुझ पर भी ऐसी बला बीतेगी?

प्रधान—अवश्य, आप तो क्या चीज़ हैं बड़े-बड़े चले गये।

तब राजा चौंक कर बोलाः—

तर्ज—पंजी की।

हम नहीं मरें अमर रहें जग में, नहीं बुढ़ापो आवेरे।
जागीरी बत्तीस करूँ, जो दवा खिलावेरे ॥

अर्थात् दूर-दूर से वैद्यों को बुला कर मेरे न मरने की औषधि जो वैद्य करे और उस औषधि से मेरी मृत्यु न हो तो मैं उस वैद्य को बहुत सी जागीर प्रदान कर दूँ।

प्रधान-नरनाथ! उस मौत के आगे बड़े-बड़े वैद्य भी हार गये और उसी मौत के ग्रास बन बैठे। किसी कवि ने कहा है—

तर्ज़—अर्ज़ पर हुक्म श्री महावीर।

कहां हैं राम और लछमन, कहां रावण से अभिमानी।
कहां हनुमान से जोधा, पता जिनके न था बल का ॥

अर्थात्—कहां तो रामचन्द्र जी महाराज जो कि पिता के कहां तक भक्त थे उसका ज्वलन्त उदाहरण इन ही वाक्यों से प्रकट होता है किः—

तर्ज़—लाखों पापी तिर गये सत्सङ्ग के प्रताप सेः—

राम तो माता पिता, दोनों का तावेदार है।
मेरे जानो तन का माता जी तुम्हें अख्तयार है॥

अर्थात् यह राम तो माता पिता का अनुचर है। चाहे

आम बाजार में क्यों न बेच दिया जाय ? हे माता ! इसके सामने वनवास क्या चीज़ है ? पुत्र का कर्तव्य है कि अपने माता की आज्ञा को कभी भी उलंघन न करे। ऐसे रामचन्द्र महाराज कहां हैं और कहां हैं लक्ष्मण जी कि जिन्होंने बलधारी रावण का निपात किया। और कहां हनुमान जी हैं ? यह मौत न तो किसी से डरती है और न किसी से रिशवत खाती है। संसार में तो रिशवत से अनेक लोग अपना काम कुछ बना ही लेते हैं। एक कहावत है कि किसी एक ग़रीब की मिसल एक हाकिम के पास थी। जब कभी वह बेचारा मिसल लेने को हाकिम के पास जाता, तो वह हाकिम उस ग़रीब को कोई न कोई बहाना करके निराश कर टरका देता था और कहता था कि, अभी फ़ुरसत नहीं, फिर कभी आना। अभी उस मिसल में बहुत गड़बड़झाला है। ऐसा करते-करते उसने बहुत दिन बिता दिये, पर उस ग़रीब बेचारे की मिसल निकाल कर न दी। तब उस ग़रीब ने विचार किया कि मिसल में सिवाय दस्तख़तों के और कुछ भी काम नहीं रहा है। दस्तख़त हो कर बिना कुछ भेंट दिये मिसल न मिलेगी, पर भेंट देने को मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं, करूँ तो क्या करूँ ? इतने ही में उसने एक कम ख़र्च बालानशीन वाली एक युक्ति अपने मग़ज़ से ढूँढ़ निकाली कि आज-कल बाज़ार में नये आमों का मुरब्बा तैयार हो रहा है। दो-चार रुपये का मुरब्बा लाकर हाकिम को रिशवत दे दूँ, पर मेरे पास दो-चार रुपये भी तो नहीं हैं। हां,

इतना तो अवश्य कर सकता हूँ कि आठ आने का मुरब्बा घर पर ले आऊँ और कुम्हार के यहां से एक बड़ा घड़ा (मटका) ला कर उसे ताजे गोबर से भर कर ऊपर मुरब्बा डाल दूँ। ऐसा ही करके नये कपड़े से उस घड़े का मुँह बाँध कर सिर पर रख हाकिम साहिब के घर पहुँचा। नौकर से कहा—"जाओ भीतर हाकिम साहिब से कह दो कि मिसल वाला वह ग़रीब बनिया आया है। नौकर ने भीतर जा कर वैसा ही कह दिया। बात सुनते ही हाकिम साहिब क्रोध से आगबबूला हो, नौकर को डाट कर बोले— "जाओ बदमाश से बोल दो अभी फ़ुरसत नहीं, कभी कचहरी पर आना।" नौकर ने अर्ज की—"नहीं हुज़ूर! वह मिसल लेने को नहीं आया है, ऐसा मालूम पड़ता है कि वह कुछ न कुछ आपकी नजर करने के लिए लाया है।" तब तो हाकिम साहिब ने फ़रमाया—"ठीक है, तब तो उसे भीतर आने दो।" सब नौकरों से कह दो उसे न रोकें। बस, फिर क्या था, वह भीतर पहुँचा। सलाम करके बोला—"अभी तो किसी काम के लिए नहीं आया हूं। अभी फ़सल के दिन होने से नये आमों का मुरब्बा आपकी नजर करने के लिए लाया हूँ।" हाकिम साहिब ऊपरी मन से बोलेः—क्यों लाया है भाई! तू तो ग़रीब है, ख़ैर लाया है तो रख दे। आज दोपहर को कचहरी में आ जाना, तेरी मिसल को भी निकाल दूंगा। उसने कहाः—आप की बड़ी मेहरबानी है। ऐसा कह कर लम्बा सलाम कर वह तो अपने घर आया। उधर हाकिम

साहिब अपनी बीबी जान से कहने लगे—देखा कैसा मक्कार बनिया है, कहता था कि मेरे पास कुछ भी नहीं, आखिर को लाया ही। बीबी! मटके को खोलो तो सही जरा चख तो लो, मटका खोला गया, एक-एक फांक सबने खाई, तबीयत सब की ख़ुश हो गई।

जब दोपहर को हाकिम साहिब कचेहरी पहुँचे तब तक वह मिसल वाला भी वहाँ आ पहुँचा। हाकिम ने मुरब्बे की रिशवत खा कर मिसल पर दस्तख़त कर देने में कुछ भी विलम्ब न किया। मिसल वाला बोला—इसमें अब कुछ बाक़ी तो नहीं रहा है। किसी और को बताने की आवश्यकता तो नहीं है। हाकिम बोला अब इसमें कुछ भी काम बाक़ी नहीं रहा, सिर्फ़ मेरे दस्तख़तों की ज़रूरत थी, वह हो चुके। मिसल ले कर वह अपने घर पहुँचा।

इधर हाकिम साहिब को बस मुरब्बे के शीरींपन का ऐसा चस्का लग गया कि वे बार-बार बीबी जान से मुरब्बा मांगते थे, एक दिन बोले—बीबी! ज़रा फाँके तो निकालो। उसने जो करछी डाली तो भीतर से वह दुर्गंधयुक्त सड़ा हुआ गोबर निकला। नाक से कपड़ा लगा बीबी जान बोलीं—"अजी, ज़रा देखो तो सही, वह मुआ आप को तो धोका दे गया। मटका तो सारा का सारा सड़े गोबर से भरा पड़ा है।" यह घटना देख हाकिम साहिब को बड़ा क्रोध आया, पर करें क्या, मिसल तो हाथ से निकल चुकी थी।

श्रीमान् महाराजा तेजराजसिंह जी साहब
सरकार गेंता (कोटा)

एक दिन हाकिम साहिब कचहरी जा रहे थे, संयोग से रास्ते में वह मिसल वाला भी मिल गया। उन्होंने उससे कहाः—"अरे! वह मिसल लाना, उसमें कुछ कसर रह गई है, उसे दुरुस्त करना होगा।" वह बोला, "हाकिम साहिब! मिसल में तो कुछ कसर ही नहीं रही दीखती, अगर कसर रही होगी तो उस मुरब्बे में ही रही होगी।" आखिरकार हाकिम समझ गया कि अब यह कमबख्त पेच में आने वाला नहीं है।

इसी तरह से मौत रिशवत खाती होती तो उसे रुपये देने वाले सहस्रों ही मनुष्य रुपये दे-दे कर मौत से अपना पिण्ड छुड़ा लेते; पर मौत रिशवत नहीं खाती है।

हे युवराज महाराज कुमार साहिब! देवी - देवताओं को बकरी मुर्गा और भैंसा चढ़ाने से भी मौत नहीं डरती है। और ऐसा करने पर आयु भी नहीं बढ़ती है। किसी कवि ने कहा हैः—

छप्पय

पितर पूत जो देय, खसम काहेको कीजे।
लक्ष्मी देव जो देय, दुःख काहेको सहीजे॥
चण्डी देय सुहाग, रांड घर-घर क्यों होवे।
तीर्थ उतारे पाप तो कोढ्या घर क्यों रोवे॥
जीव दियां जी ऊबरे तो सुलताना क्यों मरे।
मंत्र-यंत्र हो सिद्ध तो घर-घर मँगता क्यों फिरे॥

अर्थात् जो देवी-देवता ही पुत्र-पुत्री दें तो फिर कन्याओं का विवाह करने की आवश्यकता ही क्या है। यदि लक्ष्मी जी धन दें तो फिर लोगों के दुखी रहने का काम ही क्या? और चण्डी देवी जो सुहाग देती हो तो फिर संसार में विधवा क्यों होती हैं। इसी तरह से देवी-देवताओं को बकरा, मुर्गा और भैंसा चढ़ाने से मनुष्य नहीं मरते हों तो राजा बादशाह क्या इस प्रकार नहीं कर सकते? अतएव देवी-देवताओं को बकरा, मुर्गा और भैंसा चढ़ाने से वह मौत से बच नहीं सकता। किसी कवि ने कहा है:—

दोहा

सोता-सोता क्या करो सोता आवे नींद।
काल सिराने यों खड़ो, तोरण आवे बींद॥

अर्थात् लोगों को ऐसा अपूर्व समय मिलने पर परोपकार करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये। सगाई चाहे कलकत्ते, मदरास और बम्बई आदि कितनी ही दूर पर क्यों नहीं करे पर समय पर बीन्द आ ही खड़ा होता है। फिर भी कहीं बीन्द आने में तो विलम्ब हो जाता है, पर मौत के आने में कुछ भी विलम्ब नहीं होता है और इसको छोटे बड़े का मुलाहिज़ा भी नहीं है किसी कवि ने कहा है:—

शेर

चार दिन की चाँदनी, आखिर अँधेरी रात है।

सारे ठिकाने जायेंगे, रहने की झूठी बात है।
ना किसी का है भरोसा, ना किसी का साथ है।
चलती दफे देखा तो, जाता मनुज खाली हाथ है॥

अतएव इस मनुष्य शरीर से जो परोपकार करेंगे वही साथ जावेगा। जब यह शरीर पा कर इस से कुछ भी नहीं किया तो यह शरीर किस काम में आवेगा। जानवर तो अपने जीवन में घास खाकर दुग्ध देता है और उस का गोबर भी काम आता है। मरने के पश्चात् भी अपने शरीर के पदार्थों से लोगों का परोपकार कर ही जाता है! किसी कवि का वचन हैः—

कवित्त

हाथी दांत के खिलौने, जगत के आवें काम,
बाघों का बाघम्बर, महेश चित्त लायेगा।
मृगन की खाल को बिछावत हैं जोगीराज,
वृषभ का चर्म कछु अन्न निपजायेगा।
करेले की खाल में सुगन्ध है तैयार होत,
बकरे का चर्म कछु पानी ही पिलायेगा।
सांभर के सटके तो बाँधत सिपाही लोग,
गैंडे की तो ढाल राजा राना मन भायेगा।
नेकी और बदी दो ही सँग चले मियाराम,
मनुष्य का चर्म कछु काम नहीं आयेगा॥

मानव-शरीर को जीतेजी क़लाक़न्द खोपरापाक आदि

उत्तम पदार्थ खिलाकर किसी के द्वार (दरवाज़े) पर जंगल (टट्टी, पाख़ाना) फिरावे तो उस प्रिय मानव शरीर से लोग लड़ने को खड़े हो जाते हैं। वही मानव शरीर मृत्यु अवस्था में जलकर राख हो जाता है । यदि इस शरीर से परोपकार न किया जाय तो फिर यह शरीर किस काम आवेगा ? अतएव लोगों को चाहिये कि ऐसा अपूर्व मानव शरीर पाकर प्राणी मात्र की रक्षा करें। सत्य बोलें, चोरी त्याग करें, पर-स्त्री को माता समझें, स्वकीय स्त्री के साथ अष्टमी, चतुर्दशी एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्या और प्रदोषादि तिथियों पर तो अवश्य ब्रह्मचर्य-व्रत पा लें, सम्पति पाकर दीन हीन अनाथों का प्रति पालन करें, विद्यालय, औषधालय और गोरक्षा आदि कार्य में तन, मन, धन से सदा सहायता करें, मदिरापान, मांस-भक्षण, जुआ, वेश्या-गमन, शिकार, गांजा, चण्डू, चरस, भंग, तम्बाकू आदि पदार्थों का त्याग करें, आत्मोन्नति, देशोन्नति, धर्मोन्नति आदि उत्तमोत्तम कार्य में सदा लक्ष रक्खें और दो घड़ी ईश्वर का भजन करें, ऐसा करने से ही मानव शरीर का पाना सार्थक है। इसके पश्चात् मुनि श्री ने अपना उपदेश समाप्त किया।

हमें इस जगह यह बात अवश्य कहनी पड़ेगी कि मुनि श्री का यह उपदेश इतना रुचिकर हुआ कि उपदेश के बीच-बीच में युवराज महाराज कुमार साहिब ने कई बार हर्षोल्लास का परिचय दिया और उपदेश श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। तदनु बापाजी राज ने नुनि श्री से कहा कि, जो आप कने दीक्षा व्हे

है वा कदीवेगा" । मुनि श्री ने कहा "जहाँ अवसर होगा देखा जायगा। अभी हाल तो हम सब क्रिया बता रहे हैं कि,माथे के, मूँछों के केश लोचने (नोंचने) पड़ेंगे, उष्ण-शीत ऋतु में नंगे पाँव देशाटन करना होगा, शीत काल में केवल तीन पछेवड़ियों (चादर) से अधिक वस्त्र नहीं ओढ़ना होगा ।" महाराज कुमार साहिब ने मुनि श्री से पूछाः—"रंगीन कपडो तो काम में नी आवतोवेगा" । उत्तर में मुनि श्री ने कहा "हाँ रंगीन कपड़ा तो काम में नहीं आता है और बहु मूल्य वस्त्र भी हम नहीं लेते हैं ।" इस पर महाराज कुमार साहिब ने पुनः कहा कि,"उनी तो काम में आतावेगा" उत्तर में मुनि श्री ने कहा कि, "हाँ एक वस्त्र रखें तो दो सूती रखेंगे ।" फिर मुनि श्री ने कहा-"आज आप ने महल बता दिया" । बापजीराज नें मुनि श्री से कहा कि, "दुजो तो आप के से पधारता ।" मुनिश्री ने कहाः—"हे महाराज कुमार साहिब, आप एक तो अनाथालय दूसरे गोरक्षा (पींजरापोल) पर विशेष ध्यान रखावें ।" उत्तर में कहा कि "म्हारा ध्यान में है ।" फिर महाराज कुमार साहिब ने पूछा "आप कठीने पधारोगा ।" मुनि श्री ने कहा कि, "अभी तो आस पास,फिर जिधर अवसर हो जाय उधर चले जावें । महाराज कुमार साहिब ने मुनि श्री से यह भी कहा कि, "फेर कदी अठे पधराजो ।"

मुनि श्रीअपनी शिष्य-मण्डली सहित स्वस्थित स्थान पर पधार गये ।

इस जगह हम यह बात कहना न भूलेंगे कि चातुर्मास में मह-

ताजी साहिब धर्म-प्रेमी श्रीमान् श्री जीवनसिंह जी महोदय के सुपुत्र रत्न स्वनाम धन्य श्रीमान् श्री तेजसिंह जी साहिब ने भी जीव-दया आदि कई कार्यों में भरसक सहायता दी है।

मार्गशीर्ष (अगहन) कृष्णा १ को बापाजी राज की ओर से श्रीमान् श्री रंगीलाल जी, श्री कारूलाल जी महोदय संदेश लाये कि, "मुनिश्री ने अठे पधरावो"। इस प्रकार सूचना मिलने पर मुनि श्री सूर्य-गवाक्ष-महल में पधारे। युवराज महाराज कुमार साहिब ने विनय भाव और भक्ति पूर्वक वस्त्र बहराने के भाव दर्शाये। तब मुनि श्री ने कहा कि, "म्हां का वास्ते मोल तो नहीं मँगाया गया है।" तब श्रीमान् श्री कारूलाल जी महोदय बोले कि "एक लाख से ऊपर के वस्त्र श्री भण्डार में हैं। आपके निमित्त कुछ भी नहीं मँगाया गया है।" तदनु महाराज कुमार साहिब ने अपने कर-कमलों से उच्च भाव सहित वस्त्र बहराये। तत्पश्चात् मुनि श्री स्वस्थित स्थान पर पधारे। वहाँ से विहार कर सराय में पधारे। वहां सलुम्बर रावत जी साहिब श्रीमान् ओनाड़ सिंह जी जो हिन्दू-कुल-सूर्य श्रीमन्त श्रीमहाराना जी साहिब के सोलह उमरावों में के उमराव हैं, वहाँ व्याख्यान श्रवण करने को आये। व्याख्यान की समाप्ति होने पर इस प्रकार कहा—"जैपुर का पामणा बेदले आया हुआ है, जी सूँ मूँ भी वठे हो सो पहला हाजर नै है सको, आज खबर लागी के आज महाराज पधार जावेगा। म्हूँ बेदले जा रहो हो, विचार किधो के दर्शन तो करतो जाऊँ। बेदले जरूर पधारे म्हूँ भी वठे हाजर होऊँगा।"

कुरावड़ रावत जी साहिब और मेजा रावत जी साहिब ने मुनि श्री के दर्शनों का लाभ लिया। वेदला राव बहादुर श्रीमान् श्री नाहर सिंह जी महोदय जोकि श्रीमन्त श्री महाराना जी के सोलह उमरावों में से हैं, की ओर से पत्र इस प्रकार लिखा हुआ प्राप्त हुआ—

॥ श्रीराम जी ॥

॥ श्री रुघनाथ जी ॥

मुनि श्री महाराज श्री चौथमल जी की सेवा में। सुणी है के आप उदयपुर सुँ विहार करे है ई वास्ते अरज है के और जगां विहार करवा सुँ पहला वेदले भी एक-दो दिन के लिए पधारे। आपका व्याख्यान सुणवा सूँ मने व म्हारी प्रजा ने अत्यन्त आनन्द होवेगा। सं० १९८३ मृगसर कृष्ण ४ भोमवार

द० नारसिंह जी वेदला

जैन-दिवाकर जी अगहन कृष्ण ६ को वेदले पधारे। वहां पर तीन व्याख्यान हुए। राव बहादुर महोदय ने भी उपदेश का लाभ लिया। उपदेश श्रवण कर उनका चित्त बड़ा प्रसन्न रहा और भी उपदेश होने के लिए राव बहादुर साहिब ने मुनि श्री से आग्रह किया था, पर अधिक अवकाश न होने से वहां ठहर न सके। राव बहादुर साहिब ने भेंट स्वरूप एक पट्टा कर दिया।

जैन-दिवाकर जी अगहन कृष्ण ९ को हनुमान घाट पर पधारे। वहां सयंकाल को सलुम्बर रावत जी साहिब श्रीमान् ओनाड़ सिंह जी, बिजोलिया रावत जी साहिब श्रीमान् केसरी

सिंह जी अपने भ्राता सहित और अमरगढ़ के रावत जी साहिब श्रीमान् अमरसिंह जी ने मुनि श्री के दर्शनों का लाभ लिया। अगहन कृष्ण १० का व्याख्यान भिंडर-महाराज श्रीमान् भोपाल सिंह जी ने श्रवण किया और मुनि श्री से कहा कि "कल का व्याख्यान और होना चाहिए। वह भी यहां न होकर हवेली में किया जावे ताकि लोगों के बैठने की तंगी भी न रहे और सबों को लाभ मिले। अगहन कृष्ण ११ को व्याख्यान भिंडर-महाराज की हवेली में हुआ। वहां पर सलुम्बर रावत जी साहिब ने उपदेश श्रवण का लाभ ले कर मुनि श्री के भेंट स्वरूप में एक पट्टा कर दिया।

जैन-दिवाकर जी नांइ गांव से लौट कर उदयपुर के बाहर श्रीमान् महता जी लक्ष्मणसिंह जी साहिब की सराय में पधारे। वहां फिर सलुम्बर रावत जी साहिब ने मुनि श्री के दर्शनों का लाभ लिया और अपने राज्य-स्थान में पधारने के लिए अत्याग्रह किया। इसी तरह से अन्य उमरावों ने भी मुनि श्री से अपने-अपने राज्य-स्थान में पधारने का बहुत आग्रह किया। साथ ही में विशेष उपकार होने की भावना भी दरशाई।

अगहन शुक्ला ८ को जैन-दिवाकर जी गोगुन्दे (बड़ोगाँव) पधारे। राज्य-स्थान की ओर से जितने दिन वहां मुनि श्री विराजे, उतने दिन तक अगता पला। रज्य-स्थान की ओर से माँ साहिबा श्री रणावत जी की सम्मति ले कर श्रीमान् पन्नालाल जी मोहले मुन्सरिम साहिब एवं अन्य राज्य-कर्मचारियों ने एक

आदर्श उपकार

श्रीमान् राजराणा यशवंत सिंह जी साहब
देलवाड़ा (मेवाड़)

कर दिया। वहां से मुनि श्री तरपाल पधारे। वहाँ जैन-दिवाकर जी के उपदेश से ठाकुर साहब मगसिंह जी और जालम सिंह जी आकाश में चलने वाले जानवर एवं घास खाने वाले जानवरों को नहीं मारने के व चैत्र शुक्ला १३ पौष कृष्ण १० के दिन जीव-हिंसा नहीं करने के त्याग किये। इसी तरह चैती दशहरे पर प्रति वर्ष बकरा मारा जाता था, उसे नहीं मारने की प्रतिज्ञा की।

मारवाड़ में विहार

सम्वत् १६८३ में विहार करते हुए मुनि श्री मालणपुर पधारे। वहाँ आपका प्रभावशाली उपदेश हुआ। फलस्वरूप ठाकुर साहब श्रीमान् पृथ्वीसिंह जी ने प्रत्येक ग्यारस, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन शिकार नहीं करने की प्रतिज्ञा ली। जब मुनि श्री ने वहाँ से विहार किया तब स्वयं ठाकुर साहब छे मील तक पैदल पहुँचाने को आये। वहाँ से विहार कर मुनि श्री सादड़ी (मारवाड़) पधारे। वहाँ वरकाणा के ठाकुर साहब श्रीमान् हमीर सिंह जी, मोखमपुर के ठाकुर साहब श्रीमान् चन्दन सिंह जी, मोखाड़े के कुमार साहब श्री सरदार सिंह जी, फ़तेहपुर के ठाकुर साहब श्रीमान् कल्याण सिंह जी आदि ने मुनि श्री का उपदेश श्रवण किया। वरकाणा के ठाकुर साहब ने इन बातों की प्रतिज्ञा की कि वरकाणा में पार्श्वनाथ - जयन्ती के निमित्त होने वाले मेले के अवसर पर न तो स्वयं शिकार करूँगा और न किसी और को करने दूँगा। प्रत्येक वर्ष पाँच बकरों को

अभयदान दूँगा, दोनों ग्यारस, पूर्णिमा, अमावस्या और सोमवार को शिकार न खेलूँगा एवं इन दिनों मांस-भक्षण नहीं करूँगा। इसी तरह श्री सरदार सिंह जी और श्री कल्याण सिंह जी ने भी क्रमशः दो और एक बकरे को अभयदान देने की प्रतिज्ञा की। दोनों ने यह भी प्रण किया कि ऊपर लिखी हुई तिथियों पर शिकार और मांस-भक्षण न करेंगे। ऐसी ही प्रतिज्ञा फ़तेहपुर के ठाकुर साहब ने भी की।

वहाँ से विहार कर मुनि श्री वाली पधार रहे थे। रास्ते में कोटड़ी के ठाकुर साहब मिल गये। उन्होंने मुनि श्री से प्रार्थना की कि हमारे गाँव में पधार कर मुझे और मेरी प्रजा को उपदेश देकर कृतार्थ करें। मुनि श्री ने उत्तर दिया कि लौटती बार देखा जायगा। बाली में ठाकुर साहब पर मुनि श्री के सारगर्भित उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने जीवन-पर्यन्त ग्यारस, अमावस्या और सोमवार को शिकार नहीं करने और प्रत्येक महीने में दो बकरों को अभयदान देने की प्रतिज्ञा की। यहाँ से मुनि श्री कोट पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब श्रीमान् धोकल सिंह जी और कोटड़ी के ठाकुर साहब श्रीमान् फत्तेसिंह जी ने निम्न लिखित प्रतिज्ञाएँ कीं—

पर-स्त्री-गमन का त्याग। प्रत्येक वर्ष दो बकरों को अभय-दान देना। हर साल वैशाख और भादौं मास में शिकार न करना। चैत्र सुदी १३ और पौष वदी १० के रोज़ शिकार वग़ैरह नहीं करना।

मेवाड़ में विहार

वहाँ से विहार कर मुनि श्री देलवाड़े पधारे। वहाँ झाला की मदार वाले ठाकुर साहब श्रीमान् जयसिंह जी ने तीतर, जलकुकड़ी, मृग और मछलियों का शिकार नहीं करने की प्रतिज्ञा की। यहाँ के राजराणा श्रीमान् यशवन्तसिंह जी उदयपुर के महाराणा साहब के सोलह उमरावों में से हैं। उन्होंने मुनि श्री का उपदेश श्रवण किया। अपने हाथों से लौंग, मिश्री आदि वहराकर राजराणा साहब ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। भेंट स्वरूप उन्होंने जीवदया विषयक पट्टा कर दिया। वहां से मुनि श्री पलाणे पधारे। वहां भारोंड़ी के ठाकुर साहब श्रीमान् अमर सिंह जी और यशवन्त सिंह जी ने मुनि श्री का उपदेश श्रवण कर जीवन पर्यन्त जीव-हिंसा नहीं करने तथा मांस-मदिरा का सेवन न करने की प्रतिज्ञा की। वहां से विहार कर मुनि श्री फरिचड़े पधारे। वहां के ठाकुर साहब उदयपुर नरेश के ३२ उमरावों में से हैं। उन्होंने मुनि श्री का उपदेश सुना और प्रतिज्ञा की कि प्रत्येक मास की ग्यारस, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन अगता पलाया जायगा। इन दिनों शिकार भी नहीं खेला जायगा। नव रात्रि में दूज के रोज़ किसी को नहीं मारना होगा। पौष वदी १० और चैत्र सुदी १३ के दिन हमेशा के लिए अगता पलाया जायगा और इसी तरह जन्माष्टमी, रामनवमी तथा शिवरात्रि को भी अगते रखे जायेंगे।

मुनि श्री नाथद्वारे विहार कर कोठारिए पधारे वहाँ के रावत जी साहब श्रीमान् मानसिंह जी ने शाम के वक्त मुनि श्री के दर्शनों का लाभ लिया। मुनि श्री के दो व्याख्यान सुन कर तीसरा व्याख्यान उन्होंने महलों में कराया ताकि राजमहिलाएँ उपदेश श्रवण कर लाभ ले सकें। उपदेश सुनने के पश्चात् रावत जी साहब ने भेंट स्वरूप में निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ कीं:--

मुनि श्री के यहाँ पधारने तथा यहाँ से विहार करने के दिन अगते पलाये जायेंगे। पहले जितने दिन अगते के मुक़र्रर किये गये हैं उतने दिन शिकार नहीं करूँगा और मांस-भक्षण में नहीं आवेगा। जीवन-पर्यन्त पर-स्त्री-गमन नहीं करना होगा। जीवन-पर्यन्त मदिरा-पान नहीं करना होगा।

जब मुनि श्री ने यहाँ से विहार किया तब स्वयं रावत जी साहब पहुँचाने को आये थे। मोखण के ठाकुर अर्जुन सिंह जी ने जीव-हिंसा नहीं करने की प्रतिज्ञा की। वहां से विहार कर मुनि श्री मोही पधारे। जितने दिन मुनि श्री ने यहां निवास किया उतने दिन ही यहां के ठाकुर साहब श्री दीपसिंह जी ने रोज़ अगते पलवाये और व्याख्यान श्रवण के बाद जीव-दया विषयक पट्टा लिख दिया।

यहां से विहार कर मुनि श्री लासाणी पधारे। वहां ठाकुर साहब के बाग़ में विराजे। ठाकुर साहब श्री खुमान सिंह जी ने उपदेश श्रवण किया। आप मुनि श्री की सेवा में दिन में दो बार पधारते थे। उनके स्वनाम धन्य युवराज तथा छोटे

कुमार साहब ने भी उपदेश सुनने का लाभ लिया। ठाकुर साहब की ओर से जीव-दया-विषयक पट्टा भी प्राप्त हुआ है। मुनि श्री के प्रति यहां के ठाकुर साहब की अनन्य भक्ति है। जैन-दिवाकर जी ने जब यहां से विहार किया तब ठाकुर साहब नंगे पांव पैदल पहुँचाने आये थे।

वहां से मुनि श्री ताल पधारे। यहां के ठाकुर साहब ने अपनी बारादरी में ही मुनि श्री का निवास कराया। व्याख्यान में ताल ठाकुर साहब और उनके कुमार साहब ने उपदेश सुनने का लाभ लिया। ठाकुर साहब उदयपुर महाराणा के ३२ उमरावों में से हैं। संध्या को लासाणी के ठाकुर साहब जैन-दिवाकर जी के दर्शन करने और उपदेश श्रवण करने के लिए ताल पधारे। रात वहीं ठहर गये। लासाणी ठाकुर साहब, ताल ठाकुर साहब तथा प्रजा ने एक साथ दूसरे दिन के व्याख्यान का लाभ लिया। दुपहर का व्याख्यान श्रवण कर लासाणी ठाकुर साहब जाने लगे तो मांगलिक श्रवण कर बोले कि-आपके दर्शनों से तृप्ति नहीं होती। तीसरे रोज़ जब जैन-दिवाकर जी ने वहां से विहार किया तब ताल ठाकुर साहब ढाई कोस तक पहुँचाने आये थे। लासाणी ठाकुर साहब भी पधारे थे। दोनों ठाकुर साहबों का धर्म-प्रेम सराहनीय है। ताल ठाकुर साहब ने भी जीव-दया विषयक एक पट्टा दिया।

संवत् १९८४ में जैन-दिवाकर जी का जोधपुर चातुर्मास हुआ था। वहां भादों सुदी ६ के दिन राठोर-वंशावतंस जोधपुर

नरेश हिज़ हाइनेस महाराजा सर उम्मेदसिंह जी साहब बहादुर के दादा साहब श्रीमान् महाराजा फ़तेह सिंह जी के० सी० आई० ई०, होम मेम्बर स्टेट काउन्सिल, मुनि श्री के दर्शन के लिए पधारे थे। पौन घण्टे तक बैठ कर उन्होंने जैन-दिवाकर जी से प्रश्न पूछा था। उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर जैन-दिवाकर जी की ओर से समुचित और समयोचित मिलने पर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की थी। कहा था कि फिर भी दर्शन-लाभ लूँगा।

स्टेट भर में जीव-हिंसा बन्द

जोधपुर-नरेश ने भादों सुदी ४-५ को सदैव स्टेट भर में अगते पलवाने का हुक्म जारी कर दिया था।

भादों सुदी ७ को ठाकुर शिवनाथ सिंह जी साहब ने मुनि श्री का उपदेश श्रवण किया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि श्रावण और भादों मास में शिकार नहीं करूँगा। इसी प्रकार पाटोदी के ठाकुर साहब ने भी प्रतिज्ञा की कि मैं अपने जीवन में ऐसे प्राणियों की हिंसा कभी न करूँगा, जो बिलकुल निरपराध हैं। और द्रव में भी शिकार नहीं करूँगा।

संवत १९८५ में जैन-दिवाकर जी बदनौर पधारें। वहाँ के ठाकुर साहब भूपाल सिंह जी उदयपुर के महाराणा के १६ उमरावों में से हैं। उनको उदयपुर में जैन-दिवाकर जी महाराज का उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, तभी तो उनकी यह भावना रहा करती थी कि जैन-दिवाकर जी कभी बदनौर पधारें, तो मैं और मेरी

प्रजा मुनि के उपदेशामृत का पान करे। अपनी हार्दिक भावना आज अचानक पूरी होती हुई देख कर ठाकुर साहब के हर्ष का पारावार न रहा। जैन-दिवाकर जी के तीन व्याख्यान सुन कर उन्होंने जीव-दया विषयक एक पट्टा भेंट किया।

वहां से जैन-दिवाकर जी केरिए पधारे। वहां के महाराज श्री गुलाबसिंह जी स्वागत के लिए बहुत दूर तक आये थे। मुनि श्री के वहां सात व्याख्यान हुए। उन्होंने भी जीव-दया का पट्टा भेंट किया। वहां से विहार कर मुनि श्री निम्बाहेड़ा पधारे। केरिया के महाराज बहुत दूर तक पहुँचाने आये थे। निम्बाहेड़ा में वहां के ठाकुर साहब ने भरपूर स्वागत किया। वहां जैन-दिवाकर जी के ४ भाषण हुए। भाषण सुनने के लिए केरिया-महाराज भी पधारते थे। निम्बाहेड़ा के ठाकुर साहब ने उपदेश श्रवण कर अभयदान का पट्टा भेंट किया। जब वहां से जैन-दिवाकर जी महाराज ने विहार किया तब वहां के ठाकुर साहब तथा केरिया के महाराज दोनों पहुँचाने आये थे।

वहां से मुनि श्री भगवानपुर पधारे। वहां के रावत साहब श्री सुजानसिंह जी उदयपुर-नरेश के ३२ उमरावों में से हैं। उनका और उनके राजकुमार साहब का अत्याग्रह था। वहां जैन-दिवाकर जी के छे भाषण हुए। श्री० रावत जी साहब, राजकुमार साहब तथा रनिवास की सभी महिलाओं को मुनि श्री के सदुपदेशों को सुनने का अच्छा अवसर मिला। भेंट-स्वरूप में, राज्यस्थान की ओर से, अभयदान का पट्टा प्राप्त हुआ।

रनिवास की महिलाओं ने भी प्रतिज्ञा की कि पत्ती और हिरण का मांस न खायेंगी।

वहां से विहार कर जैन-दिवाकर जी माण्डल पधारे। यहां कामदार साहब ने आकर मुनि श्री से कहा कि मेजा रावत जी साहब ने आपके दर्शन की अभिलाषा प्रकट की है। इसलिये आप मेजा पधारें। आज यदि चतुर्दशी का व्रत न होता तो स्वयं रावत जी साहब आपकी अगवानी के लिये पधारते। इस प्रकार का आग्रह देख कर जैन-दिवाकर जी मेजा पधारे। स्वयं रावत जी साहब ने मुनि श्री से कहा कि आपका व्याख्यान यदि पहले में हो तो ठीक है, क्योंकि इस तरीक़े से अन्तःपुर की महिलाएँ भी उपदेश सुन सकेंगी। मुनि श्री ने महलों में व्याख्यान दिया और उस व्याख्यान की समाप्ति पर रावत जी साहब मुनि श्री के निवासस्थान तक पहुँचाने आये। शाम को मुनि श्री ने अपने ठहरने के स्थान पर ही व्याख्यान दिया। रावत जी साहब भी सुनने को पधारे थे। दूसरे दिन का व्याख्यान फिर महलों में ही हुआ। उपदेश श्रवण कर रावत जी साहब का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। उन्होंने भी जीव-दया का पट्टा भेंट किया।

जैन-दिवाकार जी ने वहां से पुर की तरफ़ विहार किया। रावत जी साहब बहुत दूर तक पहुँचाने आये थे। मांगलिक सुन कर रावत जी साहब राज्यस्थान की ओर लौटे। उन्होंने उस समय अपने भृत्यों को आदेश दिया कि चार गाड़ी घास,

श्रीमान् स्वर्गीय महाराजा साहब भूपालसिंह जी
भिण्डर (मेवाड़)

गायों के लिए डाल दो।

वहाँ से विहार कर जैन-दिवाकर जी खेरावाद पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब श्रीमान् बाघसिंह जी ने मुनि श्री का सदुपदेश श्रवण किया और मुनि श्री को जीवदया का पट्टा भेंट किया। वहाँ से विहार कर मुनि श्री हमीरगढ़ पधारे। वहाँ के रावत जी साहब श्रीमान् मदन सिंह जी महाराणा उदयपुर के बत्तीस उमरावों में से हैं। उन्होंने रुचि के साथ व्याख्यान श्रवण किया और मुनि श्री के लिए बहुत भक्तिभाव प्रदर्शित किया। एक जीव-दया का पट्टा भी भेंट किया।

वहाँ से विहार कर जैन-दिवाकर जी पुठोली पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब ने सदुपदेश श्रवण किया और उनके हृदय में त्याग-भावना जाग्रत हुई। वहाँ से विहार कर मुनि श्री चित्तौड़ होते हुए ओच्छड़ी पधारे। वहां घटियावली के ठाकुर साहब श्री० शम्भुसिंह जी, रोलाहेड़ा के ठाकुर साहब श्री० सज्जनसिंह जी, पुठौली के ठाकुर साहब श्री० प्रतापसिंह जो और ओच्छड़ी के ठाकुर साहब श्री० भूपालसिंह जी—चारों एक साथ थे। चारों को एक स्थल पर ही जैन-दिवाकर जी के शुभ-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुठौली के ठाकुर साहब तो गद्गद् होकर यहां तक बोले कि—यदि आप आज यहां नहीं पधारते तो आप जहां होते वहीं हम आ पहुँचते। अपनी मनोकामना सिद्ध होते देख आज हमें बड़ा आनन्द हो रहा है। उन्होंने जीव-हिंसा के सम्बन्ध में प्रतिज्ञा ली कि महावीर-जयन्ती, पार्श्वनाथ - जयन्ती और पुठौली में जैन-दिवाकर जी. के आने-जाने के दिन पुठौली भर में

जीव-हिंसा नहीं होगी। पुठोली की सीमा में जो नदी है उस में कोई भी, कभी भी, मछलियां न मार सके—इसके लिए नदी-किनारे मुनि श्री ने एक शिलालेख गड़वाने का मौलिक विचार प्रकट किया। घटियावली के ठाकुर साहब युवाचार्य पण्डित मुनि श्री छगनलाल जी महाराज और जैन-दिवाकर जी महाराज के सदुपदेशों से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने एक शिलालेख गड़वाया कि तालाब में कोई व्यक्ति किसी भी जीव को नहीं मारेगा। उन्होंने इसकी भी व्यवस्था कर दी कि विजयादशमी के दिन एक पाड़े के सिवाय और किसी जानवर का बध नहीं होगा, महावीर-जयन्ती, पार्श्वनाथ जयन्ती और जैन-दिवाकर जी के घटियावली आने-जाने के दिन जीव-दया अवश्य करनी होगी। रोलाहेडा के ठाकुर साहब ने इस बात की प्रतिज्ञा की कि वैशाख, श्रावण, भादों और कार्तिक चार मास शिकार नहीं करूँगा। उन्होंने भी इसकी व्यवस्था कर दी कि महावीर-जयन्ती पार्श्वनाथ-जयन्ती और जैन-दिवाकर जी महाराज के रोलाहेडा में आने-जाने के दिन जीव-हिंसा बन्द रहेगी। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने यह भी बतलाया कि मैंने चार साल से दारू पीना छोड़ दिया है। ओच्छड़ी के ठाकुर साहब ने इस बात की प्रतिज्ञा की कि प्रत्येक अमावस्या, महावीर - जयन्ती और पार्श्वनाथ-जयन्ती के दिन जीव-हिंसा नहीं करूँगा।

मालव देश में पदार्पण

वहां से विहार कर जैन-दिवाकर जी नामली पधारे।

वहां के ठाकुर साहब तथा उनके राजकुमार श्री राजेन्द्र सिंह जी ने मुनि श्री की अच्छी आवभगत की और व्याख्यान श्रवण कर वहुत प्रसन्न हुए। वहां से चलकर जैन-दिवाकर जी पूज्य श्री मन्नालाल जी महाराज की सेवा में रतलाम पधारे। वहां भंदेसर रावत जी साहब श्रीमान् तखतसिंह जी मुनि श्री के दर्शनों के लिए पधारे थे। उनके साथ में और भी कई सरदार थे। रावत जी साहब महाराणा उदयपुर के बत्तीस उमरावों में से हैं। बोहिड़ा के रावत जी साहब भी महाराणा उदयपुर के बत्तीस उमरावों में से हैं। उनके राजकुमार श्रीमान नारायणसिंह जी साहब वहां रतलाम नरेश के अतिथि होकर पधारे हुए थे। उनको पता चला कि जैन-दिवाकर जी महाराज इन दिनों रतलाम में ही विराजमान हैं। उन्होंने रतलाम-नरेश से कहा कि आपने तो जैन-दिवाकर जी महाराज का व्याख्यान सुना ही होगा ? उत्तर में रतलाम नरेश ने कहा कि अभी तो नहीं सुना, परन्तु छे-सात साल पहले जब उनका चातुर्मास यहां हुआ था तब सुना था। फिर रावत जी साहब ने रतलाम-नरेश से जैन-दिवाकर जी महाराज के ओजपूर्ण व्याख्यानों की बड़ी प्रशंसा की। उसी समय वे जैन-दिवाकर जी के निवास-स्थान पर मुनिश्री से मिलने भी आए। बड़ी देर तक संलाप करते रहे। व्याख्यान सुनने का लाभ उन्होंने दूसरे दिन लिया।

रतलाम का चातुर्मास पूर्ण कर जैन-दिवाकर जी महाराज पिपलूटे पधारे। वहां के ठाकुर साहब ने व्याख्यान श्रवण कर

जीव-दया का पट्टा भेंट किया । फिर वहां से दूसरे गांव जाने की तैयारी हो रही थी । इसी बीच उमरण की रानी साहिबा ने सूचना भिजवाई कि जैन-दिवाकर जी महाराज के व्याख्यान सुनने की मेरी उत्कट मनोकामना है । जैन-दिवाकर जी महाराज उमरण पधारे । एक व्याख्यान दिया । व्याख्यान के पश्चात् मुनि श्री से विनती की गई कि अभी ठाकुर साहब यहां नहीं हैं, सैलाना गये हुए हैं । उनके यहां आने पर चैत्र सुदी ३१ और पौष वदी १० के दिन जीव-दया पालने का हुक्म जारी करवा दिया जायगा ।

वहां से विहार कर मुनि श्री मुलथान पधारे । वहां के राजासाहब की बहुत दिनों से इच्छा थी कि जैन-दिवाकर जी महाराज का व्याख्यान सुनूँ । परन्तु, मार्ग में बहुत दिन लग जाने के कारण मुनि श्री कुछ विलम्ब से मुलथान पहुँचे । तब तक राजा साहब निश्चित तिथि पर तीर्थयात्रा को निकल पड़े थे ।

धारा-नरेश

संवत् १६८५ में जैन-दिवाकर जी धार स्टेट (मालवे) में पधारे । वहां के हिज़हाईनेस महाराजाधिराज श्रीमान् ने मुनि श्री के विहार के दिन शहर भर में अगता पलवाया । वहां हिज़हाईनेस दि महाराजाधिराज श्रीमान् सर मल्हाराव बाबा, के. सी. एस. आई. देवास (२) ने अपने कार-भारी साहब को जैन-दिवाकर जी के पास भेज कर निवेदन

कराया-कि आप देवास अभी अवश्य पधारें। उत्तर में मुनि श्री ने कहलाया कि गर्मी के दिन निकट आने वाले हैं और हमें दक्षिण जाने को है, इस लिए अभी आना हमारा वहां मुश्किल है। राजासाहिब को हमारी ओर से धर्म-ध्यान कह देवें।

किशनगढ़-नरेश

संवत् १९९० में जैन-दिवाकर जी किशनगढ़ (अजमेर) पधारे। वहां के हिजहाईनेस दि महाराजाधिराज श्रीमान् यज्ञ नारायणसिंह जी साहब ने मुनि श्री का उपदेश श्रवण किया। नरेश का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। भेंट स्वरूप में वैशाख वदी ११ और चैत्र सुदी १३ का अगता सदैव स्टेट भर में पलवाने का अभिवचन दिया।

बदनोर के ठाकुर साहब

संवत् १९९० में जैन-दिवाकर जी बदनोर पधारे। यहां पर सरकारी स्कूल में आपके तीन व्याख्यान होने पर धर्म-प्रेमी श्रीमान् ठाकुर श्री गोपालसिंह जी साहब ने जो कि उदयपुर महाराणा जी साहब के सोलह उमरावों में के उमराव हैं कहलवाया कि—"मुझे आपके व्याख्यान सुनना हैं, अतः आप शीघ्रता न करें।" ठाकुर साहब की इस प्रकार की सूचना देरी से देने का कारण यही था कि मेरी जनता को मुनि श्री के विशेष व्याख्यान सुनने का अवसर प्राप्त होगा। यदि मैं शीघ्र व्याख्यान सुन लूँ

तो फिर मुनि श्री यहाँ अधिक नहीं ठहरेंगे। इसी लिए ठाकुर साहब ने तीन व्याख्यान हो चुकने के बाद अपनी इच्छा प्रदर्शित की। अतः चौथा व्याख्यान भी उसी स्कूल में हुआ और ठाकुर साहब भी उपदेश सुनने के लिये पधारे। मुनि श्री ने मंगलाचरण के पश्चात् निम्न प्रकार व्याख्यान देना प्रारम्भ किया।

जणवय सम्मत्तट्ठवणा य, नामे रुवे पडुच्च सच्चे य।
ववहार भावे जोगे, दसमे ओवम सच्चे य॥

—प्रज्ञापन्ना भाषापद।

ठाकुर साहब! और बन्धुओ! इस कहे हुए श्लोक में भगवान् महावीर ने सत्यभाषा के सम्बन्ध में कहा है और सत्य भाषा का संबंध मनुष्य-जन्म के साथ है। सत्य या असत्य इस प्रकार का विचार करने की बुद्धि भी मनुष्य ही से सम्बन्ध रखती है। बुद्धि से मनुष्य अपना भला-बुरा विचार सकता है। किसी कवि ने कहा है:—

"बुद्धिफलं तत्व विचारणंच"

जब मनुष्य को बुद्धि मिली है तो इससे विचार करना चाहिये कि हम पशु से नीचे तो नहीं गिर गये हैं? इस में सन्देह नहीं, क्योंकि आज पशु भी इतने बलवान हैं कि उन्हें कभी चूर्ण की फंकी लेने तक का काम नहीं और न उन्हें कभी दांत साफ़ करने का मौक़ा ही आता है। उन में हिताहित की बुद्धि नहीं किन्तु फिर भी उन में कई बातें ऐसी पाई जाती हैं कि जिससे वे प्रायः तन्दुरुस्त रहते हैं। उनमें सर्वप्रथम गुण तो

यह पाया जाता है कि वे मनुष्यों की अपेक्षा ब्रह्मचर्य-व्रत का विशेष पालन करते हैं। यहां तक कि उन के बच्चे जब तक दूध पीना नहीं छोड़ते तबतक वे विषय-सेवन की ओर घूमते तक नहीं। यही कारण है कि पशु प्रायः नीरोग और बलवान् रहते हैं। अब जरा मनुष्य की ओर दृष्टिपात कीजिये, कभी पेट दुख रहा है तो कभी सर-दर्द और बुखार है। प्रायः सदैव आधि-व्याधियों से ग्रस्त रहते हैं। इसका एक मात्र कारण ब्रह्मचर्य का अभाव है। विलास को एक प्रकार का यंत्र (मशीन समझ लिया है। फलस्वरूप दुबली पतली सन्तानें हो रही हैं। पहले भारतवर्ष में विलास को यंत्र - स्वरूप नहीं समझते थे और न बाल-विवाह ही होते थे। आज भी विलायतों (विदेशों) में बालक बालिकायें २५-३० वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करती हैं। अर्थात् पच्चीस-पच्चीस और तीस-तीस वर्षों तक उनका विवाह नहीं किया जाता है। अतः उनकी उम्र भी बड़ी होती है। पशुओं में विवेक न होने के कारण उनको विवेकविकला कहा है। उन्हें इसका भान नहीं है कि यह मेरी मां है या बहिन। न तो वे रात-दिन का ख़याल रखते हैं और न उन्हें किसी मनुष्य के खड़े रहने का कोई भान है। एक बार बादशाह और बेगम बैठे हुए थे। उस समय उनके सामने ही एक बकरा बकरी के साथ कुचेष्टा करते हुए दिखाई दिया। बेगम ने यह दृश्य देख कर बादशाह से कहा हुजूर! यह अपनी भी शर्म नहीं रखते हैं? बादशाह ने उत्तर दिया कि 'यही तो बात है कि इन में विवेक नहीं है और

मनुष्य में विवेक है' । अब कहिये जो विवेक से विकल हैं वे पशु भी ब्रह्मचर्य-पालन के सम्बन्ध में मनुष्य से बढ़ कर हैं तभी उनकी तन्दुरुस्ती है। तो क्या मनुष्य को बुद्धिमान् और विवेकी कहलाते हुए पशुओं से भी गया-बीता बन कर मनुष्य-पद को कलंकित करना उचित है ? नहीं - नहीं, जब मनुष्य को बुद्धि मिली है तो उससे विचार करना चाहिये । बुद्धि पाने का सार भी यही है कि हम मनुष्य होकर पशुओं से गये-बीते न बनें। बुद्धि के द्वारा विचार करना चाहिए कि आत्मा क्या है ? और परमात्मा क्या है ? हित और अहित क्या है ? इस लोक और परलोक में आत्मा को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? आदि विषयों पर विचार करना चाहिए न कि इस बुद्धि द्वारा किसी को फँसाने व धोखेबाजी करने का प्रयत्न करना चाहिए। जो मनुष्य अपनी बुद्धि के द्वारा अपना और दूसरों का हित-साधन करता है वह मरजाने पर भी अमर रहता है। उसका यश क़ायम रहता है। किसी कवि ने कहा है।

यश जीवन अपयश मरण, भूल करो मत कोय।
कहा रावण कहा ले गयो, कहा कर्ण गयो खोय ॥

देखिये ठाकुर साहब ! आपके पूर्वज जयमल जी मारवाड़ में मेड़ता के जागीरदार थे । वे और आमेट के जागीरदार फत्ताजी ये दोनों महाराणाजी साहब की ओर से चितौड़गढ़ पर युद्ध करने के लिये जा रहे थे । रास्ते में पांच सौ चोर मिले और उन्होंने इन दोनों के शस्त्रों को छीनना चाहा।

राव जी साहब के भ्राता श्रीमान् दौलतसिंह जी साहब

कुन्हाडी (कोटा)

तब उन दोनों जागीरदारों में से एक ने कहा कि–"इत यद्वा उत ?" प्रत्युत्तर में दूसरे जागीरदार साहब ने कहा कि "इत नहीं उत" बस यह सुनते ही जयमलजी और फत्ता जी ने व साथवाले सभी योद्धाओं ने शस्त्र जमीन पर रख दिये। तब चोरों के सरदार ने सोचा कि यह सब योद्धा और वीरवर कहलाते हैं और इन्होंने परस्पर इत उत कहकर सब शस्त्र पटक दिये इसकी वजह क्या है ? ये क्षत्रिय जीते-जी ऐसा कभी नहीं कर सकते। अतः चट से उन चोरों के सरदार ने जयमलजी एवं फत्ता जी से पूछा कि—आप इत उत का अर्थ समझा दीजिये और हम कुछ नहीं लेना चाहते और न पूछना ही चाहते हैं। तब दोनों जागीरदारों में से एक बोले कि "इत, यहीं" मरना चोरों के साथ या उत, राणा जी के कार्य के लिये वहां लड़ाई के मोरचे पर मरना। तब उत्तर में कहा गया कि इत नहीं अर्थात् यहां मरने में चोरों के हाथ मारे गये, ऐसा नाम होगा, इसलिए उत अर्थात वहां चित्तौड़गढ़ लड़ाई में मरना श्रेष्ठ है। तब हमने सब शस्त्र भूमि पर पटक दिये। यह सुन चोरों के मुखिया और चोरों ने कहा कि "हम भी योंही मर जायँगे।" अतएव नाम कमा कर मरना उत्तम है। ऐसा विचार करके सब के सब चोर उन जागीरदारों के साथ हो गये।

अब हम जनता से पूछते हैं कि इत यहीं खा-पी कर पशुओं की भांति मरना है या उत परलोक के लिये कुछ करके मरना है ? मरना सब को जरूर है। पर एक तो भलाई करके

मरना और एक बुराइयों का पोट सिर धर कर मरना है। मनुष्य को बुद्धि मिली, बल मिला, यदि फिर भी धर्म की ओर न मुड़े और धर्म की रक्षा न करे तो वह मरना किस गिनती में है।

एक वार हम एक छोटे जागीरदार के रावले में उतरे हुए थे। प्रसंगवश बात होने से हमने मां साहब से कहा कि—अब कितना अमन-चैन का समय है। कहीं भी परस्पर लड़ाई नहीं होती है। अगले जमाने में एक जागीरदार दूसरे से और दूसरा तीसरे से इस तरह सब परस्पर लड़ाई-झगड़ा किया करते थे। रात दिन इधर के उधर और उधर के इधर दौड़-धूप मचा करती थी। और आजकल जागीरदार अपनी जागीर में आनन्द करते हैं। मारकाट, दौड़ धूप एवं अशान्ति का कोई काम नहीं है। मेरे इतने कहने की देरी थी कि मां साहब बोलीं—महाराज! आप यह क्या कह रहे हो!! हम क्षत्रियों का मरना धर्म की रक्षा के हेतु है, युद्ध के मुँह पर मरना ही क्षत्रियत्व है। आजकल का मरना पशुओं-कुत्तों के समान है! इस प्रकार के वीरतापूर्ण वचन उस वीरबाला के मुख से सुनते ही समझ लिया गया कि अब भी वीरता का रक्त नष्ट नहीं हुआ है। जिस प्रकार वसुन्धरा में वनस्पति के अंकुर प्रकट होने की सत्ता नष्ट नहीं हुई है, किन्तु मौजूद है, इसी प्रकार क्षत्रिय वीर-बालाओं में वीरता का रक्त प्रवाहित हो रहा है।

ठाकुरसाहब! जब हम महाराणा प्रताप का इतिहास

देखते हैं तो ज्ञात होता है कि महाराणा प्रताप ने धर्म की रक्षा के लिये दो दिन भी आराम से नहीं बिताये हैं। एक साधारण व्यक्ति पर भी ऐसी विपत्ति नहीं आती है जो महाराणा होकर उन पर आई।

अपने धरम के वास्ते, राणाप्रतापसिंह ।
बनवाके रोटी घास की, खाते थे एक दिन ।
दुनिया में कैसे वीर थे, मौजूद एक दिन ॥

अतएव बन्धुओ! सत्ता-बल, बुद्धि-बल, मनुष्य-जन्म एवं उच्चकुल मिला है, तो धर्म की रक्षा करके मरो। योंही पशुओं के समान मत मरो। यह मत समझो कि शरीर के नष्ट होने पर आत्मा का भी नाश हो जायगा। नहीं, आत्मा तो सदैव अमर है। यह आत्मा इस शरीर में रहते हुए जैसे कृत्य करेगा वैसे ही उसके फल दूसरे शरीर में जाकर भोगेगा। हाँ, आत्मा के साथ शरीर का संयोग होता है। जैसे गीता में कहा है:—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय; नवानि ग्रहणाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

अर्थात्—जिस प्रकार मनुष्य वस्त्र पुराने होने पर उन्हें छोड़ कर दूसरे नवीन वस्त्र धारण करते हैं, उसी प्रकार आत्मा भी आयु से पूरा—जीर्ण होने पर उसे छोड़ दूसरा शरीर आश्रय जैसा कृत्य किया उसके अनुसार धारण करता है। हां, यह अवश्य है कि जैसा कमी-बेशी पैसा खर्च करेगा, वैसा ही वस्त्र मिलेगा। इसी प्रकार जिस आत्मा के पास धर्म-संग्रह रूप पैसा

जितना चाहिए उतना नहीं है तो उसे कीड़े मकोड़े का शरीररूप वस्त्र धारण करने को मिलेगा। और जिस आत्मा के पास धर्म-संग्रह रूप पैसे विशेष हैं तो वह आत्मा देवों का दिव्य शरीर रूप वस्त्र धारण कर क्रमशः आत्मिक ज्योति को प्राप्त हो सकता है। जब हम दूसरे का शरीर रूप घर छुड़ावेंगे तो अपने को सुखदायी स्थान कब मिलेगा? अपनी भावना दूसरे का भला करने की है तो अपना भला होगा और बुरी भावना से बुरा फल प्राप्त होगा। बड़े हो कर जो ग़रीबों को सताने में अपनी बुद्धि व्यय करते हैं, उन्हें इसका फल शीघ्र ही मिल जाता है क्योंकि ग़रीबों के आत्माओं की आहें बड़ी भयङ्कर होती हैं।

ठाकुर साहब! ईरान के बादशाह ने हिन्दुस्तान के राजाओं से पूछा था कि आप राज्य बहुत समय तक करते हैं और हमारी पीढ़ियाँ शीघ्र ही ख़त्म हो जाती हैं इसका क्या कारण है? बादशाह ने दूतों से यह भी कह दिया था कि जब तक इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त न हो तब तक तुम लोग वहीं ठहरना और उत्तर लेकर लौटना। वे दूत ईरान से चल कर हिन्दुस्तान में आये और राजा से पूछा कि "ईरान के बादशाहों की उम्र थोड़ी होती है और आप राजाओं की विशेष होती है। इसका क्या तात्पर्य है?" राजा ने सुनकर कहा—ठीक है। उत्तर देंगे। यों दो दिन, चार दिन, आठ दिन, होगये। किंतु उत्तर नहीं मिला। तब एक दिन ईरान के दूतों ने राजा से कहा कि—कृपा कर आप यह तो बताइये कि आप उत्तर कब तक देंगे?

राजा ने कहा—जिस वट वृक्ष के तले तुम्हारा उतारा है, उस वृक्ष के सूखने पर उत्तर दिया जायगा। यह सुन कर ईरानी दूत-दल में सन्नाटा छा गया। सबों ने निराश होकर मन ही मन में कहा अरे! यह वट वृक्ष कब सूखे? और अपने को कब उत्तर मिले? यों नित्यप्रति उन सब लोगों की भावना हो गई और रात-दिन उस पहाड़ जैसे विशाल-काय वट-वृक्ष के सूखने की चिंता करने लगे और इस प्रकार सदैव वे सब आह की दाह लगाने लगे। अतः उनकी इन भयङ्कर आहों के कारण वह विशाल वट-वृक्ष कुछ ही दिनों में चट-पट सूख गया। तब ईरानी दूतों ने जाकर राजा से कहा कि वह दरख़्त सूख गया है। उत्तर में राजा ने कहा—तुम्हारा बादशाह ग़रीबों को विशेष सताता होगा। तब वे ग़रीब आहें भरते होंगे। अतः उन ग़रीबों की हाय से ही ऐसा होता होगा। क्योंकि तुलसीदास जी ने भी कहा है कि—

तुलसी आह गरीब की, कबहुँ न निष्फल जाय।
मुए ढोर की खाल से, लोह भस्म हो जाय॥

ईरानी दूत-दल ने अपने देश में पहुँच कर बादशाह को ज्यों का त्यों उत्तर सुना दिया। बादशाह ने सुन कर कहा सच है, ग़रीब दीन-हीन प्रजा जब बादशाह से असंतुष्ट रहा करती है तो उसकी गर्म आहों से बुरा हो जाता है। पीढ़ियां जल्दी-जल्दी ही ख़त्म होजाती हैं। यह दृष्टान्त है इसका दार्ष्टान्तिक यही समझ लीजिये कि ग़रीबों को सताने पर उनकी आहों से बुरा हो जाता है। ग़रीबों के पास केवल आहों के अतिरिक्त और कोई

शस्त्रादि नहीं हैं। उन सबों की आहों के संमिश्रण से ही तो ग़रीबों को सताने वालों का अहित हो जाता है। बुरी भवानाएँ कभी सुख नहीं देती हैं। किसी ने कहा भी है कि—

ज़ुल्म की टहनी कभी फलती नहीं।
नाव काग़ज़ की कभी चलती नहीं ॥

एक बार फिर हम चेता देते हैं कि जब बुद्धि मिली है तो उत-परलोक का विचार करें और जो इस आत्मा को शरीर मिला है तो व्रत नियम प्रतिज्ञा धारण करें। क्योंकि ग्रंथकारों ने भी कहा है कि-"देहस्य सारं व्रत धारणंच" अर्थात् शरीर (देह) पाने का सार यही है कि व्रत नियम अङ्गीकार करना। श्री भगवती, प्रज्ञापन्ना, उत्तराध्ययन, गीता, भागवत, पुराण आदि शास्त्रों के वाक्य मनुष्यों के लिये ही कहे गये हैं न कि पशुओं के लिए। जब उन शास्त्रों के वाक्यों को मनुष्य ही पालन न करे तो फिर पशुओं और मनुष्यों में भेद ही क्या रहा? नीति में कहा है कि—

आहार निद्रा भय मैथुनंच, सामान्य मेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीना पशुभिः समानाः ॥

अर्थात्-मनुष्य आहार करता है तो पशु भी घास का आहार करता है। मनुष्य नींद लेता है तो पशु भी नींद लेता है। मनुष्य को भय होता है तो पशु भी भयभीत होते हैं। मनुष्य विलास भोगते हैं तो पशु भी इससे वंचित नहीं हैं। इन उक्त बातों से तो मनुष्य की गणना पशु से पृथक नहीं हो सकती है, किंतु

हाँ, मनुष्य में त्याग नियम धर्म की विशेषता है। परन्तु जिन मनुष्यों में त्याग नियम धर्म आदि का अभाव है। उन्हें चाहे आप आप मनुष्य कहें किंतु हैं वे पशुओं के तुल्य ही। अतएव जो मनुष्य होने का दावा रखते हैं उन्हें त्याग नियम धर्म आदि अवश्य ही धारण करना चाहिये। वह त्याग नियम क्या है ? विना अपराध किसी जीव को नहीं मारना। जब कोई तुम्हारे शरीर पर, धन पर, औरत पर, हमला करे तो उसका सामना कर उसे हटाने के लिये इस प्रकार के नियम धारण करने वालों को जैन-धर्म बाध्य नहीं कर सकता है। चन्द्रगुप्त मौर्य्य और अशोक आदि बहुत से राजा जैन-धर्म के अनुयायी थे+। वे धर्म-पालन के साथ ही साथ राज्य-कार्य भी करते और शत्रुओं का सामना कर उनको नेस्त-नाबूद भी करते थे। जो लोग इतिहास नहीं जानते वे कह देते हैं कि जो लोग जैन-धर्म धारण करते हैं वे बाद में कायर हो जाते हैं। यह बात उन की निरी थोथी है। देखिये! जैन के शास्त्रों और ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख है कि जैनी चक्रवर्ती राजा हुए और उन्होंने युद्ध किया। किंतु यह अवश्य स्मरण रहे कि उन्होंने बिना अपराध किसी को नहीं सताया था। किसी ने न खुद कोई अपराध किया और न उसे मारने की इच्छा है। पर बिना उद्योग के कोई जीव मर गया। जैसे देख कर चलने पर भी पाँव के नीचे चिउँटी दब कर मर गई तो वह पाप उतना

+देखो धार-राज्य का इतिहास राजा भोज के समय लगभग राजा मुञ्ज की राणी कुसुमावती ने जैन-दीक्षा धारण की है।

नहीं है कि जितना जान-बूझ कर मारने का होता है। यह पाप ऐसा है जैसे सूखे रूमाल पर पड़ी हुई धूल। वह धूल रूमाल के झटकने से शीघ्र ही दूर हो जाती है इसी प्रकार शुभ भावनाओं एवं शुभ विचारों मात्र से यह पाप नष्ट हो जाता है।

ठाकुर साहब ! पाप नियत के साथ होता है। ताज़ीरात हिंद में भी नियत देख कर सज़ा दी जाती है। श्री भगवती-सूत्र में गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् महावीर स्वामी ने भी नियत को ही मुख्य फ़रमाया है। वह यों है—एक बधिक हिरण को मारने के लिए निशाना लगाये हुए बैठा था, पीछे से बधिक के शत्रु ने आ कर उसको तलवार से मार डाला। तलवार लगते ही उस बधिक के हाथ से तीर छूट कर हिरण के प्राणांत का कारण हुआ। उस समय गौतम स्वामी ने प्रश्न किया-प्रभो ! तलवार मारने से उस बधिक का और हिरण का दोनों के मारने का पाप लगा या एक ही का ? उत्तर में प्रभु ने फ़रमाया कि तलवार वाले की नियत केवल उस बधिक को ही मारने की थी। अतः उसे केवल उस बधिक के ही मारने का पाप लगा और उस बधिक की नियत हिरण को मारने की थी, अतः हिरण के मारने का पाप बधिक को लगा न कि उस तलवार वाले को। पाप नियत के साथ होता है। इस प्रकार का उत्तर भगवान् महावीर ने दिया। ऐसी अनेक प्रकार की बातों को विचारने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि पाप भावना के साथ है। किसी कवि ने कहा है:–

श्रीमान ठाकुर साहब श्री गोपालसिंह जी महोदय
बदनोर (मेवाड़)

मनसेव कृतं कर्म न शरीराणि कृतं कृतम्।
यानेव लांघते कान्ता, तानेव लांघते सुता ॥

अर्थात्–मन (भावना) ही में भेद होता है। शरीर से नहीं। जैसे जिन हाथों से स्त्री का स्पर्श करता है, उन्हीं हाथों से लड़की को भी पुचकारता है, किंतु जैसी भावना स्त्री को स्पर्श करते समय होती है वैसी लड़की को पुचकारते समय नहीं होती। यह क्यों? शरीर और हाथ तो वे के वे ही हैं, पर मन में भेद होता है।

फिर से देखिये बिल्ली जिस मुँह से अपने बच्चे को पकड़ती है उसी मुँह से चूहे को भी पकड़ती है। किंतु उसके बच्चे को तो कोई कष्ट नहीं होता है। और चूहा मुँह में गये बाद बच ही नहीं सकता है। मुँह वह का वही है, किंतु मन (भावना) में विभिन्नता हो जाती है। इसी प्रकार नियत के साथ ही पाप में भी भेद होता है। जब हमारी मारने की भावना ही नहीं है और वह बिना उद्योग के अनजाने मरगया तो वैसा पाप नहीं जैसा जान - बूझ कर मारने का है। जो जान-बूझ कर किसी को मार डालता है, उसकी क्या दशा होगी? एक पैसा भी यदि उधार लिया जाय तो वह चुकाना पड़ता है। फिर भला दूसरों को प्राण मिले हैं, उनको हर लेना अर्थात्–जिस आश्रय में बैठा है, वह आश्रय छुड़ा देना, छुड़ाने वाले के हक़ में कितना अनिष्टकारी है। भले ही यहां चाहे जिस पालसी से या रिशवत से छूटजावे। किन्तु परमात्मा-कर्मराज की कचहरी से छूटजाना

असम्भव है । कर्मराज कोई पोपा बाई का राज्य नहीं है जो अपराध किसी ने किया और दण्ड किसी को मिला—

करत प्रपंच और पंचन के वश पर्‌यो,
पर-दारा दरे भय आणे न बुराई को ।
पर-धन हरे पर जीवन की करे घात,
मद्य मांस खाय नहीं काम है भलाई को।
होयगा हिसाब तब मुख से न आवे ज्वाब,
सुन्दर कहत लेखो लेगा राई-राई को ।
यहाँ तो करै विलास यम की न तोको त्रास,
वहां तो नहीं छे कछु राज पोपाबाई को॥

ठाकुर साहब ! पोपाबाई का एक दृष्टान्त है । एक शहर था वहां के नरेश ने अपने कोई पुत्र न होने पर अन्तिम समय अपनी पुत्री पोपाबाई को अपने राज्य की उत्तराधिकारिणी नियुक्त कर दिया। राजा का स्वर्गवास हो गया । पोपाबाई राज्य-कार्य का संचालन करने लगी । कुछ ही दिनों के पश्चात उसने मंत्री और राज्य कर्मचारियों को बुला कर कहा कि—दीवान ! मैं अपना नाम प्रसिद्ध करना चाहती हूँ, अतः इसकी कोई योजना विचारो । तब बहुत सलाह व मन्त्रणा के पश्चात् किसी ने कहा, "पोप-तालाब" बनवा दिया जाय । कोई बोला "पोप-भवन" बनाने से नाम विख्यात होगा । किंतु पोपाबाई को एक बात भी न जँची । उसने कहा इसमें कुछ भी नाम नहीं होता है । तब मन्त्री ने कहा आप ही फ़रमावें । पोपाबाई ने कहा—सब वस्तु एक ही भाव

बिकना चाहिए । चाहे कोई हाथी खरीदे या गधा, एक भाव । चाहे मोती खरीदे या जुवार, एक भाव । यह सुन कर जी हुजूर के मजूर ख़ुशामदी लोग कहने लगे—हाँ, अन्नदाता ठीक है । ख़ुशामदी लोग ही तो ठहरे न, चाहे वह कार्य ठीक हो या बुरा इससे उन्हें कोई गरज नहीं । जो कुछ राजा कहे उसकी हाँ में हां मिलाना खुशामदी लोगों का ध्येय रहता है । किसी कवि ने कहा है:—

खुशामदी लोगों ने, देश को किया खराब ।
हां रे देश को किया खराब,खुशामदी लोगों ने ।।टेक।।
महाराज मन्त्री से बोले, बेगुन बहुत बुरा है ।
मन्त्री बोले तभी तो इसका, बेगुन नाम धरा है।।
दिया है ख़ूब जवाब, खुशामदी लोगों ने ।। १ ।।
महाराज कुछ देर से बोले, बेगुन अति अच्छा है ।
इसी लिये तो इसके सर पर, हरा टोप रक्खा है ।।
पलट दी बात शिताब, खुशामदी लोगों ने ।। २ ।।

अर्थात्— एक रोज एक राजा अपनी राज्य-मण्डली में बैठा हुआ प्रसंगोपात से एक बात छेड़ कर कहने लगा, मंत्रियो ! वनस्पतियों में जो बेगुन है वह बहुत बुरा है । तब मन्त्रियों ने कहा—जी हुजूर ! आप बहुत ठीक फ़रमाते हैं, बेगुन बहुत बुरा है । तभी तो इसका नाम बेगुण अर्थात् गुण रहित नाम पड़ा है । थोड़ी ही देर के बाद राजा बोला - मन्त्रियो ! बेगुन तो बहुत अच्छा है । तब मन्त्रियों ने कहा—जी हुजूर ! बहुत अच्छा है

बेगुन, तभी तो इसके ऊपर हरा टोप रक्खा गया और किसी भी वनस्पति पर ऐसा हरा टोप नहीं है। इसलिये बेगुन बहुत अच्छा है। ऐसे ही पोपाबाई के पास भी खुशामदी लोगों ने कह दिया कि-जी हुजूर ठीक है। आपने जो विचार किया कि सब ही वस्तु एक भाव बिकना चाहिए सो आज ही इसका हुक्म दे दीजिये। पोपाबाई ने हुक्म दे दिया। धनवान प्रजा रुष्ट हुई। ग़रीब प्रसन्न हुई। अन्त में मामला चल निकला। महीने के महीने बीतने लगे। एक बार गुरु और चेला भ्रमण करते हुए उसी गाँव में आ निकले। चेला बस्ती में आटा मांगने को गया। पाँच सात ही घर पर सीताराम करने से सारा तुम्बा आटे से भर गया। चेले ने विचार किया कि यहां के लोग बड़े ही उदार हैं। थोड़े ही परिश्रम से तुंबा भरगया। आटा बहुत है। थोड़ा हलवाई को देकर मुरमुरे भुजिये लेलें। पहुँचा हलवाई के यहां। और कहा थोड़ा आटा लेकर मुरमुरे भुजिये दे दीजिये। हलवाई ने तराजू के एक पलड़े में आटा रख दिया और दूसरे में मुरमुरे भुजिये रखे। चेले ने पूछा-क्या आटा और मुरमुरे भुजिये एक भाव हैं? हाँ, एक भाव हैं। पेड़े? एक भाव। गुलाबजामुन? एक भाव। रबड़िया मावा? एक भाव। चेले ने विचार किया कौन धुआं फूँका करे यह ठीक है न! आटा देकर रबड़िया लेलें। बस फिर क्या था कहा हलवाई से-हलवाई जी! जब सब ही चीज़ एक भाव है तो यह आटा ले लीजिये और रबड़िया दे दीजिये। हलवाई ने आटे के बराबर रबड़िया तोल दिया। अब तो चेलेजी

फूले नहीं समा रहे थे । गुरु जी के पास पहुंचे और कहा—गुरुजी ! आप हम जिस स्वर्ग के लिये तपस्या कर रहे हैं, वही स्वर्ग इस वस्ती में आ गया है । गुरु ने पूछा स्वर्ग कैसे आ गया ? चेले ने कहा-गुरुजी ! पांच सात घर ही से आटे का सारा तूँबा भर गया और उस आटे के बराबर रबड़िया ले आया । यहां सबही चीजें एक भाव मिलती हैं । आटा लो या रबड़िया । हाथी लो या गधा । गुरु ने कहा चेला ! जहां एक भाव है, गुण अवगुण की कुछ भी परीक्षा नहीं है, वहाँ का अन्नजल लेना भी अनुचित है । अतः यहां से चलो । चेले ने कहा—रहने दीजिये आपकी बातें, यहां जैसा सुख तो मुक्ति में भी नहीं होगा । जो यहां न रहे उसकी तक़दीर फूटी है । गुरु ने कहा—चेला ! मान जा ! चल यहां से । चेले ने कहा-जाओ आप, मेरा तो यहीं आसन रहेगा । गुरु तो वहां से चले गये । चेला नित्य प्रति आटा मांग के रबड़िया खाने लगा । शरीर हृष्ट पुष्ट होने लगा । उन दिनों पोपाबाई के राज में एक साहूकार की हवेली बन रही थी । उस हवेली की भीत कुछ मुड़ गई । कारीगरों ने एक चतुर हुशियार गजधर को बुलाया और उसे भीत की मोड़ दिखाने लगे । इतने ही में एक नवयौवन - सम्पन्न बालिका छम-छम करती हुई उसी दीवार के पास होकर निकली । गजधर बूढ़े थे, तथापि उनकी नियत बूढ़ी नहीं हुई थी । उन्होंने उस बालिका की तरफ़ दृष्टि डाली । जिस ईंट पर उन्होंने हाथ रखा था वह तत्काल की ही जमाई हुई थी । इसी से गजधर जी हाथ फिसलने के कारण नीचे

गिर पड़े। गिरते ही गजधर जी नीलाम बोल गये अर्थात मरगये। कारीगर लोग उनके मृतक शरीर को उठा पोपाबाई के पास लाये और बोले-हुजूर ! छोकरी ऐसा गहना पहनती है कि जिससे हमारा गजधर मर गया। पोपाबाई ने हुक्म दिया-पकड़ लाओ उस छोकरी को "राजणां हुक्मांणां" हुक्म होते ही छोकरी को ले आये। पोपाबाई ने पूछा-क्यों बदमाश छोकरी ! ऐसा गहना पहनती है जिससे इस प्रकार मनुष्य मर जायँ। छोकरी ने कहा हुजूर ! मेरा क्या कुसूर, मेरे पिता जी ने जैसे पहनाए वैसे मैंने पहने। पोपाबाई ने कहा हां, ठीक है इसका कोई कुसूर नहीं। पकड़ लाओ इसके बाप को। बाप को लाये पूछा-क्यों तू अपनी छोकरी को ऐसा गहना पहनाता है जिस से मनुष्य मर जायं। उसने कहा हुजूर ! मेरा क्या दोष ? सुनार ने जैसे गढ़ कर दिये वैसे पहनाये। पोपाबाई ने कहा-हां, इसका कोई कुसूर नहीं है। पकड़ लाओ उस सुनार को। सुनार को बुलाया गया और उससे पूछा-क्यों रे ! ऐसा गहना बनाता है जिससे मनुष्य मरजाय। उससे और तो कोई उत्तर नहीं बन पड़ा। और कहा-हुजूर ! हमारा धंधा है। पोपाबाई ने कहा-चढ़ा दो इसको फांसी। बस फिर क्या था, हुक्म होते ही भीमकाय जल्लादों द्वारा सुनार फांसी-स्थल पर ले जाया गया। वहां पहुँचतेही सुनार ढाढ़ें मार-मार कर अश्रुपात करने लगा, फांसी के भयावने काले तख्ते को देखते ही वह रोमाञ्चित हो उठा और कहने लगा-हाय ! मेरे बाल-बच्चे मर जायँगे। तब फांसी चढ़ाने वाले जल्लादों ने कहा-

क्यों सोनी जी तुम्हें हम बचा दें तो हमें क्या-पुरस्कार मिलेगा ? सोनी बोला--मेरे पास कोई स्थायी सम्पत्ति तो है नहीं। हां, आप लोगों की रकमें गहनें मुफ्त में गढ़ दिया करूँगा। अच्छा हम तुम्हारे प्राण-रक्षा की समुचित योजना करते हैं। इतना कह वे लोग महारानी के पास पहुँचे और अर्ज करने लगे--हुजूर ! ऐसी फांसी होने से राज्य की बड़ी बदनामी होगी। आपके जीते जी इस राज्य पर अमिट कलंक का टीका लग जायगा। पोपाबाई ने पूछा--क्यों क्या बदनामी है ? हुजूर ! शूली तो बहुत बड़ी है और सोनी बेचारा दुबला पतला है। अतएव शूली के योग्य कोई हृष्ट-पुष्ट आदमी चाहिए। पोपाबाई ने कहा--अच्छा शूली के योग्य किसी योग्य हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति को पकड़ लाओ। सिपाही शीघ्रही बाजार में पहुँचे। वहां बहुत से तोंदवाले सेठ साहूकार गादी तकिये लगाये बैठे दृष्टिगत हुए। पर क्या मजाल जो सिपाही उनके हाथ लगाते। वे तो सीधे उसी झोंपड़ी में पहुँचे जहां हमारे पूर्व परिचित चेले जी अपनी तोन्द फैलाये बैठे थे। कहा चलो महाराज ! आप के लिये शूली का हुक्म है। कुछ खाना-पीना हो तो कह दीजिये, राज्य से प्रबन्ध हो सकता है। कुछ रबड़ी मावे की चाट देखना हो तो देख लीजिये। चेले जी ने कहा— भूल गया भाई ! अब कुछ खाना न पीना ! गुरु-आज्ञा नहीं मानी जिसका ही यह नतीजा है। अच्छा महाराज ! किसी से मिलना हो तो कहिये। चेले जी ने कहा—गुरुजी से मिलना है। गुरु दूसरे राजस्थान की सीमा में ठहरे हुए थे अतः वह वहाँ से बुला

लिये गये। गुरु के आते ही चेला चरणों पर गिर पड़ा और बोला गुरु जी! आप की आज्ञा-उलङ्घन करने का ही यह फल है। गुरु ने चेले से कहा–ख़ैर अब मैं जैसा कहूँ वैसा ही करना। ऐसा कह गुरु चेले सिपाही के साथ हो लिये। फांसी-ग्रह के समीप आते ही गुरु बोला चढ़ाओ फांसी। चेला कहे चढ़ाओ फाँसी। गुरु ने कहा पहले मुझे चढ़ाओ मेरा हक़ है। चेला बोला नहीं फांसी की आज्ञा मेरे लिये है। यों परस्पर दोनों लड़ने लगे। तब अधिकारियों ने कहा महाराज! क्यों लड़ते हो? फाँसी में क्या मज़ा है? उत्तर में वे बोले इसका मज़ा हम ही जानते हैं, किसी से कहने का नहीं। हां, यदि महारानी पूछें तो कह सकते हैं। अधिकारी ने जाकर महारानी पोपाबाई से सब कथा कह सुनाई। पोपाबाई शीघ्र ही उस फांसी-स्थल पर आई जहां गुरु चेलों का झगड़ा हो रहा था और पूछा–महाराज! क्यों लड़ते हो मजा क्या है? उन्होंने कहा—इसका मजा केवल हम ही जानते हैं।

पोपाबाई—चलो हटो! शूली हमारी है। पहले मतलब बतलाओ।

गुरु जी—देखिये महारानी साहिबा! आकाश की तर्फ़ वैकुण्ठ के दरवाजे खुले हुए हैं वे श्री रामचन्द्र जी महाराज, श्रीमती सीता माता और श्री लक्ष्मण जी महाराज बुला रहे हैं कि "आजाओ भक्तो! कलिकाल आनेवाला है।" इसलिए गुरु का हक़ है कि पहले वह स्वर्ग में जावे। सो महारानी जी! चेला जिद्दी है कहता है मैं जाऊँगा। बस इसी बात पर झगड़ा हो रहा

श्रीमान् ठाकुर साहिब श्री खुमानसिंह जी महोदय
लसाणी (मेवाड़)

है! पोपाबाई ने पूछा क्या अभी जो शूली पर चढ़े वह स्वर्ग में जाता है? गुरु ने कहा—हाँ, है यही बात स्वर्ग के द्वार खुले हैं। महारानी ने राज्य-कर्मचारियों से कहा—मुझको स्वर्ग में जाना ही है। बिना तप तपे अनायास ही स्वर्ग में जाने का यह आज का स्वर्णसुयोग है। हटा दो इन गुरु चेले को। शूली इनके बाप-दादा की नहीं है। क्यों मन्त्रियो ठीक है न? खुशामदी मन्त्रियों ने शीघ्र ही कहा—हां अन्नदाता! ठीक है पोपाबाई शूली पर लटक गई!!! स्वर्ग-वैकुण्ठ तो दूर रहा! किंतु भेखूँट अर्थात् भैंस का स्थान भी मिलना कठिन हो गया!! इस प्रकार कर्मराज की कचहरी में पोपाबाई जैसी महारानी को समुचित दण्ड मिल गया।

बन्धुओं! यह तो दृष्टान्त है अपने को तो केवल इसका सार—मतलब ग्रहण करना चाहिए। यहां पर तो पाप को किसी प्रकार भी छिपा दोगे लेकिन कर्म-राज्य के घर में पोपाबाई जैसा अंधेर नहीं है। वहाँ तो राई-राई का लेखा होता है। अतएव मनुष्यों को पाप करते समय कर्म-राज्य का खयाल अवश्य ही रखना चाहिये।

आज लोगों में तर्कवाद बहुत बढ़ गया है। वे श्रद्धावाद के साम्राज्य में अपने कुतर्क लगाया करते हैं कि क्या धरा है शास्त्रों में, गीता एवं भागवत में, रामचन्द्र जी वनवास चले गये और एक सीता के कारण घोर युद्ध किया। हरिश्चन्द्र भंगी के घर रहा आदि-आदि क्या धरा है इन बातों में, हम ऐसी बातें नहीं

मानते। इस प्रकार तर्कवादियों ने अपने कुतर्कों द्वारा श्रद्धालु जनता की आंखों में दिनदहाड़े धूल डालने का प्रयत्न किया है और कर रहे हैं। यदि रामचन्द्र जी तर्कवाद द्वारा पिता की आज्ञा उल्लंघन कर बनवास नहीं जाते और सती की सतीत्व-रक्षा के लिए युद्ध नहीं करते, तो आज उनका नाम कौन लेता? यदि सत्यवादी हरिश्चन्द्र तर्कवादी बन अपना सत्य क़ायम न रखते, तो आज उन्हें कौन जानता? महाराणा प्रताप और शिवा जी आदि तर्क में आ जाते कि हमको क्या पड़ा है क्यों इतनी आपत्ति सहें? तो भला कहिये, अभी तर्कवादियों की क्या दशा होती? जिन मनुष्यों का आज तक नाम चला आ रहा है और वे कुछ कर गये हैं, वह सभी श्रद्धालु बन कर कर गये हैं। बिना श्रद्धा के कुछ नहीं हो सकता। थोड़ा पूछो तो सही, उन तर्कवादियों से कि तुम्हारे परदादे मौजूद नहीं और न तुमने आंखों से देखे हैं, फिर उन्हें मानते हो या नहीं? यदि कहो कि नहीं मानते हैं, तो तुम्हारी उत्पत्ति कैसे हुई? यदि कहो कि मानते हैं, तो बस श्रद्धा से मानना पड़ता है। इसी प्रकार शास्त्र के वाक्यों को भी श्रद्धा से मानो। जब हृदय में श्रद्धा होगी, तो पाप करने में भी संकोच उत्पन्न होगा और इसी प्रकार क्रमशः वह पक्का श्रद्धालु मुक्ति को प्राप्त होगा और तर्कवादी तर्क-तरंगिणी में सदैव ग़ोते खाते रहेंगे।

हमारे कहने का तात्पर्य तर्कवाद का निराकरण करना नहीं है। तर्क करो, अवश्य करो, किन्तु श्रद्धा सहित तर्क करो। केवल

तर्क ही कर लेने मात्र से सफलता नहीं है। जो कुछ भी सफलता है, तो वह श्रद्धा सहित तर्क करने में है। आज जिन महात्माओं के पुण्यप्रद नाम हम बड़ी श्रद्धा से अपनी उँगलियों के पोरों पर गिना रहे हैं, वे तर्कवादी नहीं थे। यदि होते तो जैसे हजारों मर गये पर कोई उनका नाम–निशान नहीं, इसी तरह इनका भी दुनिया में नाम नहीं रहता। अतएव जो बात शास्त्र में कही है उस पर श्रद्धा रखो। यदि उसमें तर्क करना है तो श्रद्धा सहित करो। फिर मुक्ति में कोई विलम्ब नहीं है।

जब अपने को बुद्धि मिली, मनुष्य - शरीर मिला है, तो इससे हिताहित का विचार करो और जिससे हित होता हो उसमें अवश्य बोलो। अहित में अपनी जबान को कभी मत खोलो। बस यही काफी है।

ठाकुर साहब! समय अब बहुत आया है, व्याख्यान यहीं समाप्त करते हैं। ठाकुर साहब ने मुनि श्री से कहा कि आपका उपदेश श्रवण कर मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और भी कुछ दिन उपदेश होना चाहिए। आज दोपहर को मैं फिर आपसे वार्तालाप करूँगा। ऐसा कह कर ठाकुर साहब अपने राज्य-कर्मचारियों एवं जागीरदारों सहित राज-महलों में पधार गये।

मध्याह्न को लगभग १ बजे मुनि श्री जब महल में पधारे, तो ठाकुर साहब ने मुनि श्री का यथायोग्य स्वागत किया। डेढ़ घंटे तक परस्पर वार्तालाप होता रहा। मुनि श्री ने कई ऐतिहासिक, राजनीतिक प्राचीन घटनाएँ सुनाईं जिससे ठाकुर

साहब बहुत प्रसन्न हुए और जो पाड़े सदैव के लिए बलिदान देते थे, उनको अभयदान दिया। जिसका लिखित हुक्म भी ठाकुर साहब ने फ़रमा दिया है। (देखो परिशिष्ट प्रकरण)

उसी समय ठाकुर साहब ने एक व्याख्यान और फ़रमाने के लिए मुनि श्री से आग्रह किया। ठाकुर साहब के आग्रह को मुनि टाल न सके। अतः स्वीकृति दे दी।

दूसरे दिन मार्गशीर्ष कृष्णा द्वादशी को उसी स्कूल में मुनि श्री जोधराज जी महाराज का व्याख्यान समाप्त होने के पश्चात् साढ़े आठ बजे मुनि श्री ने मंगलाचरण कर निम्न लिखित गाथा फ़रमाई।

जणक्य सम्मत्तठवणा य नामे रूवे पडुच्च सच्चेय।
ववहार भावे जोग, दसमें ओवम सच्चेय॥

ठाकुर साहब और बन्धुओ! यह 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन' के ग्यारहवें अध्याय की पन्द्रहवीं गाथा है। इसमें वचन-शुद्धि का विषय है। कैसा और किस प्रकार बोलना चाहिए, यह सरल नहीं है। बोलने से बुद्धिमत्ता और मूर्खता चट मालूम हो जाती है। बोलने से हृदय के भाव मालूम हो जाते हैं। चार प्रकार की भाषा है। जिसमें दो के लिए भगवान् ने बोलने का निषेध किया है और दो भाषाओं के लिए निषेध नहीं है। वे दो भाषाएँ सत्य और व्यवहार्य हैं। वे यों हैं—जिस देश में जैसी भाषा बोली जाती है, उसके बोलने में कोई आपत्ति नहीं। जैसे—दिल्ली प्रान्त में 'छोकरा' को लौंडा कहते हैं और इस देश में छोकरा कहते हैं।

इसी तरह दक्षिण में मुलगा। यों देश के सम्बन्ध से शब्दों में विभिन्नता भले ही हो, पर है वह देश की भाषा। अतः उसे उस देश में बोलने में कोई आपत्ति नहीं है। सम्मत, जिसमें बहुतों का मत मिले—जैसे कीचड़ से और भी चीजें पैदा होती हैं, कमल को ही पंकज कहने में बहुतों का मत मिल गया। इस लिए जहां बहुतों के मत मिल गये, ऐसे शब्दों के व्यवहार में भी कोई आपत्ति नहीं। ठवणा, पांच व्यक्ति मिल कर यदि पत्थर को भैरों जी बना दें और उसमें तेल सिंदूर लगा दें, तो उसे भैरों जी कहने में कोई आपत्ति नहीं; क्योंकि व्यवहार में ऐसा ही प्रयोग देखा जाता है नाम गुणों की अपेक्षा न रख कर जो नाम दिया जाता है जैसे अभी भी किसी व्यक्ति का नाम कृष्ण दे दिया, तो उसे. कृष्ण कह कर ही पुकारते हैं। यहाँ गुणों की कोई अपेक्षा नहीं है। यदि ऐसा नहीं है तो सूर्यमल नाम होने से उसके घर में फिर दीपक के प्रकाश की आवश्यकता नहीं। इस लिए गुणों की तरफ़ लक्ष्य न देकर केवल नाम ही हो तो भी व्यवहार में ऐसे शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। अतः ऐसे बोलने में कोई आपत्ति नहीं। यह सब व्यवहारिक भाषा है। जैसे कहा—आज हमने चील की भाजी खाई, तो चील एक जानवर विशेष है। इसी तरह सुआ (वनस्पति) की भाजी और सुवा कहते हैं पोपट—तोता को। गांव आ रहा है और वास्तव में स्वयं ही जा रहे हैं। चूल्हा जल रहा है, और वास्तव में आग जल रही है। मकान चू रहा है और वास्तव में पानी टपक रहा है। यों अनेक शब्दों का व्यवहार होता है

और ये सब व्यवहारिक हैं, ऐसा बोलने में कोई आपत्ति नहीं है। संयोग से भी शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—घोड़े पर बैठे हुए को घोड़े वाला, छतरी वाले को छाता वाला, लकड़ी वाले को लकड़ी वाला, टोपी वाले को टोपी वाला और राज्य करने वाले को राजा। इस प्रकार की भाषा बोलने में कोई आपत्ति नहीं है। काने को काना, अन्धे को अन्धा, लूले को लूला और दिवालिये को दिवालिया कहना यद्यपि सत्य भाषा है, किन्तु ऐसा कहने से उनका जी दुखता है। अतः सत्य-भाषा होने पर भी बोलने के लिए निषेध किया गया है। जिस भाषा से किसी का दिल दुखता हो, तो फिर वह चाहे सत्य ही हो पर वह झूठ के समान है। मनुस्मृति में मनु ऋषि जी ने कहा है—

सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयान्नब्रूयात सत्यमप्रियम्।
प्रियश्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥

वह भाषा किस काम की है कि जिसके बोलने से दूसरे के प्राण चले जांय। कवि ने ठीक ही कहा है—

बहुत पढ़े तो क्या हुआ, बोले नहीं विचार।
हने पराई आतमा, जीभ बहे तलवार ॥

अर्थात्—संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, मराठी, फ़ारसी, उर्दू, गुजराती और कन्हड़ी आदि अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् हो गये, पर उनके बोलने से दूसरों के प्राण बध करने में जिह्वा तलवार का काम करती है। अब कहिये बहुत पढ़ गए तो क्या हुआ। जिह्वा में तो जहर बसा हुआ है न, उनकी !

ठाकुर साहब और बन्धुजनो ! यदि कोई बिना विचार से बोल पड़ा तो समझ लो उसने जहर उगला है । और सोच समझ कर किसी के हक़ में बुरा न हो ऐसा विचार कर बोला तो सचमुच उसने अमृत उगला है । तभी तो कहा है कि इस ज़बान से चाहे पुण्य उपार्जन करो या पाप, दोनों हो सकते हैं । मैंने महाराणा साहब से कहा था कि आप दया के लिये थोड़ा सा भी बोलें तो महान् उपकार हो जाय आदि-आदि । मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि तलवार मूठ से पकड़े तो शत्रु को मार डालता है । और धार की तरफ़ से पकड़े तो स्वयं नाश हो जाता है इसी तरह इस ज़बान से अपना भला और बुरा दोनों हो सकते हैं । बड़े आदमी वही हैं जो बड़ी बोली बोलते हों अर्थात् विचार पूर्वक दूसरों को आनन्द - दायक हो ऐसी भाषा का सदैव प्रयोग करते हों । एक समय बादशाह की सवारी जा रही थी । आगे एक अन्धा मिला उस अन्धे को सिपाही ने कहा- अरे चल बे अन्धे ! दूर हट जा । यह सुनते ही अंधे ने कहा— अरे हां, तीन कौड़ी के पाजी ! हटता हूँ । ये शब्द बादशाह के कानों तक पहुँच गये । बादशाह ने उस अंधे से कहा—बड़े मियां ! थोड़े बाजू में तो होना । अंधे ने कहा जी हुजूर ! दीन दुःखी के बादशाह साहब ! बाजू में होता हूँ । बादशाह ने उससे पूछा क्यों बड़े मियां ! आपको दीखता तो है नहीं, और पहले तो एक को कहा तीन कौड़ी का पाजी और मुझे कहा—बादशाह । यह कैसे मालूम हुआ. अंधे ने कहा—जी हुजूर बोली पर से मैंने जान कर

कहा। उसने कहा अरे हट वे अंधे! तब मुझे मालूम हुआ कि ऐसी हलकी जवान हलके आदमियों की ही हुआ करती है। इससे उसको तीन कौड़ी का पाजी कहा और आपने कहा वड़े मियां वाजू में होना। मैं इस वोली से समझा कि कोई वादशाह ही है। ऐसा जान के आपको मैंने वादशाह कहा। हुजूर वोली से सब कुछ पहचान हो सकती है।

वन्धुओ! यह तो दृष्टान्त है, इससे मतलब यह लेना है कि वड़े वही हैं जो वड़ी वोली वोलते हों। अर्थात् जिसके वोलने से किसी को बुरा न लगता हो। जो मनुष्य सब कामों में होशियार है, पर वोलने में कुछ भी विचार नहीं रखता है, उसकी होशियारी कुछ काम की नहीं है। किसी कवि ने कहा है—

सीखा है इश्लोक रूप कवित्त, गीता ने छन्द,
ज्योतिष को सीख, मन रहते ग़रूर में।
सीखा सब सौदागरी, बज़ाजी सराफी जान,
लाखन को फेर हार बहा जात पूर में।
सीखा सब मंत्र यंत्र, तंत्र सब याद, सीख्यो
पिंगल पुराण सीख, सीख भयो शूर में।
सीखा सब बाट घाट, निपट सयानो भयो,
एक बोलबो न सीख्यो, सीख्यो सब धूर में॥

अर्थात्—श्लोक, दोहे, कवित्त, गीत, छन्द आदि बनाने में होशियार है। ज्योतिष को सीख कर अपनेआप को अद्वितीय समझता है। सौदागरी, बजाजी और सराफ़ी के धर्म में लाखों

श्रीमान् जैन-दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पंडित मुनि श्री चौथमल जी महाराज के उपदेश से श्रीमान् हिन्दू-कुल-सूर्य महाराना जी साहेब य... और उनके युवराज महाराजकुमार साहेब की तरफ़ से अगते ।ने के हुक्म की नकलें।

रुपयों का हेर - फेर करने में चतुर हो रहा है। मंत्र, यंत्र, तंत्र, जादू, पिंगल, पुराण आदि में निपुणता को धरता है। युद्ध-कार्य भी ऐसा सीख लिया है कि उसके सानी का दूसरा नहीं। सब सीख गया पर एक बोलना नहीं सीखा तो समझो सब सीखे हुए पर और उसकी होशियारी पर सौ मावे धूल है। अतएव सर्व प्रकार बोलना सीखो। बिना विचार से बोले हो तो कहीं अपमान न हो जाय। गर्व सहित भाषा कभी मत बोलो। बोलना और फिर भी विचार के बोलना बहुत बड़ी भारी चीज है। जब ही तो एक-एक वक्त बोलकर बैरिस्टर लोग हजार-हजार रुपये लेते हैं। वे भी तो बोलते हैं, पर बोलते हैं सोच समझ के। बोल कर किसी का मर्म मत प्रकाशो या किसी को तुच्छ मत कहो। यदि कहोगे तो अगले भव में तुम भी तुच्छ ही बनोगे। अगला भव क्यों देखो ? इसी भव में कर्मोदय हो जाते हैं। देखो न, एक बार अमानुल्लाखाँ क़ाबुल का बादशाह था और देहली में वाइसराय ने उसका स्वागत किया था, मगर आज वही अमेरिका में मकानों की दलाली कर अपना कारोबार चलाता है। इसी लिए तो कहा है कि सदैव समय एक सा नहीं रहता है। अतः ज़िस ज़बान से बुरा हो ऐसी भाषा कदापि नहीं बोलना चाहिए। जो बोलने की क़ीमत नहीं जानते हैं, वे इस बोली से ही बड़े-बड़े अनर्थ कर डालते हैं। दुनिया शरीर को जल से स्नान कराती है, पर यह जबान बुरे बोलने के कारण अपवित्र हो रही है। उसे कभी सत्यरूपी जल से स्नान नहीं कराते हैं। यह बड़ी अफ़सोस—आश्चर्य की बात है।

बन्धुओ ! बुद्धिमानों को चाहिए कि वे अपनी ज़बान को बुरे वचन बोलने से रोकें और जो पुण्य की बात हो उसमें इस ज़बान को छूट दें। ऐसा न करें कि पुण्य-काम के लिए पानड़ी—चन्दा हो रहा हो तो वहाँ ज़बान से ठेस लगा दें कि क्या पड़ा है इस में ? अमुक राजा ने धर्म की पाल बांधी अर्थात् अपनी हद में अगते वग़ैरह रखने का निश्चय किया, दूसरे ने ज़बान से कह दिया कि अगते-फगते में क्या है ? ऐसे पुण्य - कार्य में ज़बान से ठेस लगाना ही बुरा काम है, क्योंकि इस जीव के साथ ज़बान से पुण्य कमावेगा, तो पुण्य आयेगा और पाप कमायेगा तो पाप। बाक़ी जो दृश्यमान पदार्थ है क्या हाथी, क्या घोड़े और ख़ज़ाना सब यहीं रह जायेंगे। समय-समय पर जो आया है वह अवश्य जायगा। अमर कौन बना रहेगा कवि ने कहा है—

बना है कोलचा पुतला, कोल होते ही जावेगा।
खड़ा रह जायगा लश्कर, पकड़ तुझको ले जावेगा॥

मिट्टी का बर्तन यदि हिफ़ाजत से रखा जाय तो २००-२५० वर्ष तक स्थिर रह जाता है, किन्तु इस शरीर का चाहे जितना जापता किया जाय तो भी १०० वर्ष से अधिक टिका रहना कठिन है और फिर इसमें भी यह पता नहीं कि अमुक टाइम और अमुक स्थल पर ज़िन्दगी पूरी होगी। कई जगह बिचारे सिविल सर्जन औरों का इलाज करने के लिये जाते हुए बीच में स्वयं नीलाम बोल जाते हैं। अब आगे की मुसाफ़िरी करना है। क्या साथ लाये हो और क्या लेजाओगे ? जो पूर्वभव में पुण्यो-

पार्जन किया वह यहाँ खा-लुटा रहे हो, अब आगे के लिये पुण्य उपार्जन नहीं करोगे तो क्या दशा होगी ? जैसे दोने में कलाक़न्द है तो वह दोना रूमाल के अन्दर बँध कर मनुष्यों के हाथों-हाथ सीढ़ियां चढ़ कर ऊपर के मंजिल में चांदी-सोने की तस्तरी में रखा जाता है। जब कलाक़न्द खा लिया जाता है और फिर उस दोने में गुलाबजामुन वग़ैरह कुछ भी नहीं भरा जाता तो कहो उस दोने की क्या दशा होगी ? ऊपर से नीचे जहां कूड़ा-कचरा पड़ा होगा फेंक देंगे। बस इसी प्रकार समझ लीजिये जो इस चेतन ने पहले कलाक़न्द-रूप पुण्य उपार्जन किया है, तो यह आनंद उड़ा रहा है और अब आगे कुछ नहीं लिया तो वही दोने के समान दुर्दशा होगी। नीचे गिरते-गिरते एकेन्द्रिय की दशा प्राप्त हो जायगी।

ठाकुर साहब ! आज हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि एक को तो भर पेट खाने तक को नहीं मिलता है और एक को बादामों के सीरे से अजीर्ण हो रहा है। एक को मोतियों के गहने पहनने से नफ़रत हो रही है और एक को जुवारी खाने तक को नहीं, पानी के लिए तांबे-पीतल का फूटा लोटा तक नसीब नहीं है। इससे स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि अगले भव में जैसे कर्म किये वैसे फल यहां प्राप्त हो रहे हैं। इस लिए यहां पर भी कुछ कर लो जो आगे काम आयेगा। अपनी जबान से किसी का भला होता हो तो उसमें आनाकानी कभी नहीं करना चाहिए। कई आदमी तो ऐसे होते हैं जो कि दूसरे के लिए नये दान-पुण्य को देख कर

अपने आप मलिन हो जाते हैं और तन छीन हो कर उसके प्रति बुरे शब्द कह पड़ते हैं। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

के कुछ कर से गिर पड़ा; के कुछ किस को दीन।
कामण पूछे कन्त से, कैसे भये मलीन ॥

अर्थात्—एक मूजी आदमी था वह बाज़ार में किसी दूसरे आदमी को दान - पुण्य करते हुए देख कर बीच में आप उदास हो गया और वह देखा नहीं गया इसी कारण से बाज़ार से लौट कर घर चला आया। उसकी स्त्री ने पतिदेव को उदास देख कर उससे पूछा—क्या आज आपके हाथ से कुछ गिर गया है या दस - पांच मनुष्यों के दबाव से किसी अनाथ भिखारी को कुछ दान-पुण्य दे दिया है, जिससे आज आप उदास हो रहे हो? उत्तर दिया, प्रिया! नहीं।

ना कुछ कर से गिर पड़ा, न कुछ किसी को दीन।
देते देखा और को, यासों भये मलीन ॥

अर्थात्—हे प्रिया! न तो मेरे हाथों से कुछ गिर पड़ा और न मैंने किसी के दबाव में आकर किसी को कुछ दिया। इस बात में तो मैं पक्का हूँ। तू मेरे स्वभाव को अच्छी तरह जानती है। आज मैं उदास हो गया हूँ इसका कारण यह है कि मैंने दान पुण्य देते हुए एक आदमी को देख लिया था, बस उसे देखते ही मेरा जी जल गया। मेरा कोई वश नहीं चला तब मैं वहां से उकता कर चल पड़ा और आया हूँ।

बन्धुओ! कई तो ऐसे आदमी होते हैं जो देता कौन और

लेता कौन बीच में उसे देख कर मलीन हो जाते हैं। और कई दया दान परोपकार में ऐसे होते हैं जो बहुत ख़ुश होते हैं। पालनपुर के नवाब साहब की बात याद आ गई। वे बड़े कोमल दिल के थे। दो बार उन्होंने व्याख्यान श्रवण का लाभ लिया। एक बार उन नवाब साहब से किसी ने कहा—हुजूर! वह राज्य-कर्मचारी बहुत माल उड़ा कर लक्षाधीश हो गया। नवाब साहब ने उत्तर दिया—अरे! बड़े हुजूर के वक़्त में २०–२५ लखपती हुए तो मेरे वक़्त में दो-चार लखपती भी न बनें? यह उत्तर सुन कर सिटपिटा गया। कहने का तात्पर्य यह है कि नवाब साहब के कितने उदार भाव थे। जब अगले भव में उदार भाव थे तब तो आज नवाब साहब हुए और अब उदार भाव रखेंगे तो आगे सुख मिलेगा।

देवदत्त के पास ६६ करोड़ की लक्ष्मी थी। पर था वह पक्का मूजी। इसी लिए लोगों ने रायबहादुर, दीवान बहादुर, राजा बहादुर, सी. एस. आई. आदि पदवियों के स्थान पर 'मूजी' मक्खीचूस, आदि-आदि पदवियां उसे दे रखी थीं। जब बाजार में निकलता था तो उस समय लोग कहने लगते थे—अरे! मूजी आया बोलो मत। सेठ देवदत्त आँखें ऊँची कर कहते थे क्या भाई। उत्तर में वे लोग कह देते थे आपको नहीं कहा साहब! हमने तो इस आदमी को कहा है, यह बड़ा मूजी है। आखिर देवदत्त समझ जाता था कि दुनिया के लोगों ने मूजी का टाइटिल मुझे ही दे रखा है, तो क्या इनके ऐसा कहने से, बकने से लक्ष्मी लुटा दें

क्या ? एक रोज़ रात्रि में देवदत्त सोया हुआ था। लक्ष्मी जी आ कर सेठ से बोली—मैं क़ैदी की तरह तेरे घर में रहना पसन्द नहीं करती हूँ। सेठ ने कहा—लक्ष्मी जी ! आप मेरे घर से जाना चाहती हो ? ओह ! अब मैं क्या करूँगा ? सोच कर सेठ ने कहा ख़ैर, आप जाती हैं तो जायें, पर सात रोज़ ठहर कर जायें। लक्ष्मी ने विचार किया कि सात रोज़ में यह मूजी क्या दान-पुण्य करेगा ? सात रोज़ रह कर इसका भी मन राज़ी रखो। इनकी बातों में सेठानी की नींद खुली और कहने लगी आज आप क्या बोल रहे थे ? बोलूँ क्या, तेरे ये सोने के झुमके-झूमके सब जाने वाले हैं। एँ ! एँ ! क्या पानी भर कर झट घिस जायगी ? सब बात कही। सूर्योदय होते ही देवदत्त ने दान-पुण्य करना प्रारम्भ कर दिया। सात दिन में तो सब घर का धन दान कर दिया। अनाथालय, गुरुकुल, पाठशाला और बोर्डिङ्ग आदि संस्थाओं को मदद दी गई। सातवीं रात्रि को लक्ष्मी ने आ कर देवदत्त को जगाया कहा हे देवदत्त ! देवदत्त बोला नहीं, फिर बोली देवदत्त ! बोला नहीं। तीसरी बार कहा—अरे देवदत्त ! तब देवदत्त बोला क्यों सिर फोड़ डाला है, जा चली जा। मैंने तो अपने मूजी-पन की कालिमा हटा ली है। लक्ष्मी बोली अरे देवदत्त ! तेरे जैसे परोपकारी को छोड़ कर कहाँ जाऊँ ? मैं यहीं रहूँगी। रह कर क्या करेगी ? यहां तो अब चूहों को भी एकादशी करने का समय है। लक्ष्मी ने कहा—अरे मेरे आने के बहुत से रास्ते हैं। कल तू नदी के तट पर जाना और जो महात्मा मिलें उन्हें घर बुलाकर

अच्छी तरह भोजन कराके लट्ठ फटकारना, वह सारा सोने का पोरसा बन जायगा। पैर की तरफ से काट कर बेच देना। रात को पीछा बराबर हो जायगा। देवदत्त ने दूसरे दिन वैसा ही किया। थोड़े ही दिनों में देवदत्त ६६ करोड़ क्या ६६ अरब से भी अधिक हो गया। पास रहने वाले नाई ने अपनी औरत से पता लगाने के लिए कहा कि देवदत्त मालदार कैसे हो गया? नाइन सेठानी जी के पास आकर बोली— आप तो हमारी मालिकिन हैं। मैं एक बात पूछना चाहती हूँ कि आपने सब माल दान-पुण्य कर दिया था, फिर उससे भी अधिक कहां से आगया? यों औरतें भोली होती हैं। महात्मा जी को जिमाया आदि सब बातें कह दीं। नाइन अब बाँसों उछलती हुई घर आ नाई से कहने लगी--कल महात्मा जी को जिमाने लाना और लट्ठ मारना। तदनुसार नाई ने सूर्योदय होते ही एक महात्मा जी को बुलाया और खूब जिमा कर एक लट्ठ मारा। बेचारा महात्मा चिल्लाया अरे भक्तो! दौड़ो मुझे यह दुष्ट मार रहा है। पुलिस आई और नाई को राजा के पास ले गई। राजा ने कहा—क्यों बदमाश! बेचारे महात्मा को मारता है। नाई ने कहा हुजूर पास वाले पड़ोसी सेठ ने सब धन दान-पुण्य कर दिया था, फिर उसने महात्मा को जिमाकर लट्ठ मारा, वह सोने का बन गया। ऐसे मैं भी कर रहा था। राजा ने सेठ को बुलाकर सब कथा पूछी! जो थी वह सब कह दी। राजा ने नाई से कहा—अरे! इस सेठ ने ६६ करोड़ का दान किया था, जिससे इसको सोने का पोरसा मिला।

क्या करता है ? हां वाल उतारता है। तुझको कैसे लक्ष्मी मिले ? सेठ की बराबरी करने चला है। आइन्दा ऐसा कभी मत करना, जा।

यह तो दृष्टान्त है तात्पर्य यह है कि अपने पास जो लक्ष्मी है उसका सदुपयोग करो। अपने पास कोई हुनर है तो उससे दुनिया को फ़ायदा पहुँचाओ। अपने को कुछ सत्ता मिली है तो उसका सदुपयोग करो। मनुष्य-शरीर और उसके अङ्गोपाङ्ग मिले हैं तो उनका दुरुपयोग मत करो। किसी कवि ने कहा है-

कानों से प्रभू जी की वाणी क्यों नहीं सुनता।
तेरे दोनों हाथों से स्मरण क्यों नहीं करता॥
मुख दिया तुझे प्रभु को क्यों नहीं भजता।
तेरी छती शक्ति से तपस्या क्यों नहीं करता॥
सुन ! चेत ! वेइमान अकल एक खासी।
इस जिन्दगानी में दो दिन का तू वासी॥

अर्थात्—कान बुरे (अश्लील) गाने सुनने के लिए नहीं, हाथ, थप्पड़, घूँसा, व छुरा मारने के लिए नहीं जबान बुरा बोलने के लिए नहीं, मनुष्य शरीर दुरुपयोग करने के लिए नहीं मिला है। प्रत्युत कान प्रभु की वाणी सुनने के लिए, हाथ माला फिराने के लिए, जिह्वा सत्य और हितकारी बोलने के लिए और मनुष्य-शरीर तपस्या एवं धर्माराधना के लिए मिला है। जो-जो वस्तु जिस-जिस लिए मिली है उसका उसी प्रकार उपयोग न करते हुए उसका उलटा उपयोग करें, तो फिर वह वस्तु दुबारा

श्रीमान् जैन-दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पंडित मुनि श्री चौथमल जी महाराज के उपदेश से श्रीमान् हिन्दु-कुल-सूर्य महाराना जी साहेब और उनके युवराज महाराजकुमार साहेब की तरफ़ से अगते पलाने के हुक्म ,, नकलें।

कैसे मिलेगी ? जैसे ठाकुर साहब आपने किसी गाँव में हाकिम रखा और वह हाकिम अपनी ड्यूटी नहीं बजाता है तो कहिये ठाकुर साहब आप उसे रिटायर्ड करेंगे या नहीं ? ठाकुर साहेब ने कहा—वह अवश्य ही रिटायर्ड होगा। इसी प्रकार मनुष्य-शरीर के अंगोपाङ्ग जिस कार्य के लिए मिले हैं उनसे वे कार्य न लेकर नीति-विरुद्ध अन्यान्य व्यर्थ कार्य करने को बैठ जाय तो क्या वह मनुष्य-पद से रिटायर्ड नहीं होगा ? अवश्य होगा। ईश्वर के घर में अर्थात् कर्म-राज्य की कचहरी में कोई रिशवत का काम नहीं है। जो रिशवत देकर खुश कर लोगे और मनुष्य-पद पर ज्यों के त्यों क़ायम बने रहोगे। वहाँ तो अपनी ड्यूटी के विरुद्ध कार्य किया कि रिटायर्ड का बोल बाला है। इसलिए सावधान रहो अपने हाथ, कान और ज़बान आदि से उल्टे कार्य न बन जाँय। जैसा करोगे वैसा पाओगे। जैसा बोओगे वैसा लुणोगे। ज्वार बाजरा बो कर गेहूँ की आशा रखना बुद्धिमत्ता नहीं है। यहां से एक रोज़ जाना जरूर है। जबरदस्ती चलने वाली नहीं है। अन्तिम समय ४ जने उठाकर जंगल में धर ही आयेंगे। यह भी विचार मत करना कि आगे की कौन जानता है ? पुनर्जन्म है या नहीं ? पुनर्जन्म अवश्य है। इसके कई प्रत्यक्ष उदाहरण हैं राजकोट के पास एक गांव वाले भाई ने मर कर विलायत में जन्म लिया। और वह चार वर्ष का बचा होने पर बोला कि मैं हिन्दुस्तान के अन्दर अमुक गांव का रहने वाला था आदि-आदि। उसके पिता ने हिन्दुस्तान के उस गांव और

वहां के निवासियों से परिचय प्राप्त किया तो बच्चे की बात बावन तोला पाव रत्ती उतरी । इसी तरह बनारस में भी एक धनाढ्य ब्राह्मण के घर लड़का पैदा हुआ और उसने अपने पूर्व-जन्म की सारी हिस्ट्री कह सुनाई । श्रीमान् लाला कन्नोमल जी एम. ए. सेशन जज धौलपुर वाले ब्यावर आये थे और उन्होंने अपने भाषण में यों कहा था कि—

धौलपुर से मैंने एक समय श्रीमान् रायबहादुर दीवान श्री श्यामसुन्दर लाल जी (जो कि किशनगढ़ के दीवान थे) को पत्र लिखा कि यहां पर एक ऐसी बच्ची है कि वह अपने पूर्व जन्म की सब बातें बतलाती है । वह कहती है कि मैं अमुक ग्राम की हूँ । मेरे पिता अमुक हैं मेरे भाई बहिन अमुक-अमुक हैं । वे इन बातों की बड़ी खोज करते थे उनको इस विषय में अति आनन्द मिलता था । वे जब जोधपुर आये तो मुझको साथ ले जाकर उसकी तहक़ीक़ात की उन्होंने उस बच्ची से बातचीत की । वह बच्ची धौलपुर के पास एक छोटे गांव में रहती थी ।

दीवान साहब एक सुयोग्य विद्वान थे । उन्होंने एक छोटी पुस्तक इसी विषय पर लिखी थी । उसमें उसका पूर्ण रूप से वृत्तान्त लिखा और उसका फोटू भी दिया है ।

धौलपुर में एक और ऐसा मनुष्य था जो अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त बतलाता था उसकी भी खोज करने पर सारी बातें यथातथ्य निकलीं । यह कोई कपोल-कल्पना नहीं है । यही हमारे ऋषि महर्षियों का अटल सिद्धान्त है ।

ठाकुर साहब ! पुनर्जन्म के सम्बन्ध में ऐसे प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि पुनर्जन्म अवश्य है। इसके अतिरिक्त और भी इस सम्बन्ध के अनेक प्रमाण हैं। पर अब समय बहुत होगया है व्याख्यान यहीं समाप्त करते हैं। उपदेश श्रवण कर ठा० साहब का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। और भेंट स्वरूप में एक अभयदान का पट्टा दिया। जिसे परिशिष्ट-प्रकरण में देखें।

उदयपुर दरबार

सम्वत् १९९० में जैनदिवाकर जी महाराज उदयपुर पधारे। उस दिन उदयपुर के महाराणा जी साहब ने सारे नगर में डौंड़ी पिटवा कर 'अगता' पलवाया और राज्य के उच्च कर्मचारी तथा बड़े-बड़े जागीरदारों ने मुनिराज की धर्म-देशना से अपने को पवित्र बनाया। जनता भी पीछे न रही।

माघ शुक्ला चतुर्दशी के दिन उदयपुर-नरेश श्रीमन्त महाराणा साहब तथा मुनि श्री की परस्पर भेंट हुई। महाराणा साहब ने मुनिराज का यथायोग्य स्वागत-सत्कार किया। मुनि श्री ने महाराणा साहब को नव प्रकार के पुण्यधर्म का उपदेश दिया। उपदेश श्रवण कर महाराणा साहब का हृदय आनन्द-विभोर हो गया। फिर दोनों में प्रेमपूर्ण संलाप भी हुआ।

महाराणा जी—आगामी चातुर्मास अठेज वेणो चइजे!

मुनि श्री—फाल्गुन मास से पहले चातुर्मास की विनती स्वीकृत नहीं की जाती, इत्यादि।

वार्तालाप के पश्चात् महाराणा साहब ने गिरधारी सिंह जी महता से कहा—"याद राख जो !" अर्थात् चातुर्मास-स्वीकृति का समय आते ही प्रार्थना करना भूल न जाना। इसके पश्चात् महाराणा साहब ने मुनि श्री को वस्त्र वहराया और मुनि श्री अपने स्थान पर वापस पधार गये।

फाल्गुन मास अब समाप्त हो गया था। अतः उदयपुर के महाराणा साहब के आदेशानुसार ड्योढ़ी वाले श्रीमान् गिरधारी सिंह जी रतलाम आये। उन्होंने व्याख्यान के समय, महाराणा साहब की ओर से, मुनि श्री से प्रार्थना की कि आगामी चातुर्मास उदयपुर में कीजियें। मुनि श्री बोले—मेरे ध्यान में है। रतलाम से विहार कर मुनि श्री मन्दसौर पधारे। वहां से तार द्वारा यह निश्चित समाचार उदयपुर के महाराणा साहब को भेज दिया गया कि मुनि श्री का चातुर्मास उदयपुर में होगा। वहां से विहार कर विनौता पधारे। विनौता के जागीरदार रावत जी साहब ने उपदेश श्रवण किया। इस प्रसन्नता के उपलक्ष्य में उन्होंने भगवान् महावीर के जन्म दिन शुक्ला १३ तथा पार्श्वनाथ स्वामी के जन्म दिन पौष कृष्ण १० को अगता रखाने का अभिवचन दिया।

मुनि श्री वहां से पधार कर बाठरड़ा पधारे। वहां बाठरड़ा के रावत जी ने धर्मोपदेश सुनने का लाभ लिया। वहां से विहार कर जैन-दिवाकर जी महाराज, आम बाजार में उदयपुर घण्टाघर के पास, बनेड़ा के राजा साहब की हवेली में विराजमान हुए।

वहां के व्याख्यान-स्थल में पहले ही श्रोताओं का समावेश नहीं होता था। जगह तंग थी, श्रोता बहुत एकत्र होते थे। अब तो और अधिक भीड़ जमने लगी। निदान उदयपुर-दरबार के भ्राता श्रीमान् हिम्मत सिंह जी साहब की हवेली में तीन दिन तक व्याख्यान हुआ।

ता० १६ अक्तूबर, १६३४ के दिन महाराणा ने राज्य-कर्मचारियोंको आदेश दिया कि मुनि श्री चौथमल जी महाराज को यहां पधरावें। मुनि श्री अपने कतिपय सुशिष्यों के साथ सूर्य गवाक्ष महल में पधारे। दरबार ने मुनि श्री का, मुनियों के अनुरूप ही स्वागत किया फिर महाराणा साहब बोले—

"अठउँ कठे-कठे पधारवो कियो ?"

मुनि श्री—यहां से ऊँठाला, डूँगला, बड़ी-छोटी सादड़ी, नीमच, मन्दसौर और जावरा होते हुए रतलाम गये थे। रतलाम में पदवी-प्रदान महोत्सव था। आचार्य पदवी के साथ-साथ युवाचार्य, उपाध्याय, गणि और प्रवर्तक पदवियां प्रदान की गई हैं।

महाराणा साहब—आचार्य कुण है ?

मुनि श्री—खूबचन्द जी महाराज।

महाराणा साहब—वी अबी कठे है ?

मुनि श्री—उनका चातुर्मास इस वर्ष मन्दसौर में है।

महाराणा साहब—युवाचार्य किने कीधा ?

मुनि श्री—मुनि श्री छगनलाल जी महाराज को।

महाराणा साहब – वी अठेज है काईं ?

मुनि श्री–युवाचार्य का चातुर्मास रतलाम में है। मैं पिछली बार जब यहां आया था तब वे मेरे साथ थे। अभी तो यह मुनि प्यारचन्द जी (महाराज) हैं। इन्हें गणि की पदवी प्रदान की गई है।

महाराणा साहब—घासीलाल जी महाराज अभी कठे है ?

मुनि श्री–उनका चातुर्मास कुचेरा (मारवाड़) में है।

महाराणा साहब—वी आप आड़ी मिल गया कि नहीं ?

मुनि श्री—वे न हमारी ओर मिले हैं और न पूज्य जवाहर लाल जी महाराज की ओर ही। वे अभी अलग ही हैं।

इस प्रकार प्रासंगिक वार्त्तालाप होने के पश्चात् मुनि श्री का व्याख्यान हुआ।

उपदेश

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥

अहिंसा, संयम और तपस्वरूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है। इस प्रकार के धर्म का वास जिसके हृदय में होता है, उसे मनुष्यों की तो बात ही क्या, देवता भी नमस्कार करते हैं।

धर्म की एकता

धर्म एक सार्वजनिक वस्तु है, क्योंकि वह प्राकृतिक है। प्रकृतिदत्त किसी भी वस्तु पर किसी विशिष्ट समुदाय या जाति

का अधिकार नहीं होता। कोई यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि वायु अमुक जाति के अधिकार की चीज़ है। धर्म भी ऐसी ही वस्तु है। उसकी कोई जाति नहीं, पाँति नहीं। जिसने उसे अपने मन-मन्दिर में धारण किया वह उसी का है। विषय-भेद से धर्म अनेक प्रकार का हो जाता है। इसी धर्म की रक्षा के लिए महाराणा प्रताप ने "भोगोपभोगों को लात मार कर घास की जड़ों की रोटियाँ खाना क़बूल किया, पर धर्म न छोड़ा। यही धर्म-दृढ़ता मानव-जाति की विशेषता है। अतः यह कहना अत्युक्ति पूर्ण नहीं कि इसी का नाम खरी मनुष्यता है। कवि ने ठीक ही कहा है:—

पीपा पानी एक है, पनिहारिनी अनेक।
वासन में विग्रह भयो, नीर एक को एक॥

जल में कोई भेद नहीं है, न उसमें ब्राह्मणत्व है, न क्षत्रियत्व है, न वैश्यत्व है और न शूद्रत्व है। जो जल पीता है जल उसकी प्यास बुझाता है। जिस मटके में उसे भरना चाहें उसी मटके में वह भर जाता है। मटके में क़ैद होने के पश्चात् उसमें भेद उत्पन्न होता है। यदि उसी पानी को पुनः सरोवर में डाल दिया जाय तो वह बन्धन से मुक्त होकर फिर अपने असली स्वभाव से परिचित होने लगता है। इस विवेचना से यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि वस्तुतः जल के कोई भेद नहीं हैं, भेद सिर्फ़ काल्पनिक है। इसी प्रकार धर्म में भी कोई भेद नहीं है। वह एक है, सार्वजनिक है। जब धर्म एक और अभिन्न है तो

यह प्रश्न उठता है कि धर्म की उत्पत्ति किन-किन कारणों से होती है ? स्थानाङ्ग जी सूत्र में दस बातों से धर्म का होना प्रतिपादित किया गया है । वे बातें इस प्रकार हैं—

१—क्षमा

सर्व प्रथम क्षमा की भावना से धर्म होता है । क्षमा से उत्पन्न हुआ धर्म जन्म-जन्मान्तरों की पाप-कालिमा को धो डालता है । तेईस तीर्थंकारों के पूर्वोपार्जित कर्म जितने थे उतने अकेले भगवान महावीर के कर्म बँधे हुए थे । उन कर्मों को श्रमण भगवान् महावीर ने क्षमा के द्वारा नष्ट कर डाला । क्षमा से ही मनुष्य को महत्ता प्राप्त होती है । महान् पुरुष ही क्षमा कर सकते हैं । "क्षमा वीरस्य भूषणम्" यह उक्ति प्रसिद्ध है । एक हिंदी कवि ने भी कहा है—

क्षमा बड़न को होत है, ओछन को उतपात ।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥

इसी क्षमा की बदौलत छोटा आदमी भी बड़ा कहलाता है । जो क्षमा करना नहीं जानता है वह बड़ा आदमी भी तुच्छ प्राणियों की श्रेणी में गिना जाता है । भृगु जी ने विष्णु के ठोकर मारी, परन्तु महाराज विष्णु ने क्षमा का अवलम्बन किया । कहने लगे—"ऋषिवर ! मेरा शरीर कठोर है और आपके चरण-कमल कोमल हैं । कहीं पैर में चोट तो नहीं लग गई ?" अहा ! त्रिखण्ड के स्वामी में क्षमा का कैसा अथाह सागर लहरा रहा है !

सचमुच वे क्षमा की साक्षात मूर्त्ति हैं। भारतीय इतिहास में यह एक अत्यन्त सजीव पाठ है, जिसे श्रीकृष्ण अपने आदर्श के रूप में हम लोगों के समक्ष रख गये हैं। वास्तव में क्षमा ही धर्म का आधार है। कहा भी है—

क्षमायां स्थाप्यते धर्मः

किसी ने कुछ कटु वचन कहा और उसे हमने सहन कर लिया तो ६६ करोड़ उपवासों का फल होता है—ऐसा ग्रंथकारों ने बतलाया है।

२—निर्लोभता

धर्म के लिए निर्लोभता की आवश्यकता है। लालच एक ऐसी चीज है जो धर्म को नष्ट-भ्रष्ट कर पाप-पुञ्ज को पैदा करती है। जहां रात है वहाँ दिन नहीं, जहाँ लालच है वहाँ धर्म नहीं। "लोभ पाप का बाप बखाना" कहा गया है। यह समस्त सद्गुणों का शत्रु है। कहा है—

लोहो सव्वविणासणो: लोभ सर्वस्व नाशक है।

महाराणा साहब! यदि साधुओं में भी लालच आ जाये, तो वे भी सच्ची बात कहने में हिचकिचायेंगे, परिणामस्वरूप वे भ्रान्त जनता को सुपथ पर न लगा सकेंगे। क्योंकि, यदि सच्ची और खरी बात कह दी और श्रोता अप्रसन्न हो गया तो भेंट में रुपये-पैसे नहीं मिलेंगे। हां, जो निर्लोभ हैं वे किसी प्रकार के स्वार्थ की अपेक्षा न रख खरी-खरी सुनाने में कदापि संकोच नहीं करेंगे। यदि हमें आपसे कलकत्ते की टिकट के दाम लेने होंगे, तो

आपके सामने हम सच बोल नहीं सकेंगे। आपकी मन चाही बातें बनायेंगे। मगर हमें टिकट की आवश्यकता नहीं है। जब हम बम्बई गये, तो हमें रेल के टिकट की कुछ भी आवश्यकता न पड़ी। हम पैदल ही चले। मार्ग में शास्त्रानुसार जहाँ जैसा जो कुछ रूखा-सूखा मिला उसी से शरीर का निर्वाह किया। इसी तरह हमने अपना रास्ता तय किया। हम पाप का पेट चीरने का प्रयत्न करते हैं। घूम-घूम कर अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि तीक्ष्ण और अमोघ अस्त्र-शस्त्रों से पाप का समूल उन्मूलन करने में कोई कसर नहीं रखते। मानना न मानना लोगों की इच्छा और शक्ति पर निर्भर है। पानी का धर्म ऊसर और उपजाऊ दोनों प्रकार की भूमि पर समान रूप से बरसने का है, मगर अंकुर तो उपजाऊ ज़मीन में ही फूटेंगे। इसी प्रकार मुमुक्षु जीव हैं। उनके हृदय में अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि के अंकुर उपदेश-जल की वर्षा होते ही फूट निकलते हैं। जिनका हृदय असंस्कृत है, जो नास्तिक हैं, उन पर उपदेश की झड़ियां लगने पर भी क्या मजाल कि अहिंसा आदि के अंकुर वहां उत्पन्न हों! आशय यह है कि जो लोभ-लालच से रहित है, वही सत्यभाषी हो सकता है। लालची व्यक्ति चापलूसी करके, ठकुरसुहाती बातें बना कर, पैसा पैदा करने का पेशा करता है। अतः धर्म की रेखा निर्लोभता में है।

३—निष्कपटता

धर्म की उत्पत्ति का तीसरा कारण निष्कपटा है। जब

तक "घट" में कपट रहता है तब तक "घट के पट" नहीं खुलते। उसमें धर्म तो कदापि प्रकट नहीं हो सकता। कपटी के व्रत, जप, तप, संयम सब वृथा हैं। यह ठीक "ऊँट की लीद (मींगणों) पर शक्कर की चासनी चढ़ाने" वाली बात है। जो हाथ से माला फेर रहा है और हृदय से मालामाल होने का विचार कर रहा है, जो बाहर से भक्त का वेष धारण किए हुए है और भक्ति से दूसरों पर द्वेष धारण किये हुए है, वह कपटी धर्म के बदले अधर्म कमाता है।

एक सिंह ने भूख के कारण महात्मा की चाल का अनुकरण किया। वह फूँक-फूँक कर धीरे-धीरे पैर रखने लगा। एक बन्दर सिंह की यह प्रशस्त चाल देख कर बोला—

नहिं खाड़ा नहिं खोचरा, स्वामी को न स्वभाव।
अधर-अधर क्यों चलत हो, फूँक-फूँक दो पांव॥

अर्थात् हे स्वामिन्! यहाँ न तो गड्हे हैं और न जमीन ही ऊँची है। फिर क्यों आप फूँक-फूँक कर धीरे-धीरे अधर पैर रख कर चलते हैं? उत्तर में सिंह ने कहा—

परम सनेही साध छां, ज्यूँ दूधन में घीउ।
अधर-अधर यों पग धरां, रखे मरे कोइ जीउ॥

भाई बन्दर! मैंने पहले बहुत जीवों की हिंसा कर डाली है। उन हिंसाओं से मेरा आगामी भव बिगड़ता है, अतः अब मैंने हिंसा का परित्याग कर दिया है। मैं अब साधु बन गया हूँ। ईश्वर की टोह में अब मैं ऐसा लीन हो गया हूँ जैसे दूध में घी।

इसलिए फूँक-फूँक कर अधर-अधर पैर रखता हूँ कि कहीं कोई जीव पैर के नीचे दब कर मर न जाय। यह सुन कर बन्दर कहने लगा—

ऐसे हो तो हो खड़े, पूरे मेरी आस।
तरुवर के फल तोड़ के, लाऊँ तुम्हरे पास॥

सिंहराज ! यदि ऐसा व्रत आपने धारण किया है तो कृपा कर आप खड़े रहें। मैं बढ़िया फल तोड़ कर आपके पास लाता हूँ। इस प्रार्थना को स्वीकार कर मेरी आशा को सफल कीजिये।

सिंह ठहर गया। बन्दर वृक्ष से मधुर फल तोड़ लाया और उन्हें सिंह के सामने रख दिये। पर सिंह कब फल खाने वाला था। वह फुर्ती से झपटा और बन्दर को दबोच डाला। किसी कवि ने कहा है—

मूरख कपि समझा नहीं, सिंह कैसे फल खाय।
आते ही धोके रहा, मुँह में लिया उठाय॥
जब बन्दर हँसने लगा, सिंह पूछत है एम।
आया काल की डाढ़ में, फिर हँसता है केम॥

सिंह के मुख में पहुँचते ही बन्दर समझ गया कि वास्तव में यह साधु नहीं है, इसने कपट किया है। अब क्या करना चाहिए, ऐसे महात्मा से पिण्ड कैसे छुड़ाया जाय ? अन्त में बन्दर ने उससे बचने की एक युक्ति खोज निकाली। बन्दर हा-हा हा-हा करके जोर से हँसने लगा। सिंह को आश्चर्य हुआ। वह

कहने लगा– रे मूर्ख बन्दर! काल के गाल में पहुँच कर भी क्यों तू अट्टहास कर रहा है? तुझ जैसा मूर्ख तो कोई भी न होगा!

तब बन्दर उत्तर दिया, मेरे मन की गुज्झ।
मैं हँसता ज्यूँ तू हँसे, बात सुनाऊँ तुज्झ॥

बन्दर बोला—मैं जैसे हँस रहा हूँ तुम भी यदि वैसे ही हँसो तो मैं अपने मन की बात तुम्हें बताऊँगा।

सिंह तब कुछ समझा नहीं, मुँह दीया पुलकाय।
जिस तरुवर का वानरा, उस पर बैठा जाय॥
अब बन्दर रोने लगा, सिंह पूछत है एम।
गया काल की डाढ़ से, अब रोवत है केम॥

बन्दर के कहने से सिंह मुँह फाड़ कर हँसने लगा। उसी समय बन्दर फुदक कर वृक्ष की उसी शाखा पर जा बैठा जहाँ वह पहले बैठा हुआ था। उसके बाद वह जोर-जोर से रोने लगा। सिंह ने पूछा–जब काल के गाल से निकल कर बच गये तब अब क्यों रोते हो? बन्दर बोला—

रोऊँ तुम सम साधु को, भोरा मिलसी आय।
,जणी दिसा का साधु जी, वणी दिसा में जाय॥

तुम सरीखे कपटी साधु के नाम पर रो रहा हूँ कि कहीं और कोई भोला जीव तुम्हारे इस कपट-जाल में न फँस जाये। आप जिधर से आये हो उधर ही कृपा कर वापस पधार जाइये।

इस प्रकार के मायावी महात्मा क्या वास्तविक महात्मा की उत्कृष्ट पदवी पा सकते हैं? कभी नहीं। कपट पूर्वक की जाने

वाली समस्त क्रिया एक प्रकार से पाप-क्रिया है। लोगों को ठगने की क्रिया है। जो मायावी है वह माया से मुक्त होकर परमात्मा के समीप नहीं पहुँच सकता। परमात्मा निष्कपटता के निकट निवास करता है। कवि ने कहा है—

हर-हर-हर-हर क्या करो, हर हिरदय के मांय।
आड़ी टाटी कपट की, ताते बूझत नांय॥

अर्थात परमात्मा-परमात्मा क्या चिल्लाते हो? परमात्मा तो हृदय में निवास करता है। आत्मा और परमात्मा के बीच जब कपट का आवरण आ जाता है, तो परमात्मा आँखों से ओझल हो जाता है, फिर दृष्टि गोचर नहीं होता। क़ुरानशरीफ़ में भी लिखा है कि परमात्मा तो फड़कती हुई नाड़ी से भी नजदीक है। इस प्रकार परमात्मा के समीप पहुँचने में कपट बाधा डालता है। इसलिए, कपट धर्म का नाशक है। निष्कपटता ही धर्म रूपी सुधा के झरने का उद्गम-स्थान है।

४—निरभिमानता

निरभिमानता में धर्म का रहस्य छिपा हुआ है। अभिमान में धर्म के नाश की प्रतिच्छाया छुपी हुई है। नम्रभाव या गर्व-रहितता उसी में होगी जो ईश्वर के नज़दीक पहुँचने का प्रयत्न करता है। वही कुलीन और जातिमान है जिसमें अभिमान का अभाव हो। कवि कहता है—

नमे सो अम्बा इम्बली, नमे सो दाड़िम दाख।
आक बिचारा क्या नमे, जिसकी ओछी साख॥

टहनियों में फल लगने से आम, इमली, अनार दाख नम्र हो जाते हैं, नीचे झुक जाते हैं। पर क्या पामर आक कभी नमता है ? वह तो नमने से चटाक से टूट जाता है। इसी प्रकार जो उच्च जातीय एवं कुलीन होते हैं उनमें स्वाभाविक नम्रता विद्यमान रहती है। जिसके हृदय में नम्रता नहीं वह आक का साथी है। अभिमानी का सिर सदा नीचा रहता है, क्यों कि उसे लज्जित होना पड़ता है। वह कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकता।

एक समय की बात है। राजा भोज अपने पण्डितों की मण्डली में बैठे थे। उस समय एक पण्डित अभिमान के नशे में चूर होकर कहने लगा—महाराज ! एक दोहा बड़ा बढ़िया है और उसके भाव भी बहुत अच्छे हैं। वह दोहा यह है—

मर्द तो है मूँछ बांका, नैन बांकी गोरिया।
गाय तो है सींग बांकी, रंग बांकी घोरिया॥

अर्थात मर्द वही है जिसकी मूँछें बांकी हों और नारियाँ वही हैं जिसके नेत्र बांके हों, गाय वही है जिसकी सींगें बांकी हों और घोड़ी वही सुन्दर है जिसका रंग मनोहर हो।

पण्डित-मण्डली और महाराज भोज के बीच यह चर्चा चल रही थी कि उसी समय गांडर चराने वाला एक गडरिया गांडर लिए वहां से गुजरा। उसे भी उल्लिखित दोहा सुनाई दिया। वह मामूली पढ़ा-लिखा था यह दोहा उसे बहुत अखरा वह यह कहता हुआ आगे बढ़ा—

चल म्हारी टूँटी, ये चारों बातां झूँठी।

राजा भोज ने यह वाक्य सुना, तो गड़रिया को बुला लाने की आज्ञा दी। वह गड़रिया सभा में लाया गया, भोज ने पूछा—तुम इन चारों बातों को झूठी कैसे कहते हो? गड़रिया ने कड़क कर कहा—

यह पंडित बड़ा अनाड़ी, इसके मारूँ खींच कुल्हाड़ी।
इसने सारी सभा बिगाड़ी, मुख से झूठी बातां काढ़ी॥

महाराज! किसी मर्द की मूँछें हैं तो बांकी, पर यदि वह पशु से भी गया-बीता है, तो उसकी मूँछें किस काम की? किसी स्त्री की आंखें तिरछी हैं और वह कुलटा है, तो उसकी आँखें किस मतलब की? गाय की सींगें बाँकी हैं, पर यदि वह दूध नहीं देती, तो किस काम की? इसी तरह घोड़ी का रंग अच्छा है, पर यदि उसकी चाल गधी सरीखी है, तो वह निकम्मी ही है। अब आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि इन चारों बातों में कहाँ तक सत्य है? पृथ्वीनाथ! ये चार बातें सत्य हैं—

मर्द तो रण-शूर बांका, शील बांकी गोरिया।
गाय तो है दूध बाँकी, चाल बांकी घोरिया॥

मर्द वही है जो युद्ध के समय अपनी शूरवीरता से शत्रुओं के छक्के छुड़ा देता हो। स्त्री वही है जो शीलवती हो। गाय वही है जो दूध देती हो। घोड़ी वही अच्छी है जिसकी चाल अच्छी हो। गड़रिया का यह व्याख्यान सुन कर महाराज भोज बहुत प्रसन्न हुए। यह तो एक उदाहरण है। तात्पर्य यह है कि उस पण्डित ने अभिमान किया था। अत. उसे अपमान सहन करना

पड़ा। इस प्रकार अभिमान में अधर्म और निरभिमानता में धर्म है। जो अभिमान त्याग कर जितना नम्र बनता चला जाता है, वह उतना ही उच्च पद प्राप्त करता है। 'मैं-मैं' करने वाले बकरे का गला काटा जाता है, 'मैंना' कहने से मैना का चाव और लाड़-प्यार से पालन किया जाता है। इस लिए निरभिमानता में ही धर्म है।

५—मानसिक भावों की पवित्रता

धर्म की उत्पत्ति का पाँचवां कारण मानसिक भावों की पवित्रता है। किसी के प्रति बुरे भाव न रखना चाहिए। किसी के अहित का चिन्तन कभी न करना चाहिए। अपने मन को पवित्र भावनाओं से सदा सुवासित रखना चाहिए। हम यदि किसी का बुरा सोचें, तो हमारे सोचने से उसका बुरा न हो जायगा। बल्कि अपनी भावना के दोष के कारण हम अपना ही बुरा करेंगे।

सत्य

धर्म का छठा कारण सत्य है। जहां सत्य है वहां धर्म है, जहां असत्य है वहां अधर्म है। कवि ने कहा है—

सत्य न छोड़ो हो नरा, सत छोड़े पत जाय।
सत की बांधी लक्ष्मी, फेर मिलेगी आय॥

मनुष्य को सत्य का परित्याग करना उचित नहीं, क्योंकि सत्य का परित्याग करने से उसकी पत (मनुष्यता) जाती रहती है। यदि सत्य की रक्षा के लिए लक्ष्मी को भी ठुकरा दोगे, तो

भी वह कहीं जाने वाली नहीं। वह वहीं पड़ी रहेगी। कभी भूल से यदि चली भी गई, तो इधर-उधर चक्कर काट कर फिर उसे वहीं आना पड़ेगा। सत्य की आराधना के लिए महाराज हरिश्चंद्र ने क्या कम कष्ट उठाये थे? यही कारण है कि आज तक वे मानव-समाज के आदर्श पुरुष माने जाते हैं, बच्चा-बच्चा उनके नाम का स्मरण करता और नम्रता से उनके प्रति नत मस्तक हो जाता है। इस अनादि कालीन जगत् में अगणित मनुष्य उत्पन्न हुए और चले गये। उनका नाम आज कौन जानता है? पर सत्य पर अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले महान् पुरुष को कोटि-कोटि मनुष्य आदर और श्रद्धा के साथ स्मरण करते नहीं थकते। यह सब सत्य-धर्म का महात्म्य है। सत्य को धारण करने से मनुष्य इस लोक और परलोक में अपरमित सुख का अनुभव करता है। कोई मनुष्य सत्य-धर्म की आराधना तो न करे और सुख-वैभव की आकांक्षा करे, तो महाराणा साहब! आप ही कहें उसे सुखों की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? चिट्ठी मिली आटे की और कोठारी से मांगा घी-शक्कर! कहिये कहीं घी-शक्कर मिलेगा? नहीं। इसी प्रकार जिसने अधर्म का सेवन कर दुखों का सामान इकट्ठा किया है, वह सुख कैसे पा सकेगा? धर्माचरण और अधर्माचरण की यह विशेषता यदि हम जरा सूक्ष्म दृष्टि से देखें, तो हमें प्रत्यक्ष दिखाई देगी। जगत् में धनवान और निर्धन, श्रीमान और अकिंचन आदि की जो विषमता दृष्टिगोचर होती है, उसके मूल में धर्म और अधर्म ही सन्निहित हैं।

महाराणा साहब ! पूर्व जन्म में आपने जो सुकृत किये थे, उन्हीं के फलस्वरूप आप इस जन्म में छत्रपति बने हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि अब भी आप धर्मोपार्जन करते हैं। फिर भी मैं तो अधिक से अधिक धर्माराधना की प्रेरणा करता हूँ। धर्मोपार्जन की साधना करते समय कभी-कभी साधक को कष्टों का सामना अवश्य करना पड़ता है, पर वे कष्ट वास्तव में उसकी दृढ़ता की कसौटी होते हैं, जो इस कसौटी पर खरे उतरते हैं वही धर्म का लाभ प्राप्त करते हैं। सीता को अग्निकुण्ड में गिरते समय अवश्य कुछ कष्ट झेलना पड़ा था, परन्तु अन्त में अग्नि जल के रूप में परिणत हो गई। कवि ने कहा है—'दिन दौरा दस बीस' कहा जाता है कि रानी पद्मिनी ने अग्नि में तीन सौ रानियों के साथ अपने शरीर की आहुति दे कर अपने धर्म की रक्षा की थी।

अपनी आत्मा के समान दूसरे की आत्मा को समझ कर उसकी रक्षा करना धर्म है। दूसरे के दुःख को अपने दुःख की तरह समझना चाहिए। यही समझ धर्म को उत्पन्न करने वाली है। गीता में कहा है—

आत्मपम्येन सर्वत्र समं पश्यथि योऽर्जुनः।

जिसके दिल में दया नहीं, उसके दिल में दयालु (भगवान्) कैसे रह सकते हैं ? समस्त शास्त्रों और ग्रंथों का सार दया में आ जाता है। दया ही सम्पूर्ण शास्त्रों का सार है। कवि ने कहा है—

भावे जाओ द्वारका; भावे जाओ गया।
कहत कबीरा है सुनो, सब में मोटी दया॥

चार वेद मुख से पढ्या, समझ बिना सब झूठ।
जीव-दया पाली नहीं, तो सब माथा कूट॥

चाहे जिस शास्त्र को पढ़ जाओ, चाहे जिस तीर्थ की यात्रा कर आओ, यदि दिल में दया नहीं, दूसरे के दुःख को अपना दुःख नहीं समझते, तो सब वृथा है।

७—संयम

इसी प्रकार संयम से भी धर्म की उत्पत्ति होती है। पागल कुत्तों की भांति इधर-उधर भटकने वाली इन्द्रियों को अपने आधीन रखना, स्वयम् कामनाओं का ग़ुलाम न बन जाना—यह संयम है और धर्म की एक अनिवार्य शर्त है।

८—तपस्या

तपस्या भी धर्म का साधन है। संसार में रह कर प्रत्येक प्राणी को थोड़े-बहुत जो कष्ट उठाने पड़ते हैं, यदि उन्हीं कष्टों को शान्ति-पूर्वक अखिन्न मन से सहन किया जाय तो यह भी तपस्या ही है। इस तपस्या से आत्मा में बल, सहिष्णुता और संयम आदि सद्गुणों की साक्षात् उत्पत्ति होती है।

इसी प्रकार त्याग-धर्म (९) का आचरण करने एवं ब्रह्मचर्य (१०) का पालन करने से भी धर्म की प्राप्ति होती है। धर्म ही इस असार संसार को स-सार बना सकता है। धर्म से उत्कृष्ट और कोई भी जीवों का दूसरा मित्र नहीं है। धर्म ही मनुष्य को दुर्गति में पड़ने से बचाता है। परलोक में परम सहायक

और सच्चा सखा बस एक ही है और वह है धर्म। अतएव जिन्होंने पुण्योदय से नर - भव प्राप्त किया है, जिनमें अपने हिताहित के विवेक की शक्ति है और जो आत्मा के कल्याण की कामना करते हैं, उन्हें सद्धर्म की अद्वितीय शरण ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार उपदेश फ़रमा कर मुनि श्री स्वस्थित स्थान पर पधार गये।

कार्तिक शुक्ला १५ को महाराणा साहब ने पुनः उपदेश श्रवण करने की आकांक्षा की। मुनिराज सूर्य गवाक्ष महल में पधारे। महाराणा साहब ने मुनिराज की यथोचित विनय-भक्ति की। महाराणा साहब के यह पूछने पर कि 'काले विहार करीने कठिने पधारोगा ?' मुनि श्री ने हाथीपोल, ब्राह्मणपोल होते हुए नाई की ओर जाने का अपना भाव व्यक्त किया। महाराणा साहब ने फिर पूछा—'वठे से फेर कठिने पधारोगा ?' मुनि श्री ने फ़रमाया—मन्दसौर की ओर जाने का विचार है। वहाँ का श्री संघ युवाचार्य पदवी-महोत्सव करने की तैयारी कर रहा है। हम सब साधु आमन्त्रित किये गये हैं। अतः हमारे आचार्य श्री खूबचन्द जी महाराज उधर बुला रहे हैं।' फिर मुनि श्री का उपदेश आरम्भ हुआ—

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशु जालम्॥

क्षत्रिय - कुल - दिवाकर मेवाड़ाधिपते !

इस मंगलाचरण में स्तुतिकार ने यह प्रतिपादन किया है कि माता मरुदेवी ने जैसे पुत्र "ऋषभदेव" को जन्म दिया, वैसा पुत्र जनने के लिए भारतवर्ष में उस समय कोई दूसरी जननी समर्थ नहीं थी। ऋषभदेव की उपमा स्वयं ऋषभदेव ही हैं, किसी और से उनकी उपमा नहीं दी जा सकती। उसी क्षत्रिय-वंश से यह आपका वंश चला आरहा है। इन्हीं संसारी आत्माओं में से अपनी आत्मा की विशुद्धि कर के वे परमावतार हुए हैं। इसी मनुष्य-देह से अवतार बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है। देव-गति में धर्म - क्रिया नहीं होती, वह एक प्रकार से भोग-योनि है। उसमें आत्म-कल्याण के लिए अनुष्ठान नहीं होते। नरक - गति में तो धर्मानुष्ठान की सम्भावना ही क्या है ? वहाँ पूर्वोपार्जित पाप-कर्मों का फल भोगने से ही विश्राम नहीं मिलता है। तिर्यंचों में भी धर्मोपार्जन नहीं होता, क्योंकि इनमें उत्कृष्ट विवेक बुद्धि का अभाव है। अतः धर्मोपार्जन कर के नर से नारायण बनने का सौभाग्य इसी मानव-जाति को प्राप्त होता है। इसी लिए ज्ञानी जनों ने कहा है कि मनुष्य-जन्म मिलना अत्यन्त कठिन है। यदि मनुष्य-जन्म मिल गया और आर्य-भूमि नहीं मिली, तो वह मनुष्य-जन्म वृथा हो जाता है। जितने भी धर्मावतार हुए हैं, वे इसी आर्यावर्त में उत्पन्न हुए हैं। अनार्य देश में मनुष्य, मनुष्य को मार कर खा जाता है। वहाँ के लोग न धर्म को समझते हैं, न कुल-मर्यादा को। जहां ईश्वर और धर्म का नाम लेने में पाप

समझा जाता हो, ऐसे अनार्य देश में आत्मा को यदि मनुष्य-जन्म मिल भी गया तो भी वह निरर्थक है। आर्यभूमि भी कदाचित् मिल गई, पर उत्तम कुल की प्राप्ति न हुई तो भी वह वृथा है। नीच कुल में जन्म लेने से यदि धर्म भी हाथ लगा, तो वह कूड़ा-पंथ, काँचलिया पंथ या ऐसा ही और कोई पंथ हाथ लगेगा। कोई अपनी धर्म-पुस्तक में लिखते हैं कि—

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा, यावत्पतति भूतले।
पुनरुत्थाय पुनः पीत्वा स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः ॥

अर्थात्—मदिरा पियो, खूब पियो, बार बार पिये जाओ। नशे में बेहोश होकर यदि जमीन पर गिर पड़ो तो उठ कर फिर मदिरा पियो। ऐसा करने से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

जिन लोगों का ऐसा सिद्धान्त है उनका उद्धार भला कैसे हो सकता है? उन्हें धर्म के प्रति रुचि कैसे उत्पन्न हो सकती है? सांठा गन्ना अमीर और गरीब सबको पसन्द आता है। सभी को वह मिष्ट लगता है, पर वही गन्ना ऊँट को एकदम नापसन्द है! मिश्री जैसी मिठास से भरी हुई वस्तु भी गधे को अच्छी नहीं लगती। जबर्दस्ती गधे को यदि मिश्री खिला दी जाय तो वह मर जाता है। इसी लिए लोग कहते हैं—"गधा मिश्री से मर जाय!" बादामों का हलुवा बालक-बूढ़े सभी को मधुर लगता है, पर वही हलुवा ज्वर के रोगी को कटुक मालूम होता है। वास्तव में हलुवे का कोई दोष नहीं, दोष है

केवल उसके मुखके विकार का। इसी प्रकार, धर्म उसी को प्रिय लगेगा जिसका पापरूपी बुखार उतर गया हो। हम सभी को उपदेश देते हैं, पर उसका प्रभाव उन्हीं पर होता है जिनका पाप-ज्वर उतार पर होता है। एक बार एफ० जी० टेलर साहब ने साँसियों को उपदेश सुनाने को कहा। हमने उन्हें भी उपदेश दिया चित्तौड़ में एक बार श्री यशवन्तसिंह जी की प्रेरणा से सभी क़ैदियों को उपदेश सुनाया। तात्पर्य्य यह है कि उत्तम कुल के साथ उत्तम धर्म और उत्तम विचार मिलते हैं। इसी लिए मनुष्य जन्म और आर्य भूमि के साथ साथ उत्तम कुल की प्राप्ति होना सौभाग्य की बात मानी गई है। उक्त तीनों की भी कदाचित प्राप्ति होजाय, पर यदि लम्बी आयु न हुई तो उनकी प्राप्ति भी निरर्थक हो जाती है। यदि कोई मनुष्य-जीव गर्भ में ही मरण शरण होजाय या प्रातः जन्म लेकर शाम को काल का कवल बन जाय तो उसके लिए उक्त तीनों कुछ भी कार्यकारी नहीं हो सकते। आपके ही पुरखों में सज्जनसिंह जी हो गये हैं। उनके पुत्र जन्मा। प्रातःकाल धूमधाम से महोत्सव मनाया गया और शाम को उनका स्वर्गवास होगया। उन्हें मनुष्य-जन्म मिला, आर्यभूमि की प्राप्ति हुई, सूर्यवंश जैसे उत्तम कुल का राजघराना मिला, पर अत्यल्प आयु होने से सब व्यर्थ हुए। अतएव इन तीनों के साथ लम्बी आयु की भी आवश्यकता है।

मास दो मास के लड़के मर जाते हैं। उन्हें लम्बी आयु

नहीं मिलती, इसका कारण यही है कि उन्होंने पूर्व जन्म में यथेष्ट पुण्य उपार्जन नहीं किया । थोड़े से पैसे देकर बाजार से 'कटपीस' का सड़ा गला कपड़ा लाया और उसका कुर्ता बनवा कर पहना । इधर से खींचा, उधर फटा, उधर से खींचा इधर फटा । पहनने वाला कहता है—हाय ! मेरा नया कुर्ता फट गया ! मगर वह यह नहीं जानता कि थोड़ा सा मूल्य देने का यह परिणाम है । अधिक खर्च करता, कपड़ा टिकाऊ मिलता । बस, मानव-शरीर भी कपड़े के समान है । गीता में कहा है—

> वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
> नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
> तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य,
> न्यानि संयान्ति नवानि देहिनः ॥

जैसे फटे हुए वस्त्रों का त्याग करके मनुष्य अन्य नवीन वस्त्रों को ग्रहण कर लेता है वैसे ही जीर्ण-शीर्ण शरीरों का नाश होने पर जीव नये शरीर को धारण कर लेते हैं ।

जिसने धर्मोपार्जन कर लम्बी आयु रूप वस्त्र को खरीदा है उसकी आयु जल्दी समाप्त नहीं होगी । धन के अनुसार जैसे रेल में किसी को पहिला दर्जा, किसी को दूसरा दर्जा और किसी को तीसरा दर्जा मिलता है, वैसे ही जिसने खूब धर्मोपार्जन किया है उसे लम्बी आयु मिलेगी । यदि किसी को लम्बी आयु भी मिल गई, पर शरीर के अंगोपांग अविकल न हुए—कानों से बहरा, आखों से अंधा या गूँगा हुआ तो उसका

मानव-जन्म, आर्यभूमि, उत्तम कुल, और दीर्घ आयु भी व्यर्थ हैं। अतः इनके साथ ही साथ अंगोपांगों की परिपूर्णता भी आवश्यक है। सौभाग्यवश यदि अंगोपांग भी परिपूर्ण प्राप्त हो गये तो नीरोग अवस्था सदैव रहना कठिन है। नीरोग अवस्था के विना प्रायः मानसिक समाधि नहीं रहती और मानसिक समाधि के विना धर्मोपार्जन नहीं हो सकता। जो ज्वर से पीड़ित है, या पेट का दर्द जिसका पिण्ड नहीं छोड़ता, प्रायः वह आर्तध्यान में लीन बना रहता है। ऐसी दशा में वह क्या खाक धर्म का उपार्जन करेगा! इसी लिए भगवान् महावीर ने कहा है—

जरा जाव न पीडेइ, वाहीं जाव न वड्ढइ।
जाविंदिया न हायन्ते, ताव धम्मं समायरे॥

अर्थात् जहां तक वृद्धावस्था आ कर पीड़ा न पहुँचाये, जहाँ तक व्याधि शरीर में डेरा न डाल पाये, इंद्रियाँ हीन न होने पायें—वहां तक धर्म का आचरण कर लो। इनके आने पर धर्माचरण बनना कठिन है।

इस प्रकार नीरोगावस्था मिलना आवश्यक है। कदाचित भाग्य योग से उल्लिखित सबकी प्राप्ति हो जाय, पर सद्गुरु की प्राप्ति होना सबसे कठिन है। बिना सद्गुरु के पथ-प्रदर्शन कौन करेगा? पथ-प्रदर्शक के बिना उद्देश्य की सिद्धि असम्भव है, हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते, कोई राह बतलाने वाला अवश्य चाहिए। अब प्रश्न यह खड़ा होता

है कि सद्गुरु किसे माना जाय ? उत्तर इसका यह है कि जिसमें आठ बातें पाई जायँ वही सद्गुरु कहलाता है। पहली बात है निष्कामता—जिसे किसी वस्तु की चाह न हो। समय पर जैसा भी रूखा-सूखा मिल गया उसे खाकर प्रभु की भक्ति में तल्लीन रहे। ऐसा न हो कि—

कान्या मान्या कुर्र, तू चेला मैं गुर्र।
रुपयो नारियल पगे धर्र, भावे डूब के तर्र॥

जो दूसरे दिन खाने की भी आशा न रखे और न संग्रह करे। भागवत् में भी पिंगला के व्याख्यान में साधु को संग्रह करने का निषेध किया गया है। साधुओं को भूख-प्यास, सर्दी गर्मी आदि के अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं। सच्चे साधु वही हैं जो उन्हें समता भाव पूर्वक सहन कर लें। सं० १९८२ में हमने उदयपुर में चातुर्मास किया था। आसौज महीने में आपके पितृवर्ण महाराणा श्री फ़तहसिंह जी साहब ने व्याख्यान श्रवण किया था। उस समय महाराणा साहब बोले—'ऐसी गर्मी में आप पधारिया, अबे आपको ऐसी गर्मी में नहीं पधरावांगा।' मैंने कहा—'हम लोग तो वैशाख और ज्येष्ठ मास में भी विहार करते हैं। साधुओं का शरीर परोपकार के लिए है। हम लोग सर्दी-गर्मी की परवाह नहीं करते।' अस्तु। जिसमें सत्य हो, कपट न हो, निरपेक्षिता हो, न्यायनिष्ठता हो, नम्रता हो, जो सबके प्रति प्रिय वादी हो, दूसरे के दुःख को अपना ही दुःख समझे—वही सद्गुरु की उच्च पदवी पाने

का अधिकारी हो सकता है। ऐसे सद्गुरु की सत्संगति होने से सम्य, ज्ञान की प्राप्ति होती है। मगर विविध प्रकार के विकारों से भरपूर इस संसार में सत्संगति की प्राप्ति होना भी बड़ा कठिन है। बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जिनसे यदि यह पूछा जाय कि भाई, तुमने कभी सत्संग किया है?—तो वे उत्तर में कहेंगे, हाँ, सत्संग किया है। पहले गांजा पीना नहीं जानते थे सो सत्संगति से वह सीख लिया है। भांग छानना पहले नहीं आता था, अब वह भी सीख गये हैं। बलिहारी है ऐसी सत्संगति की जो नये-नये अवगुणों को उत्पन्न कर मनुष्य की मनुष्यता को बर्बाद कर देती है! वास्तव में सत्संगति वही है जो पहले से विद्यमान दोषों को नष्ट कर दे। भंगेड़ी की भंग पीने की लत मिटादे, गँजेड़ी की गाँजा पीने की कुटेव पर मेख मारे। जो आषाढ़ में बीज बोयेगा वही कार्तिक में उसके फल पायेगा। जिसने बीज ही नहीं बोया उसे क्या खाक धान्य प्राप्त होगा? इसी प्रकार, जो धर्मोपार्जन करेगा उसी को सत्फल की प्राप्ति होगी।

एक राजा था। वह अपने जागीरदार पर किसी कारण रुष्ट होगया। उसकी जागीर छीनने के लिए राजा ने एक उपाय सोचा। उसने जागीरदार से चार वस्तुयें मँगवाईं—(१) यहाँ है पर वहाँ नहीं, (२) वहाँ है पर यहाँ नहीं, (३) यहाँ भी नहीं और वहाँ भी नहीं और (४) यहाँ भी है और वहां भी है। राजा ने जागीरदार को यह कहला भेजा कि तुमने

ये चार चीजें न भेजीं, तो तुम्हारी जागीर ज़ब्त कर ली जायगी। राजा के इस विचित्र आदेश को पा कर जागीरदार बड़े पशोपेश में पड़ गया। वह परिश्रम पूर्वक चारों वस्तुओं को ढूँढ़ने लगा। उसने सोचा, जो यहां भी है और वहां भी है ऐसी वस्तु तो गुड़, घी, शक्कर आदि बहुत हैं, पर वह वस्तु कहां पाऊँ, कहां से लाऊँ जो यहां भी नहीं और वहां भी नहीं। उसकी समझ में कुछ न आया, इस लिए वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रहा। अन्त में उसने गांव के सब लोगों को इकट्ठा किया और यह जटिल समस्या उनके सामने रखी। सभी लोग भौचक्के हो रहे, पर एक बूढ़े सेठ जी राजा का मतलब ताड़ गये। बोले—ठीक है, राजा साहब की मँगाई हुई वस्तुयें मैं उनके पास समय पर भेज दूँगा। जागीरदार कुछ विस्मित तो हुआ, पर उसकी चिंता बहुत कुछ कम हो गई। निश्चित समय पर सेठ जी अपने साथ एक वेश्या, एक योगी और एक भिखमंगे को ले कर राजा के समीप जा पहुँचे। राजा की आज्ञा प्राप्त होने पर सेठ जी जागीरदार की ओर से उसके सामने उपस्थित हुए। कहा—हुजूर आपकी मँगवाई हुई चारों वस्तुयें मौजूद हैं। (१) पहली वस्तु जो यहां है और वहां नहीं, यह वेश्या है। यहाँ इस लोक में यह आनन्द भोगती है, दस-दस भँडुओं की हथेलियों पर थूकती है, पर वहां, परलोक में इसे कुछ भी नहीं मिलने का! (२) दूसरी वस्तु यह योगीराज हैं जिनके पास यहां

तुम्बा और झोली के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, पर इस तपस्या के प्रभाव से वहां सब प्रकार के ठाट-बाट हैं। (३) तीसरी वस्तु यह मँगता है जिसे यहां भी भर पेट खाना नहीं मिलता और परलोक में भी धर्मोपार्जन न करने के कारण कुछ हाथ लगने का नहीं। अतएव यह यहां भी नहीं और वहां भी नहीं। (४) चौथी वस्तु मुझे ही समझिये। मेरे यहां भी सब प्रकार के वैभव हैं और वहां, परलोक में भी आनन्द मंगल होगा, क्योंकि मैं दान, दया, परोपकार आदि पुण्य-कर्म करने में कोई कोर-कसर नहीं रखता। अतः मैं यहां भी हूँ और वहां भी हूँ।

यह दृष्टान्त है। इसका दार्ष्टान्तिक यह है कि जो कर्म पहले किया है, उसका फल तो इस जन्म में मिल ही रहा है और जो कर्म इस जन्म में करेंगे उसका फल परलोक में मिलेगा। यह एक कसौटी है जिस पर प्रत्येक आदमी अपने आप को परख सकता है कि वह किस श्रेणी में है और किस श्रेणी में रहना चाहिए। पहली श्रेणी में मनुष्य को रहना उचित नहीं है, क्योंकि यहां मौज-मजा लूटने के बाद उसे नरक का मुँह देखना पड़ेगा। नरक में कैसे विक-राल जीवों से पाला पड़ता है, वहां कैसी भीषण यातनायें भुगतनी पड़ती हैं—इसकी साक्षी सूत्रकतांग सूत्र और गरुड़-पुराण दे रहे हैं। अतएव प्रथम श्रेणी में रहना मनुष्य के लिए परिणाम में अत्यन्त ही दुःखजनक है। दूसरी श्रेणी

भी विवेकियों को पसन्द नहीं करनी चाहिए । तीसरी श्रेणी इस बात की है कि यहां नहीं और वहां है । इसमें वही जीव होते हैं जिन्होंने पूर्व जन्म में धर्मोपार्जन नहीं किया, पर आगामी भव के लिए जप-तप आदि धर्मक्रिया कर रहे हैं। इस श्रेणी के प्राणी बहुत हैं और प्रत्येक बुद्धिमान को कम से कम इस श्रेणी का तो बनना ही चाहिए, क्योंकि पूर्व जन्म को सुधारना अब हमारी शक्ति से बाहर है । चौथी श्रेणी सर्वोत्तम है । इस श्रेणी में बहुत कम व्यक्ति होते हैं, किन्तु जो भी होते हैं वे पूर्व कृत सुकृत के सुन्दर फलों को इस भव में भोगते हैं और साथ ही आगामी भव के लिए भी सचिन्त रह कर उसे सुधारने का अवसर कभी अपने हाथ से नहीं जाने देते। आपके एक वचन मात्र से धर्मोपार्जन हो सकता है । बड़ों की उँगली के इशारे से ही हजारों जीवों को अभयदान मिल सकता है। बेचारे गूँगे प्राणी तड़फड़ा कर, बिलबिला कर अपनी जान गँवा देते हैं। उन दीन-हीन प्राणियों के पास रँभाने के अतिरिक्त और सामर्थ्य ही क्या है ? जगत् में मनुष्य सर्वोत्तम श्रेणी का गिना जाता है; पर क्या मनुष्य की उत्तमता यही है कि वह अपने से कम शक्तिमग्न प्राणियों का निर्दयता के साथ विध्वंस करे ? यदि मनुष्यता की उत्तम कसौटी यही हो, तो यह संसार कितना बीभत्स है, कितना गन्दा और कितना भयंकर हो जायगा ? ऐसी दशा में क्या कोई सुख की नींद सो सकेगा ? क्या जीवन शान्ति पूर्वक व्यतीत किया जा सकेगा ? फिर मनुष्य

और हिंस्र पशु में क्या विशेषता रह जायगी ? यह दया-देवी का ही पुण्य-प्रसाद है कि जगत् विध्वंस होने से बचा हुआ है। यदि देवी-दया क्षण भर के लिए अपना वरद कर-कमल हमारे मस्तक पर से हटा ले, तो प्रलय मच जायेगी। मनुष्य, मनुष्य का ख़ून पी जायगा। सबल निर्बल को हड़प लेगा। जहां जितनी मात्रा में दया भगवती की आराधना कम होती है, वहां उतनी ही मात्रा में सब बातें पाई जाती हैं। अतः प्रत्येक सुख-शान्ति के अभिलाषी का यह कर्तव्य है कि वह अधिक से अधिक परिमाण में दया-देवी का प्रसार करे। हमारी दया-भावना मनुष्यों तक या अपना स्वार्थ-साधन करने वाले पशुओं तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिए, वरन् प्रत्येक छोटे से छोटे प्राणी से लेकर बड़े से बड़े प्राणी तक उसका विस्तार होना चाहिए। दया-भावना का जितना अधिक विकास होगा, उतना ही अधिक मनुष्यता का भी विकास होगा।

प्रत्येक प्राणी सुख की कामना करता है। दुःख किसी को रुचता नहीं है। अपनी उँगली में ज़रा सी फांस लग जाती है, तो कितना कष्ट होता है ? हमें रात भर नींद नहीं आती। तो भला वे बेचारे ग़रीब अनाथ मूक प्राणी तलवार, बन्दूक़, बर्छी, भाला, छुरा आदि का भोंकना किस प्रकार सहन करते होंगे ?

मुनि श्री के इस हृदय-द्रावक उपदेश को सुन कर महाराणा साहब ने कहा—"मैं विशेष शिकार नहीं करूँ हुँ, क्योंकि विचारां कणि कि टाँग टूट जाय, कणि की पांख कट जाय,

बेचारा तड़फी-तड़फी ने मरे। मैं हिरण की भी शिकार नी करूँ। शेर नुकसान करे और लोग अर्जी देवे जद वांको मन राखवा जाणो वे जाय, परन्तु खेलवा में हमेशा संकोच राखूँ हूँ।" मुनि श्री ने फ़रमाया—"आप बड़े दयालु हैं। आप शिकार खेलने में सङ्कोच रखते हैं, यह आपका अच्छा विचार है। दया ही परलोक में सुख देने वाली सम्पदा है।"

जो लोग हिंसा कर के दुष्कर्म बांधते हैं, उन्हें वह क़र्ज़ ब्याज सहित अवश्य ही चुकाना पड़ता है। कर्म न तो रईस को गिनता है और न सईस को ही, वह तीर्थंकरों और अवतारों की परवाह नहीं करता। कर्म का फल तो प्रत्येक को भुगतना ही पड़ता है। चित्रकेतु राजा का जिक्र है—जिसका उल्लेख रामायण के एक छोटे गुटके में भी आता है। वह यों है—

चित्रकेतु एक राजा था। उसके कोई सन्तान न थी। राजा और रानी दोनों को पुत्र की कामना रहती थी। राजा ने एक बार ऋषियों को इकट्ठा कर उनसे पूछा कि पुत्र होगा या नहीं? ऋषियों ने उत्तर दिया कि और विवाह किया जाये। राजा ने दस स्त्रियों के साथ ब्याह किया, किन्तु फिर भी पुत्र उत्पन्न न हुआ। सौ के साथ विवाह किया, फिर भी पुत्र का सौभाग्य उसको न मिला। इस प्रकार उसने हजारों, लाखों, करोड़ों स्त्रियों से विवाह कर डाला। करोड़वीं रानी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा की प्रसन्नता का पारावार न रहा। राजधानी और समस्त राज्य में पुत्रोत्पन्न होने की धूम मच गई। जिस रानी से पुत्र उत्पन्न हुआ,

उस पर राजा का विशेष स्नेह हो गया। ईर्ष्या के कारण अन्य रानियां इसे सहन न कर सकीं। उन्होंने सोच-विचार कर यह निर्णय किया कि पुत्र को विष दिला कर मरवा दिया जाये। इससे राजा का प्रेम सब रानियों पर एक सा हो जायगा। यही किया गया और राजकुमार को विष दे दिया गया। राजकुमार चल बसा। जब इस बात का पता उसकी माता और दासियों को चला, तो रोने-धोने के सिवाय और चारा ही क्या था? राज-महलों और नगर में सन्नाटा छा गया। राजा सिसकियां भर-भर रोने लगा। राज्याधिकारियों ने बहुत देर हो जाने के कारण शव का अग्नि-संस्कार करने की प्रार्थना की। राजाने कहा—नहीं, अभी नहीं। जब तक यह अपने मरने का हाल स्वयं नहीं कहेगा, तब तक अग्नि-संस्कार नहीं करने दूँगा। ऋषि एकत्र हुए। उन्होंने कुछ प्रयोग कर के शव को सचेतन किया। राजा ने पूछा—"लाल, मेरे प्राणों के प्राण, तू क्यों मर गया?" राजकुमार ने उत्तर दिया—"दोष किसी का नहीं, मैंने जैसा किया था, वैसा फल पाया है। पूर्व जन्म में मैं तापस था। किसी ने मुझे खाने के लिए एक फल दिया। उसे चीरा तो देखा कि उसमें लाखों कीड़ियां थीं। मैंने उसे ज्यों का त्यों आग में पटक दिया। इसके फल-स्वरूप वे समस्त कीड़ियां मेरी माताएँ हुई हैं। मैंने उन्हें अग्नि में भस्म कर दिया था, आज उन्होंने मुझे जहर दे दिया।" इतना कह कर राजकुमार फिर शव का शव हो गया। तब उसका अग्नि-संस्कार किया गया। तात्पर्य यह है कि जो जैसे कर्म

करता है, उसे उन्हीं कर्मों के अनुरूप फल भुगतना पड़ता है। कर्मों का बांध लेना तो आसान है, पर उन्हें भोगते समय छठी का दूध याद आता है। शाम के समय हलवाई की दूकान पर गये, कह दिया तोल दे आठ आने के गुलाबजामुन। हलवाई ने तोल दिये, दाम उसके नाम लिख लिये। यों करते-करते एक महीना हो गया। हलवाई वही लेकर आया कि दीजिये पंद्रह रुपये। ऐं—अजी, ऐं क्या, खाते समय पता नहीं था? इसी प्रकार पाप करते समय जीवों को भान नहीं रहता, पर भोगते समय आंसू बहाने पड़ते हैं। अतएव मनुष्य को परिणामदर्शी बन कर पहले ही सावधान रहना चाहिए। धर्मोपार्जन करने में तनिक भी ढील नहीं करनी चाहिए। यही मनुष्य की मनुष्यता है। भला उम्र का क्या भरोसा? कौन जाने कब सांस रुक जाय और सारे मन्सूबे मिट्टी में मिल जायें? बड़े-बड़े महापुरुष, बड़े-बड़े बादशाह और राजा-महाराजा सब काल के विकराल गाल में चले गये। काल के आगे किसी की दाल नहीं गलती। कहा है—

छुपे रहते थे महलों में जो हो गलतान ऐशों में,
दिखाते मुँह न सूरज को उन्हें भी काल ने हेरा।
लगाता दिल तू किस पर है जहां में कौन तेरा है?
सभी मतलब के गर्जी हैं किसे कहता तू मेरा है?

मदिरा-पान भी मनुष्य की मनुष्यता को नष्ट कर देता है। इसके सेवन से मनुष्य बेभान हो जाता है। मदिरा-पान में हिंसा का बड़ा भारी पाप तो विद्यमान रहता ही है। पैसे खर्च करना और

ऊपर से बेभानता मोल लेना—यह बुद्धिमत्ता नहीं है। बहुत से लोग मदिरा-पान कर के ज़मीन पर गिर पड़ते हैं। उन्हें इस बात का भी पता नहीं रहता कि यह ज़मीन शुद्ध है या अशुद्ध। हम एक मोटा सा उदाहरण देते हैं जिससे बात आसानी से समझी जा सके। वह यह है कि यहां के मन्दिर में कोई शराब की बोतल नहीं ले जा सकता। जब यहाँ यह बात है, तो फिर वहाँ वैकुण्ठ (स्वर्ग) में मदिरा पीने वाले को कौन घुसने देगा? महुआ आदि उपादानों को ख़ूब सड़ा कर शराब बनाई जाती है। सड़ने पर उनमें अगणित कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। उसके बाद उन कीड़ों के साथ महुआ आदि का अरक़ खींचा जाता है—तब मदिरा तैयार होती है। पीने वाले इस हिंसा से मुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि शराब की उत्पत्ति के मुख्य कारण वही हैं, उनके लिए ही यह हिंसा की जाती है।

यह उपदेश श्रवण कर महाराणा साहब ने फ़रमाया—"मैं मदिरा नहीं पिऊ हूँ, कतराई वर्ष वे गया है।" श्री गिरधारी सिंह जी ने कहा—"बड़ो हुक्म, छै वर्ष हो गये हैं!" महाराणा साहब ने कहा—"छै वर्ष सूँ भी ज्यादा वे गया है। छोटा लोग तो अबे पीवो छोड़ रह्या है। भील लोग भी अणि दारू ने छोड़ रह्या है। जो ऊँचा दर्जा की दारू कै है वणी में हिन्दू के नहीं खावा जसी चीज पड़े है। मैं तो घणा बरसां से पीणो छोड़ दियो है।"

मुनि श्री ने महाराणा साहब को इस त्याग के लिए

धन्यवाद दिया और बोले—जब आप स्वयं नहीं पीते हैं तो पास वाले सभी लोगों का कर्त्तव्य है कि वे भी मदिरा-पान का परित्याग कर दें। जब मालिक ही न पिएँ तो औरों को क्यों पीना चाहिए ? भजन में कहा है—

हो सरदार थें तो दारुड़ा मत पीजो म्हां का राज। टेर।

आम फले परवार से रे, मउआ फले पत खोय।

जांका पानी पीवता रे तामें बुद्धि किं होय !

अर्थात्—आम के फल जब लगते हैं तो पत्ता आदि परिवार के साथ लगते हैं और महुआ जब लगते हैं तो पत्ता आदि परिवार का पहले नाश करके फिर लगते हैं। जब महुआ फल पहले ही अपने परिवार का नाश कर देता है तो उसका पानी (शराब) पीनेवाले का कल्याण कैसे करेगा ? मदिरा-पान से अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक हानियाँ होती हैं।

इस प्रकार मुनि श्री का उपदेश समाप्त हुआ। महाराणा साहब ने, एकलिंग जी के प्रसाद में से, प्रसाद बहराया और मुनिराज अपने निवासस्थान पर पधार गये।

२७ दिसम्बर, १६३४ को हिज हाइनेस महाराजाधिराज महाराणा साहब सर भूपाल सिंह जी बहादुर, जी. सी. एस. आई., के. सी. आई. ई., उदयपुर, शिकार खेलने के लिये जयसमुद्र पधारे। मगसर सुदी ८ को उदयमूल नामक पहाड़ियों में से एक बड़ा भारी सामर दरबार के सम्मुख आया तो पास वालों ने कहा—सामर बहुत बड़ा आया हुआ है; इसका शिकार कीजिये।

दरबार ने फ़रमाया, जब यह अमुक जगह आयेगा तब शिकार करेंगे। भावी वश, वह सांभर दरबार के सांकेतिक स्थान पर भी आ गया। दरबार ने उसे मारने के लिए बन्दूक उठाई। किन्तु तुरन्त ही उन्होंने बन्दूक रख दी और श्री गिरधारी सिंह जी से बोले, चौथमल जी महाराज को सूचित करें कि मैंने इस जीव को अभयदान दिया है।

३१ जनवरी, १६३५ को जैन-दिवाकर जी नाथद्वारे से विहार कर के कोठारिये जा रहे थे। कोठारिये रावत जी साहब का ऐसा ही आग्रह था। मुनि श्री के साथ में श्रद्धाशील नर-नारियों का एक समूह था। रास्ते में ही श्रीमान् रावत जी साहब मिल गये। वे मोटर से महाराणा साहब की सुख-शान्ति पूछने उदयपुर जा रहे थे। मुनि श्री को देखते ही वे मोटर से उतर पड़े, नमस्कार किया और हाथ जोड़ कर बोले—आप तो हमारे गाँव को पवित्र करने के लिये पधार रहे हैं और मैं महाराणा साहब की सेवा में उदयपुर जा रहा हूँ। इधर उनका स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं है, सुख-शान्ति पूछनी है। इतनी खुशी अवश्य है कि आपके सद् उपदेश से मेरी प्रजा को बहुत लाभ होगा। अवसर ऐसा है कि मैं इस सौभाग्य से वंचित हो रहा हूँ। इतना कह कर रावत जी साहब ने पुनः नमस्कार किया और उदयपुर की ओर रवाना हुए।

सीतामऊ-नरेश

संवत् १६६१ में जैन-दिवाकर जी सीतामऊ पधारे। वहां

सीतामऊ दरबार, उनके राजकुमार और महारानियों ने लगभग सवा घण्टे तक मधुर उपदेश श्रवण किया। उनका चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ।

२६-३-३५ को मुनि श्री भारखेड़ी पधारे। मुनि श्री के शुभागमन की खबर मिलते ही गाँव के नर-नारियों का समुदाय स्वागतार्थ एकत्र हुआ। खुद यहां के राव जी साहब श्रीमान् विजयसिंह जी भी मुनि श्री के स्वागतार्थ गांव के कुछ फ़ासले पर पधारे। दो रोज तक मुनि श्री के व्याख्यान राजकचहरी में हुए, श्रीमान् राव जी साहब का आग्रह ही ऐसा था। फिर उन्होंने एक प्रतिज्ञा-पत्र मुनि श्री को भेंट किया कि श्री महावीर-जयन्ती और श्री पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन राज्य में अगते पाले जायेंगे।

ता० २३ मई, १९३५ को मुनि श्री रायपुर पधारे। स्वागत के लिए श्रीमान् रावत जी साहब बड़ी दूर तक पधारे थे। जय-ध्वनि के साथ मुनि श्री का पदार्पण गाँव में हुआ। मुनि श्री ने दो मांगलिक स्तवन फ़रमाये। तत्पश्चात् श्रीमान् रावत जी साहब ने उपस्थित जनता को सन्देश सुनाया कि आज वह मुनि महाराज हमारे यहां पधारे हुए हैं जिनका मधुर उपदेश हिन्दवासूर्य मेवाड़ाधिपति ने श्रवण किया। हमारा यह अहोभाग्य है कि मुनि श्री का यहां आगमन हुआ है। प्रत्येक हिन्दू-मुसलमान भाई को मुनि श्री के व्याख्यानों का लाभ लेना चाहिए। मेरे पास कोई ऐसा शब्द नहीं है कि मैं मुनि महाराजा की तारीफ़ कर

सकूँ, आदि। रावत जी साहब ने मुनि श्री को एक दया विषयक पट्टा भेंट किया।

असाढ़ शुक्ला ५ को मुनि श्री कुनाड़ी पधारे। दोपहर को कप्तान दौलत सिंह जी साहब मुनि श्री की सेवा में पधारे, बहुत देर तक वार्त्तालाप किया और बहुत प्रसन्न हुए। सायंकाल को राव साहब श्री विजयसिंह जी, कुनाड़ी मुनि श्री के दर्शन कर बड़े प्रसन्न हुए। आषाढ़ शुक्ला द्वितीय ५ को वहीं व्याख्यान हुआ। कोटा से अनेक स्त्री-पुरुष व्याख्यान सुनने के लिए आये हुए थे। कुनाड़ी राव साहब, कप्तान साहब और ठाकुर जोरावर सिंह जी बेगूँ आदि ने भी उपदेश श्रवण किया।

कोटा नरेश ने भाषण सुना

ता० २४ सितम्बर, १६३५ को याद घर (क्रासवेट-इन्स्टीट्यूशन) में जगद्वल्लभ जैन-दिवाकर प्रसिद्ध-वक्ता पण्डित मुनि श्री जी का कोई डेढ़ घण्टे तक अपूर्व व्याख्यान होता रहा। लेफ्टिनेन्ट कर्नल हिज़ हाईनेस श्री महाराव सर उम्मेदसिंह जी साहब बहादुर जी. सी.एस. आई. जी. सी. आई. ई. जी. बी. ई. कोटा नरेश, महाराजकुमार साहब, मेजर जनरल श्री आप ओंकार सिंह जी साहेब सी. आई. ई. दीवान कोटा स्टेट राजा साहब कुनाड़ी, प्राइवेट सेक्रेटरी और जज साहब, कमिश्नर साहब माल, जागीरदारान आदि राज्य के सभी कर्मचारी व्याख्यान में उपस्थित थे। मना कर देने पर भी जैन-जैनेतर नर-

नारी दिन उगते ही सहस्रों की संख्या में बाग़ में पहुँच गये थे। मुनि श्री ने काया और जीव की विभिन्नता बतलाते हुए आत्मा का अमरत्व पूर्णतया सिद्ध किया और शरीर रूपी आवरण का जीव से विलग होना ही हिंसा बतलाया। आपने बड़े ही सरल-सुबोध शब्दों में बतलाया कि पाप कर्मों का सदैव त्याग करना चाहिए। दया शील तप आदि शुभ कर्मों का संचय ही सब कुछ है। कई उदाहरण भी दिये। इस तरह भाषण अतीव मनोहर रहा। अन्त में नरेश ने मुनि श्री से कष्ट के लिए क्षमा-प्रार्थना की। पश्चात् मुनि श्री द्वारा संकलित "निर्ग्रन्थ प्रवचन" नामक ग्रन्थ कोटा-नरेश को भेंट किया गया। मुनि श्री के इस व्याख्यान की नगर भर में चर्चा रही, क्योंकि याद भर में कोटा नरेश के सम्मुख एक जैन मुनि का यह पहला ही भाषण हुआ है।

हाड़ौती प्रान्त में विचरते हुए मुनि श्री पिंपलदा पधारे। यहाँ आपके सार्वजनिक व्याख्यान हुए। इन प्रभावशाली सदुपदेशों से पसीज के सरकार ने प्रत्येक महीने की ग्यारस और अमावस्या को मूक पशु-पक्षियों का शिकार करना और मांस-भक्षण करना छोड़ दिया। गैंता में मुनि श्री का एक व्याख्यान तो आम बाज़ार में हुआ और दूसरा सरकारी महलों में। सरकार, उनके भ्राता, कामदार साहब और समस्त राज-कर्मचारी - वर्ग ने उपदेश श्रवण करने का लाभ लिया। रनिवास से भी मां साहब, महारानी साहिबा आदि सभी व्याख्यान श्रवण कर रही थीं। गाँव की जनता भी पर्याप्त संख्या में एकत्र हुई थी। स्त्रियों के

बैठने के लिए अलग प्रबन्ध कर दिया गया था। मुनि श्री के ओज-पूर्ण व्याख्यान श्रवण कर गैंता के सरकार श्रीमान् महाराज तेजराज सिंह जी साहब और आपके लघु भ्राता श्रीमान् यशवन्त सिंह साहब ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। भेंट-स्वरूप दोनों ने जीवन-पर्यन्त मदिरा-पान का त्याग कर दिया। उस दिन उन्होंने गरीबों और अनाथों को भोजन प्रदान किया एवं चैत्र शुक्ला १३ और पौष वदी १० को स्टेट भर में सदैव के लिए अगता रखने का पट्टा मुनि श्री की सेवा में भेंट किया।

२३-१-३६ को मुनि श्री इन्द्रगढ़ शहर में पधारे। यहाँ के सरकार की मुनि श्री के प्रति सहानुभूति रही। मुनि श्री सरकार के भ्राता के कमरे में विराजमान किये गये। वहां इन्द्रगढ़-नरेश की कोठी पर महाराज का व्याख्यान हुआ। श्रीमान् दरबार साहब, दीवान साहब, हाकिम साहब, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब, डाक्टर साहब आदि राज्य-कर्मचारी और शहर की जैन, जैनेतर समस्त जनता व्याख्यान-स्थल पर उपस्थित थी। जैन-दिवाकर जी महाराज ने अहिंसा पर प्रभावशाली व्याख्यान दिया। आपने अहिंसा का सारगर्भित वर्णन करते हुए नरेश से फ़र्माया कि भेरु जी, माता जी आदि देवी देवताओं के लिए जो जीवों का बलिदान होता है, वह प्रथा बहुत बुरी है। भेरु जी आदि कोई देवी-देवता यह नहीं चाहते कि 'हमें पशुओं की बलि दी जाय!' वे तो जगत के रक्षक हैं, सब जीव उनके पुत्रवत् हैं, अतएव वे अपने पुत्रों के खून के प्यासे कैसे हो सकते हैं? यह घृणित प्रथा

तो केवल स्वार्थी मांस-लोलुपों ने अपनी जिह्वा के स्वादु भोजन के लिए प्रचलित की है। इसलिए आप नरेशों का कर्त्तव्य है कि इस घृणित प्रथा को समूल नष्ट कर दें। उदयपुर-नरेश ने कई जगहों में होने वाले बलिदानों को रोक दिया है। प्रतापगढ़ के नरेश ने तो स्टेट भर से पशुबलि की लोमहर्षण प्रथा सदैव के लिए बन्द करदी है। सुना गया है, आपके राज्य में देवी के लिए अनेक पशुओं की बलि दी जाती है। किसी भी प्रकार से इन मूक पशुओं की रक्षा की जाय तो उत्तम हो। ऐसा करने से आपको अनन्त पुण्य का लाभ होगा। दरबार बोले—इस विषय पर विचार किया जायगा। इस व्याख्यान से दरबार तथा उपस्थित जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप श्रीमान् इन्द्रगढ़-नरेश ने हुक्म जारी कर दिया कि महावीर जयन्ती और पार्श्वनाथ जयन्ती की तिथियों पर स्टेट भर में पशु-वध बन्द रहेगा।

उणियारा नरेश ने व्याख्यान सुना

ता० २५-२-३६ को जगद्वल्लभ जैन-दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमल जी महाराज टोंक से विहार कर उणियारे पधारे। साथ में शिष्य-मण्डली भी थी। यहां सदर बाजार में, आपके चार सार्वजनिक व्याख्यान हुए। जैन, जैनेतर जनता तथा राज्य-कर्मचारी वर्ग ने व्याख्यान श्रवण का लाभ लिया। अनेकों ने इन बातों के त्याग किये कि हम कन्या का

पैसा नहीं लेंगे, जो लेगा उसके यहां जीमने नहीं जायेंगे। परस्त्री-गमन नहीं करेंगे। तम्बाकू नहीं पियेंगे आदि। बड़ोदिया के ठाकुर साहब श्रीमान् किशन सिंह जी ने आजीवन के लिए मदिरा और मांस का त्याग किया। साथ ही उन्होंने इस बात की भी प्रतिज्ञा की कि अब से शिकार नहीं खेलूँगा।

ता० २६-२-३६ को बाग़ में मुनि श्री का व्याख्यान हुआ। उणियारा दरबार श्रीमान् दरबार सिंह जी साहब, राजकुमार, राज-कर्मचारी और शहर की लगभग २५०० जनता ने व्याख्यान सुना। सब से पहले दरबार ने मुनि श्री से कहा कि आप पहले ही पधार गये, इसकारण हम आपका स्वागत नहीं कर सके। इसका हमें दुःख है। आप ऐसे महात्मा यहां साल दो साल पर पधारा करें तो लोगों को बड़ा लाभ हो। हमारा अहो भाग्य है कि आज आप ऐसे मुनियों के दर्शन हुए। इसके पश्चात् फिर दरबार ने मुनि श्री से कहा कि जैन-धर्म में कर्मों की फ़िलासफ़ी बड़ी गहन है। यदि आप की इच्छा हो तो आज आप इसी विषय पर कुछ फ़रमावें। मुनि श्री ने वैसा ही किया। मुनि श्री ने बतलाया कि इस संसार में जीवों की जो उन्नत-अवनत दशा होती है वह सब शुभाशुभ कर्मों के प्रताप से ही होती है। मुनि श्री बड़े ही सरल-सरस शब्दों में लगातार दो घण्टे तक ओजस्वी व्याख्यान देते रहे। दरबार बड़े प्रसन्न हुए। व्याख्यान के बीच में नरेश ने मुनि श्री से प्रासंगिक वार्त्तालाप भी किया। व्याख्यान की समाप्ति पर दरबार ने कहा कि दो-चार व्याख्यान और देवें ताकि

प्रजा का कल्याण हो। उत्तर में मुनि श्री बोले—बात तो ठीक है, परन्तु अब गर्मी के दिन आ रहे हैं और हमें आगरा जाना है। आदि-आदि वार्त्तालाप के पश्चात मुनि श्री ने दरबार से कहा—हमारी भेंट यही है कि चैत्र सुदी १३ और पौष वदी १० को स्टेट भर में सदैव अगते पलें। दरबार ने सहर्ष स्वीकार किया और अगता पालने का अभिवचन दिया।

१७-३-३६ को विहार कर मुनि श्री वणजारी पधारे। यहाँ आपका एक उपदेश हुआ। उपदेश सुनने के लिए बेडोला से ठाकुर संग्रामसिंह जी पधारे हुए थे। उपदेश सुन कर ठाकुर साहब बड़े प्रसन्न हुए और मुनि श्री से बेडोला पधारने का आग्रह किया कि वहाँ आकर प्रजा को उपदेश करें। किन्तु मुनि श्री समयाभाव के कारण स्वीकार न कर सके। ठाकुर साहब ने इन बातों का नियम ग्रहण किया कि प्रत्येक अमावस्या, चैत्र सुदी १३ (भगवान् महावीर स्वामी का जन्म-दिन) और पौष वदी १० (भगवान् पार्श्वनाथ का जन्मदिन) को जागीर के समस्त गाँवों में अगता पलवाऊँगा और इन दिनों स्वयं भी शिकार न खेलूँगा।

मुनि श्री ढेकवे पधार रहे थे। मार्ग में एकड़ा ठाकुर श्रीमान् मोहन सिंह जी मिले। इन्होंने प्रतिज्ञा की कि चैत्र सुदी १३, पौष वदी १० और पर्यूषणों के आठ दिनों में अगता रखूँगा और शिकार नहीं करूँगा—वैशाख महीने में भी। ठाकुर साहब के कामदार श्रीमान् कर्ण सिंह जी ने आजीवन हिंसा नहीं करने

का नियम लिया। विजयपुर के ठाकुर साहब ने भी चैत्र सुदी १३, पौष वदी १० और श्रावण, कार्तिक तथा वैशाख महीनों में शिकार नहीं करने की प्रतिज्ञा की।

परिशिष्ट प्रकरण

सनदें और हुक्मनामे

कई राजा महाराजा एवं जागीरदारों से पट्टे परवाने श्री जैन-दिवाकर जी को प्राप्त हुए वे अक्षरशः निम्नोक्त प्रकार से हैं:—

नम्बर १५२१

मानननीय महाराज चौथमल जी

जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी की सेवा में !

राजे श्री ठाकरां जोरावर सिंह जी साहरङ्गी ली० प्रणाम पहुंचे अपरञ्च आप विहार करते हुए हमारे गाँव साहरंगी में पधारे और धार्मिक व अहिंसा विषयक आपके व्याख्यान सुनने का मुझ को भी सौभाग्य हुआ इसलिए मैंने इलाक़े में चरन्दे व

परन्दे जानवरांन की जो शिकार आम लोग किया करते थे। उनकी रोक के वास्ते और मछलियों की शिकार धार्मिक तिथियों में न होने की दो सरकुलर नंबर १५१६-१५२० जारी करके मनाई करदी है। नकलें उनकी इस पत्र के ज़रिये आपकी सेवा में भेजता हूं कारण के येह आपके व्याख्यान का सुफल है फक्त।

ता० २३-१२-२१ ई०

ठाकरां सहारंगी

॥ श्री ॥

सरकुलर ठिकानां साहारंगी व इजलास राजे श्री ठाकरां जोरावर सिंह जी साहब—

ता० २३-१२-२१ ई०
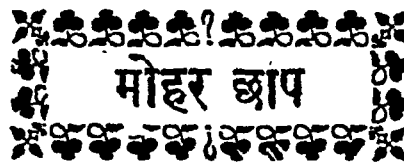
नकल मुताबिक असल के

जो कि धार्मिक तिथि एकादशी पुनम अमावस्या जन्माष्टमी और राम नवमी और जैन-धर्मावलम्बियों के पजूसनों में प्रगणे हाजा में शिकार मछलियों की कोई शख्श नहीं करे इसका इन्तजाम होना जरूर ली०

नं० १५१६

हुक्म हुआ के

मारफ़त पुलिस प्रगणा हाजा में उन तमाम लोगों को जो

अक्सर शिकार मछली किया करते हैं मुमानियत करदी जावे के खिलाफ़ वर्जी करने वाले पर सजा की जावेगी फ० वाद कारखाई असल हाज़ा सामिल फाईल हो।

तारीख़ मजकुर
सही हिंदी में वहादुर सिंह
कामदार साहरंगी

सही हिंदी में ठाकरां
साहरंगी

॥ श्री ॥

सरकुलर ठिकाना साहरंगी वाइजलास राजे श्री ठाकरां जोरावर सिंह जी साहब

तारीख़ २३-१२-२१ ई०
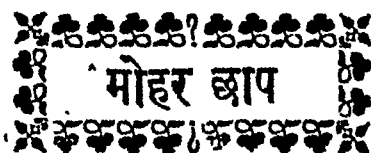
नकल मुताबिक असल के

जो के ठिकाने हाजा की हद में ऐसा कोई इन्तजाम नहीं है। जिसकी वजह से हर शख्स शिकार वे रोक टोक किया करते हैं। यह वेजा है इसलिए यह तरीक़ा आयंदा जारी रहना ना मुनासिव है। लिहाज़ा

नं० १५२०

हुक्म हुआ के

आज तारीख़ से प्रगणे हाजा में विला मंजूरी ठिकाना

शिकार खेलने को मुमानियत की जाती है। इत्तला इसकी मारफ़त पुलिस तमाम मवाजेआत के भवइयान या हवालदरान के जर्ये आम लोगों को करा दी जावे के कोई शख़्स इसकी खिलाफ़वर्ज़ी करेगा वह मुस्तोजीव सज़ा के होगा। फ़० वाद काररवाई असल हाजा शामिल फाइल हो।

सही हिंदी में वहादुरसिंह कामदार सही हिंदी में ठाकरां साहरंगी
साहरंगी

॥ श्री नर्तगोपाल जी ॥

Banera
Mewar

राजा रक्षयति प्रजाः

जैन मजहव के मुनि महाराज श्री देवीलाल जी व श्री चौथमल जी महाराज वनेड़ा में वैशाख वदी ११ को पधारे। और श्री ऋषभदेव जी महाराज के मन्दिर में इनके व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने नज़र वाग व महलों में भी व्यख्यान दिये आपके व्याख्यानों से वड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ जिससे मुनासिब समझ कर प्रतिज्ञा की जाती है किः—

१—पजुसणों में हम शिकार नहीं खेलेंगे।

२—मादीन जानवरों की शिकार इरादतन कभी नहीं करेंगे।

३—चैत सुदी १३ श्री महावीर स्वामी जी का जन्म दिन

होने से उस दिन तातील रहेगी ताकि सबलोग मन्दिर* में शामिल होकर व्याख्यान आदि सुन कर ज्ञान प्राप्त करें व नीज उस रोज शिकार भी नहीं खेली जावेगी।

४—खास बनेड़े व मवजिआत के तालावों में मच्छी आड़ वगैरह की शिकार बिला इजाजत कोई नहीं करने पावेगा। लिहाजा—

नं० ६७४५

जुमले सहेनिगान की मारफ़त महकमे माल हिदायत दी जावे कि वह असामियान को आगाह कर देवे कि तालावों में मच्छी आड़ वगैरा का शिकार कोई शख्स बिला इजाजत न करने पावे। खिलाफ इसके अमल करे, उसकी बाजाबता रीपोर्ट करे तातील बाबत हर एक महकमे जात में इत्तला दी जावे नीज इसके जरिये नकल हाजा मुनि महाराज को भी सूचित किया जावे। फकत १९८० बैशाख सुदी २ ता० ६ मई सन् १९२४ ई०

द० राजा साहब के

---

*बनेड़े (मेवाड़) में जो भी श्वेताम्बर स्थानकवासी साधु जाते हैं वे सब ऋषभदेव जी के मन्दिर ही में ठहरते हैं। और चातुर्मास का निवास भी उसी मन्दिर में करते हैं। अतः व्याख्यान भी उसी मन्दिर में होता है। और सब श्रावक-गण सामयिक, प्रतिक्रमणादि दया पौषध वहीं करते हैं। अतएव 'राजा साहिब' ने श्री महावीर स्वामी के जन्म दिन तातील रखने की जैन-दिवाकर जी से प्रतिज्ञा कर सब जैन लोगों को इजाजत दीं कि मन्दिर जी में इकट्ठे होकर उस दिन व्याख्यान सुन कर ज्ञान प्राप्त करें।

॥ श्री राम जी ॥

नकल

श्री हींगला जी !

हुकमनामा अज़ ठिकाना कोशीथल बाकै वैशाख सुदी १५ का ज्वानसिंह १६८०

नं० ५४
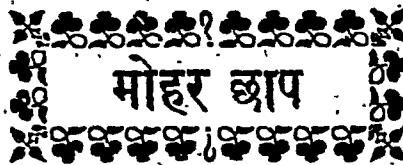
जो कि अकसर लोग जानवरों की अपना पट भरन क लिए शिकार खेल कर जीवहिंसा के प्राश्चित को प्राप्त होते हैं इसलिए हस्व उपदेश साधू जी महाराज श्री चौथमल जी स्वामी के आज की तारीख से महे हुकमनामा खास कोशीथल व पट कोशीथल के लिए जारी कर सब को हिदायत की जाती है कि शिकार खेल कर जीव हिंसा करने से पूरा परहेज़ करें। अगर कोई खास वजह पेश आवे तो मंजूरी हासिल करे। अगर इसके खिलाफ़ कोई करेगा और उसकी शिकायत पेश आवेगा तो उसके लिए मुनासिब हुकम दिया जावेगा। इसलिए सबको लाज़िम है, कि निगरानी करते रहें। और किसी के लिए बिला मन्जूरी शिकार खेलना ज़ाहिर में आवे, तो फ़ौरन इत्तला करें। फ़क्त

॥ श्री राम जी ॥
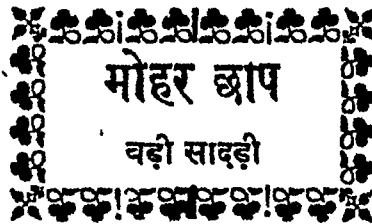
जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमल्ल जी ज्येष्ठ कृ० ६ को बड़ी सादड़ी में पधारे। कुछ समय व्याख्यान श्रवण होने से उत्कण्ठित हुआ अतएव महलों में पधार व्याख्यान दिया आपके धर्मोपदेश प्रभावशाली व्याख्यान से बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। मुनासिब समझ प्रतिज्ञा की जाती है।

(१) पक्षी जीवों की शिकार इच्छा करके नहीं करेंगे।

(२) मादीन जानवरों की भी इच्छा करके शिकार नहीं की जायगी।

(३) तालाव में मच्छियाँ आडाँ आदि जीवों की शिकार बिला इजाजत कोई नहीं कर सकेंगे। इसके लिए एक शिलालेख भी तालाव की पाल पर मुनासिब जगह स्थापित कर दिया जायगा।

हु० नंबर १५६४

मुलाजमान कोतवाली को हिदायत हो कि तालाब में किसी जानवर की शिकार कोई करने न पावे। यदि इसके खिलाफ़ कोई शख्स करे तो फौरन रिपोर्ट करें। आज के व्याख्यान में कितनेक जागीरदार हजूरिये आदि ने हिंसा वगैरः

न करने की प्रतिज्ञा की है उम्मेद है वे मुवाफिक प्रतिज्ञा पावन्द रहेंगे। नकल उसकी सूचनार्थ चौथमल जी महाराज के पास भेज दी जावे। संवत् १९८२ ज्येष्ठ शुक्ला ३ ता० १३-६-१९२६

॥ श्री राम जी ॥

श्री गोपाल जी !
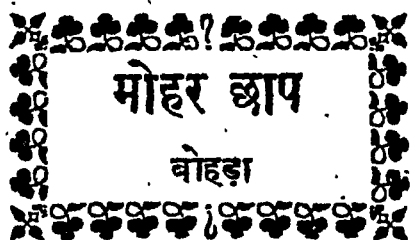
आज यहाँ जैन सम्प्रदाय के महाराज चौथमल जी ने कृपया व्याख्यान उपदेश किया। परमेश्वर स्मरण, दया, सत्य, धर्म जीव-रक्षा न्याय विषय पर जो प्रशंसनीय व पूरा हितकारी सर्व जनों के लाभदायक पूरा परमार्थ पर हुआ। आपके उपदेश से चित्त प्रसन्न होकर प्रतिज्ञा की जाती है कि:—

(१) मादीन जानवरों की इरादतन शिकार न की जायगी।

(२) छोटे पक्षी चिड़ियाओं की शिकार करने की रोक की जायगी।

(३) मोर, कबूतर, फाकता (सफेद डेकड़) जो मुसलमान लोग मारते हैं न मारने दिये जायँगे।

(४) पजूसणों में व श्राद्ध पक्ष में आम तौर पर बेचने को जो बकरे आदि काटते हैं, उनकी रोक की जायगी।

(५) पजूसणों में कतई दारू की भट्टियें बन्द रखी जायँगी।

सं० १९८२ का ज्येष्ठ शुक्ला ५ भोमे

(दः) नाहरसिंह

श्री राम जी

श्री केरेश्वर जी !

आज यहाँ जैन सम्प्रदाय के महाराज चौथमल जी ने कृपया व्यख्यान उपदेस किया, जो प्रशंसनीय व पूरा हितकारी सर्वजनों के लाभ दायक पूरा परमार्थ पर हुआ। आपके उपदेश से चित्त प्रसन्न होकर प्रतिज्ञा की जाती है कि:—

(१) छोटे पक्षी की शिकार करने की रोक की जाती है।

(२) वैशाख मास में खरगोश की शिकार इरादतन न की जायगी।

(३) मादीन जानवरों की इरादतन शिकार नहीं की जायगी।

(४) नदी गोमती व महादेव जी श्री केरेश्वर जी के पास श्रावण मास में मच्छियों की शिकार की रोक की जायगी।

सं० १९८२ का ज्येष्ठ शुक्ला ७ गुरुवार

(द:) जवानसिंह

॥ श्री राम जी ॥

श्री महालक्ष्मी जी !
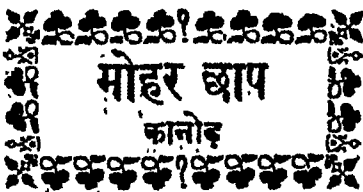
जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमल जी का

हवा मगरी के महल में आज व्याख्यान हुआ। जो श्रवण कर बहुत आनन्द हुआ। अहिंसा धर्म का जो महाराज ने उपदेश किया वह पूर्ण सत्य और वेद सम्मत है, जिससे इस प्रकार प्रतिज्ञा की गई है।

(१) आपके पधारने व विहार करने के दिन अगता रहेगा।

(२) पचीस बकरे अमरिये कराये जावेंगे।

(३) यहां के तालाब और नदियों में विला इजाजत मच्छियें आम लोग नहीं मार सकेंगे।

(४) मादीन जानवरों की इरादतन शिकार नहीं की जायगी इसी तरह से पच्छियों के लिए विचार रक्खा जायगा।

हु० नं० १५१२

अगता पलने और मच्छियें मारने की रोक के लिए कोतवाली में लिखा जावे और २५ बकरे अमरिये कराने के लिए नाथूलाल जी मोदी को मुतला किया जावे। नकल इसकी सूचनार्थ चौथमल जी महाराज के पास भेजी जावे संवत् १६८२ का ज्येष्ठ शुक्ला ८ ता० १८-६-२६ ई०

॥ श्री राम जी ॥

श्री गोपाल जी !
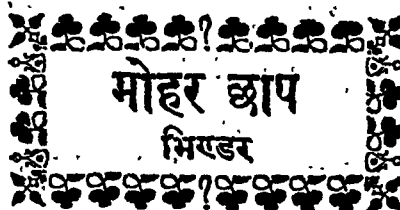
जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमलजी का

भिण्डर पधारना होकर आज मिति असाढ़ कृष्णा ५ को महलों में धर्म व अहिंसा के विषय में व्याख्यान हुआ। जिसका प्रभाव अच्छा पड़ा। और मुझको भी इस प्रभावशाली व्याख्यान से बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि:—

(१) हिरन व छोटे पक्षियों की शिकार नहीं की जायगी।

(२) इन महाराज के आगमन व प्रस्थान के दिवस भिण्डर में खटीकों की दूकानें बन्द रहेंगी। उपरोक्त प्रतिज्ञाओं की पाबंदी रहेगी लिहाजा—

हु० नं० २३४२

खटीकों की दूकानों के लिए मुआफिक सदर तामील बाबत थानेदार को हिदायत की जावे। और नकल उसकी चौथमल्ल जी महाराज के पास भेजी जावे। संवत् १९८२ असाढ़ कृष्णा ५ ता० ३० जून को सन् १९२६ ई०

नं० १३

श्री राम जी

जैन-सम्प्रदाय के मुनिमहाराज श्री चौथमल्ल जी के दर्शनों की अभिलाषा थी। व आसाढ़ कृ० ६ को बंबोरे पधारे और कृष्णा १० रविवार को महाराज का विराजना बाजार में था। वहाँ पर सुबह ८ वजे से १० वजे तक श्री महाराज के व्याख्यान

श्रवण किये। चित्त को आनन्द प्राप्त हुआ। मैं भी इस प्रभावशाली व्याख्यान से चित्त आग्रह हो कर नीचे लिखी प्रतिज्ञा करता हूँ—

(१) मैं अपने हाथ से खाजरू, पाड़ा नहीं मारूँगा न मच्छी मारूँगा।

(२) हमेशा के लिए इग्यारस के दिन मेरे रसोड़े में मांस नहीं बनेगा। नहीं खाऊँगा। और बंबोरे में खटीकों की दूकानें व कलालों की दूकानें बन्द रहेंगी व कुम्हारों के अवाड़ा नहीं पकेगा। अगता रहेगा।

(३) नदी में भमर दोके नीचे से बडुवा तक कोई भी मच्छी नहीं मारेगा।

(४) इग्यारस के रोज़ बंबोरे में ऊँट पोठी नहीं लादने दिये जावेंगे।

(५) आपका बंबोरे में पधारना होगा उस रोज़ व वापिस पधारना होगा उस रोज़ अगता पलेगा यानी खटीकों की कलालों की दूकानें बन्द रहेंगी व कुम्हार अवाड़ा नहीं पकावेगा। वग़ैरह-वग़ैरह।

(६) सात बकरे अमरिये किये जावेंगे।

ऊपर लिखे मुजिब प्रतिज्ञा की गई हैं और मेरे यहाँ कितनेक सरदार वग़ैराओं ने भी प्रतिज्ञा की है जिसकी फेहरिस्त उनकी तरफ से अलग नज़र हुई है। इति शुभम् सं० १९८२ अषाढ़ा कृ० १०

॥ श्री राम जी ॥

॥ श्री एक लिंग जी ॥

जैन सम्प्रदाय के श्रीमान् महाराज श्री चौथमल जी का दो दिन कुरावड़ महलों में मनुष्य जन्म के लाभान्तर्गत अहिंसा, परोपकार, क्षमा आदि विषयों पर हृदयग्राही व्याख्यान हुआ, जिसके प्रभाव से चित्त द्रवीभूत हो कर निम्न लिखित प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) कुरावड़ में नदी तालाब पर जलचर जीवों की हत्या रोक रहेगी।

(२) आपके शुभागमन व प्रस्थान के दिन यहां पर जीव-हिंसा का अगता रहेगा।

(३) मादीन जानवर इरादतन नहीं मारे जावेंगे।

(४) पक्षियों में सात जातियों के जानवरों के सिवाय दूसरे जाति के जीव की हिंसा नहीं की जावेगी। इन सातों की गिनती इस तरह होगा कि जिस तरह से इत्तफाक पड़ता जावेगा। वोही गिनती में शुमार होंगे।

(५) भाद्रपद कृष्ण अष्टमी से सुद पूर्णिमा तक खटीकों की दुकानें बन्द रहेंगी।

(६) श्राद्ध पक्ष में पहले से अगता रहता है सो बदस्तूर रहेगा

और इसमें सर्व हिंसा व खटीकों की दूकानें भी बन्द रहेंगी।

(७) प्रति मास एकादशी दो, अमावस्या, पूर्णिमा को अगतो हमेशा सूँ रेवे है सो बदस्तूर रहेगा और खटीकों की दूकानें बिलकुल बन्द रहेगा।

(८) आश्विन मास की नवरात्रि में एक दिन

(९) दरवाजे नवरात्रि में एक पाड़ो हमेशा बलिदान होवे वो बन्द रहेगा।

(१०) नवरात्रि में माता जी करणी जी पांगली जी के पाड़ा नहीं चढ़ाया जावेगा।

(११) दस बकरा अमरीया कराया जावेगा।

ऊपर लिखे मुआफिक अमलदरामद रहना जरूरी लिहाजा--

हु० नम्बर २६३

नकल इसकी तालिमन कोतवाली में भेजी जावे। दूसरी नकल महाराज चौथमल जी के पास सूचनार्थ भेजी जावे। दूसरे सरदार वगैरों ने भी बहुत सी प्रतिज्ञा की है। उसकी फेहरिश्त अलग है। संवत् १९८२ असाढ़ कृष्णा १४

॥ श्रीराम जी ॥

श्री एकलिंग जी

रावत जी साहिब के हस्ताक्षर (अंग्रेजी लिपि में)

मोहर छाप
बाठरड़ा
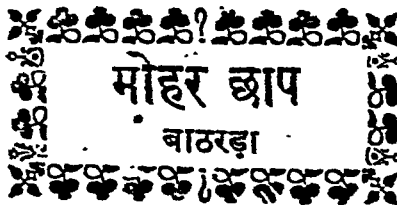
Batharda
Udaipur
Rajputana

स्वस्ति श्री राजस्थान बाठरड़ा शुभस्थाने रावत जी

श्री दलीप सिंह जी वंचनात्। जैन साधु मार्गीय २२ संप्रदाय के प्रसिद्धवक्ता स्वामी श्री चौथमल जी महाराज का शुभागमन यहाँ आसाढ़ विदी ३० को हुआ। यहाँ की जनता को आपके धर्म विषयक व्याख्यानों के श्रवण करने का लाभ प्राप्त हुआ। आपका व्याख्यान राजद्वार में भी हुआ। आपने अपने व्याख्यान में मनुष्य जन्म की दुर्लभता, आर्यदेश में, सत्कुल में जन्म, पूर्णायु सर्वाङ्ग सम्पन्न होने के कारण भूत धर्माचरण को बता कर धर्म के अंग स्वरूप क्षमा, दया, अहिंसा, परोपकार, इन्द्रिय निग्रह, ब्रह्मचर्य, सत्य, तप, ईश्वर स्मरण भजन आदि सदाचार का विशद रूप से वर्णन करके इनको ग्रहण करने एवं अधोगति को ले जाने वाले हिंसा, क्रोध, व्यभिचार, मिथ्या-भाषण परहानि विषय परायणता आदि दुराचारों को यथा शक्य त्यागने का प्रभावोत्पादक उपदेश किया जो कि सनातन वैदिक धर्म के ही अनुकूल है। आपके व्याख्यान सार्व देशिक, सार्वजनिक, सर्व धर्म सम्मत किसी प्रकार के आक्षेपों रहित हुआ करते हैं। यहाँ से आपके भेंट स्वरूप निम्न लिखित कर्त्तव्यपालन करने की प्रतिज्ञायें की जाती हैं।

१—हिंसा के निषेध में—

(१) नारी जानवर की आखेट इच्छा पूर्वक नहीं की जायगी।

(२) पटपड़ का माँस भक्षण नहीं किया जायगा।

(३) मोर कबूतर आदि पक्षियों की शिकार प्रायः मुसलमान लोग करते हैं उनको रोक करादी जायगी।

(४) नवरात्रि दशहरे पर जो चौगान्या वा माता जी के बलि-

दान के लिए पाड़े बध किये जाते हैं। वे अब नहीं किये जावेंगे।

(५) तालाब फूल सागर में आड़ें नहीं मारी जायेंगी।

२—निम्न लिखित तिथियों तथा पर्वों पर अगते रखाये जायेंगे। यानी खटीकों की दुकानें, कलालों की दुकानें, तैलियों की घाणियें, हलवाइयों की दुकानें, कुम्हारों के आवे आदि वन्द रहेंगे।

(१) प्रत्येक मास में दोनों एकादशी, पूर्णिमा का दिन।

(२) विशेष पर्वों पर जन्म अष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि वसंतपञ्चमी। चैत्र सुदी १३ ज्येष्ठ वदी ५

(३) श्राद्ध पक्ष में

(४) स्वामी श्री चौथमल जी महाराज के यहाँ आगमन व प्रयाण के दिन।

३—अभयदान में ५ पाँच वकरों को जीवदान दिया जायगा।

उपरोक्त कर्त्तव्यों का पालन कराने के लिए कचहरी में लिख दिया जावे। इसकी एक नकल श्री चौथमल जी महाराज के भेंट हो और एक नकल समसा महाजन पञ्चों को दी जावे। शुभ मिती सं० १९८२ का आषाढ़ सुदी ३

॥ श्री राम जी ॥

श्री रुघनाथ जी
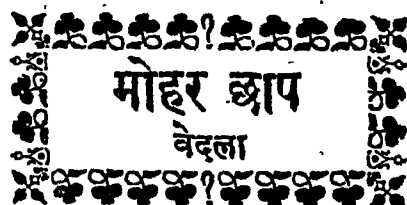
जैन साधु २२ सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री

चौथमल जी माहाराज का शुभागमन मिगसर कृष्णा ६ को बेदले हुआ। गाँव में व राज्यस्थान में तीन दिन व्याख्यान हुए। जिसमें प्रजा को व मुझे आनन्द हुआ। नीचे लिखे मुआफिक यहाँ भी अगते पलाये जावेंगे।

(१) पहले से यहाँ अगते रखे जाते हैं। फिर पजूसणों से मिति भादवा सुदी १५ तक अगते पलाये जावेंगे गरज के उदयपुर के मुजिब पूरे अगते पलेंगे।

(२) दोयम चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर जयंति पौष विदी १० श्री पार्श्वनाथ जयंति के अगते भी पलाये जावेंगे।

(३) श्री चौथमल जी महाराज के वेदले पधारना होगा तब भी आने व जाने की मिति का अगता पलाया जावेगा।

ऊपर मुजिब हमेशा अमलदरामद रहेगा लिहाजा

हु० नं० ३६०

महफीज दफ्तर मुत्तला होवे कि यह अगते पालाये जाने का नोट दर्ज किताब कर लेवें। नामेदार इस माफिक अमल रखाने की काररवाई करे। नकल इसकी बतौर सूचनार्थ श्री चौथमल जी महाराज के पास भेजी जावे।

सं० १९८३ मिगसर वद १२ ता० २-१२-१९२६ ई०

श्री राम जी

श्री एक लिंग जी!
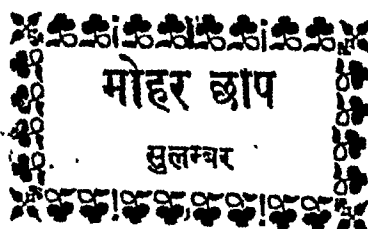
जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता पंडित मुनि श्री चौथमल

जी महाराज का भिण्डर की हवेली मु० उदयपुर में आज व्याख्यान हुआ वो श्रवण कर चित्त बड़ा आनन्दित हुआ। अहिंसा धर्म का महाराज श्री ने सत्य उपदेश दिया वह बहुत प्रभावशाली रहा। इस लिए नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है।

(१) श्रीमान् मुनि श्री चौथमल जी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन सुलम्बर में आम अगता रहेगा।

(२) चैत्र शुक्ला १३ भगवान् श्री महावीर स्वामी का जन्म दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता रहेगा।

(३) पौष कृष्णा १० भगवान् पार्श्वनाथ जी का जन्म दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता पलाया जावेगा।

(४) *नवरात्रि में पाड़ा को लोह होवे है सो हमेशा के वास्ते एक पाड़े को अमरथा किया जावेगा।

(५) मादा जानवर की शिकार जान कर के नहीं की जावेगी।

(६) मुर्गा जंगली व शहरी, हरियाल, धनेतर, लावा, आड़ और भाटिया के अलावा दीगर पखेरू जानवरों की शिकार नहीं की जावेगी और जीमण में नहीं आवेगा।

(७) खास सुलम्बर में तालाव है उसमें बिला इजाजत कोई शिकार न खेले। इसकी रोक पहले से है और फिर भी रोक पूरे तौर से रहेगी।

---

*नवरात्रि और दशहरे में जितने पाड़े मारे जाते हैं उनमें एक पाड़े की कमी की जायगी। याने हमेशा के लिए एक पाड़े को अमरथा कर दिया जावेगा।

लिहाजा

हुक्म नं० ४१४

असल रोवकार हाजा सदर कचहरी में भेज लिखी जावे के मुन्दरजे सदर कलमों की पाबन्दी पूरे तौर रखने का इन्तजाम करें और नकल इसकी सूचनार्थ श्रीमान् प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमल जी महाराज के भेंट स्वरूप भेजी जावे और निवेदन किया जावे के कितनीक जीव हिंसा वगैरा बातें आपके दुलम्बर पधारने पर छोड़ने का विचार किया जावेगा। फक्त सं० १६८३ मार्गशीर्ष कृष्णा ११ भौमवार ता० ३०-११-२६ ई०

श्री राम जी

श्री एक लिंग जी

जैन - सम्प्रदाय के श्रीमान् प्रसिद्धवक्ता स्वामी जी श्री चौथमल जी महाराज गोगुन्दे पधारे और मनुष्य जन्म के लाभान्तर्गत अहिंसा परोपकार क्षमा आदि अनेक विषयों पर हृदयग्राही प्रभावशाली व्याख्यान हुए। जिनके प्रभाव से चित्त द्रवीभूत होकर श्रीमती माजी साहिबा श्री रणावत जी की सम्मति से जिन्होंने कृपा कर दया भाव से यह भी फरमाया है कि इन प्रतिज्ञाओं की हमेशा, बाद मुनसरमात भी पाबन्दी रखाई जावेगी। निम्न लिखित प्रतिज्ञा की जाती है।

(१) तालाब पट्टे हाजा में मच्छियां आड़ा आदि जीवों का शिकार बिला इजाजत कोई नहीं कर सकेंगे। इसके लिए एक शिला लेख भी तालाब की पाल (पार) पर मुनासिब

जगह स्थापित कर दिया जायगा।

(२) छोटे पक्षी चिड़ियां वग़ैरा की शिकार करने की रोक की जावेगी।

(३) मोर कबूतर फाखता न मारने दिये जावेंगे।

(४) पर्यूषणों में व श्राद्ध पक्ष में आमतौर पर बकरे आदि बेचने को जो काटे जाते हैं उनकी रोक की जावेगी।

(५) आपके पधारने व विहार करने के दिन अगता रहेगा।

(६) विशेष पर्व जन्माष्टमी, रामनवमी, मकर संक्रान्ति, वसन्त पञ्चमी, शिवरात्रि, पौषवदी १० पार्श्वनाथ जयन्ति, चैत्र शुक्ला १३ महावीर जयंति और इनके अतिरिक्त हर महीने की ग्यारस अमावस्या प्रदोष और पूर्णिमा के दिन बकरे आदि जानवर आम तौर पर बेचने को नहीं काटने दिये जावेंगे। इनके अलावा ठिकाने में जो-जो मामूली अगते पाले जाते हैं वे भी पलते रहेंगे।

(७) कुम्हार लोग श्रावण और भादवा में अवाड़े नहीं पकावेंगे।

(८) श्रीयुत स्वामी जी श्री चौथमल जी महाराज के शुभागमन में ग्यारह ११ बकरे इस समय अमरिया कराये जावेंगे।

हु० नं० १८३६

नकल इस माफिक लिख श्रीयुत स्वामी जी श्री चौथमल जी महाराज के सूचनार्थ भेंट की जावे। और यह परचा सही के बहिड़ा में दरज होवे और इसमें मुत्तला थानेदार, जमादार,

हवालदार को कहा जावे और साहेबलाल जी को ये भी हिदायत हो कि शिलालेख कारीगर को तलब कर उससे लिखा तालावों पर पट्टे हाजा में खुदाई जावे । दर्ज रजिस्टर हो सं० १६८२ का मगसर सु० १३ तारीख १०-१२-२६ ई०

॥ श्री रणछोड़ राय जी ॥

॥ श्री आदि माता जी ॥
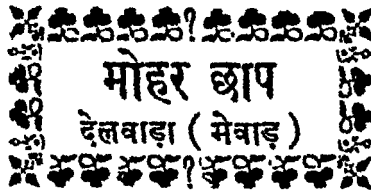
जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री चौथमल जी महाराज के व्याख्यान उदयपुर के मुकाम बनेड़ा की हवेली में मिती आसोज सुदी १४ को श्रवण करने का सुअवसर हुआ । जब से यह इच्छा थी कि श्री महाराज का कभी देलवाड़े में पधारना हो और यहाँ की प्रजा को भी आपका व्याख्यान श्रवण करने का लाभ मिले । ईश्वर कृपा से श्री महाराज का यहाँ पर परसों पधारना हुआ और यहाँ की जनता की आपके धर्म विषयक व्याख्यानों के श्रवण करने की अभिलाषा पूर्ण हुई तथा आज आपने कृपा कर राज्यद्वार में पधार जालिमनिवास महल में व्याख्यान दिया । आपका फरमाना बहुत ही प्रभावशाली सर्व धर्म सम्मत रहा इस लिये नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है:—

नीचे लिखित प्रतिज्ञा की जाती है:—

१—नीचे लिखी तिथियों पर यहां अगते रहेंगे ।

(१) श्री चौथमल जी महाराज के यहां पधारने व वापिस पधारने के दिन।

(२) पौष विदी १० श्री पारस्व नाथ जी महाराज का जन्म दिवस के दिन।

(३) चैत सुदी १३ श्री महावीर स्वामीजी का जन्म दिवस के दिन।

(४) महीने में दोनों एकादशी अमावस तथा पूर्णिमा के दिन।

२—पक्षी जानवरों में लावा और जल के जानवरों में भाटिया की शिकार नहीं की जावेगी।

३—मादीन जानवर की शिकार इरादतन नहीं की जावेगी लिहाजा

हु० नं० १६७३

असल कचहरी में भेज लिखी जावे कि नं० १ की कलमों की पावन्दी पूरे तौर रखाई जावे और नकल इसकी सूचनार्थ मुनि महाराज श्री चौथमल जी के पास भेजी जावे। संवत् १९८३ फागण सुदी ६ ता० ९-३-१९२७ ई०

श्री राम जी

श्री लक्ष्मीनाथ जी
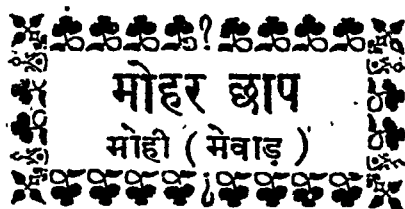
जैन सम्प्रदाय के सुप्रसिद्धवक्ता पं० मुनि श्री चौथमल जी

महाराज का राजस्थान मोही में आज भाषण हुआ। वह श्रवण कर चित्त बड़ा आनन्दित हुआ। अहिंसा विषयक जो श्री महाराज ने सत्य उपदेश दिया वह प्रभावशाली ही नहीं प्रत्युत प्रशंसनीय एवं उपादेय रहा है। इसलिए नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है।

(१) चैत्र शुक्ला १३ भगवान् श्री महावीर स्वामी का जन्म-दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता रहेगा।

(२) पौष कृष्णा १० भगवान् श्री पार्श्वनाथ जी का जन्म-दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता पलाया जावेगा।

(३) श्रीमान् मुनि श्री चौथमल जी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन मोही में आम अगता रहेगा।

(४) मादा जानवर की शिकार जान कर नहीं की जावेगी।

(५) कोई पखेरु जानवर की शिकार निज हाथ से नहीं की जावेगी न जीमण में काम आवेगी।

(६) हरिण की शिकार नहीं की जावेगी न जीमन में काम आवेगी।

(७) निज हाथ से कोई जीव हिंसात्मक कर्म नहीं किया जावेगा। अलावा श्री जी हुजूर के हुक्म के।

ऊपर लिखे मुआफिक पूरे तौर अमल रहेगा लिहाजाः—

हुक्म नं० ८२
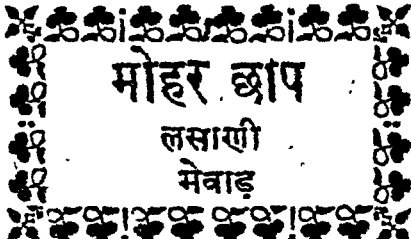
असलही कचहरी ठि० हाजा में भेज लिखा जावे कि अमूरात मुन्दरजा सदर की पावन्दी बावत खटीकान को हिदायत

करा दोगा और नकल इसकी सूचनार्थ भेंट स्वरूप श्री चौथमल जी महाराज की सेवा में भेजी जावे सं० १६८३ वैशाख कृष्णा १५ ता० १-५-२७ ई०

॥ श्रीराम जी ॥

॥ श्री रूपनारायण जी ॥

दस्तखत अंग्रेजी में ठाकुर साहिब के

मोहर छाप
लसाणी
मेवाड़

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमल जी महाराज का लसाणी में यह तीसरी मरतबा पधारना हुआ। और इस मौक़े पर तीन दिन विराज कर जो उपदेश फरमाया उससे चित्त प्रसन्न होकर नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है

(१) परिन्दे जानवर इरादतन नहीं मारे जावेंगे।

(२) श्रावण व भाद्रव मास में इरादतन शिकार नहीं की जावेगी।

(३) मादिन जानवर ईरादतन नहीं मारे जावेंगे।

(४) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथ जी का जन्म दिन होने से हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(५) स्वामी जी श्री चौथमल जी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन अगता पलाया जावेगा।

(६) ग्यारस अमावस के दिन शिकार जीमन में नहीं की जावेगी।

(७) श्रावण मास के सोमवारों को हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(८) श्राद्ध पक्ष में पहले से शिकार की दुकान का अगता पलता है वह अब भी बदस्तूर पलेगा। इसके अलावा पजूसणों में भी शिकार की दूकान का हमेशा के लिए अगता रहेगा।

(९) मच्छी व हिरन की शिकार नहीं की जावेगी।

(१०) स्वामी जी महाराज श्री चौथमल जी का यहाँ पधारना हुआ इस खुशी में इस मरतबा ५ बकरे अमरिये कराये जावेंगे।

(११) वैशाख मास में पहले से शिकार की रोक है उस माफिक अमल हमेशा के लिए रहेगा। लिहाजा—

हु० नं० ५९

नकल इसकी स्वामी जी श्री चौथमल जी महाराज के सूचनार्थ भेंट की जावे अगते पलाने की खटिकान को हिदायत कराई जावे। अमरिये बकरे कराने की नामेदार हस्ब शारिस्ता काररवाई करे सं० १९८३ ज्येष्ठ कृष्णा ४ शुक्रवार ता० २० मई सन् १९२७ ई०

७४॥ रामजी ॐ:—

श्री चतुर्भुज जी

सही ठाकुर साहिब की

मोहर छाप
ताल (मेवाड़)

जी महाराज के मुखारविंद का भाषण सुनने की इच्छा थी कि ईश्वर की कृपा से ता० २० मई सन् १६२७ ई० को पधारना होगया। आपका उपदेश सुन कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ इसलिए नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है।

(१) कार्तिक वैशाख महीने में शिकार नहीं खेली जावेगी बाकी महीनों में से प्रत्येक महीनों में ८ रोज के सिवाय शिकार बन्द रहेगी। अर्थात् २२ दिन शिकार बन्द रहेगी।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथ जी का जन्म दिन होने से हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(३) स्वामी जी चौथमल जी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन अगता पलाया जावेगा।

(४) प्रत्येक महीने की ग्यारस व अमावस के दिन शिकार जीमन में नहीं ली जावेगी।

(५) श्रावण मास के सोमवारों को हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(६) भाद्रपद्द में हमेशा अगता पलाया जावेगा और शिकार भी नहीं खेली जावेगी।

(७) स्वामी जी महाराज श्री चौथमलजी का ताल पधारना हुआ इस खुशी में इस मर्तबा इस साल के लागत के आने वाले करीब ६०-७० सब बकरे अमरिये कराये जावेंगे।

(८) पहिले भी महाराज श्री से त्याग किये हैं वे बदस्तूर पाले जायेंगे।

(९) पजूसणों में कतई अगता पाला जावेगा।

लिहाजा हुक्म नम्बर १११

नकल इसकी स्वामी जी महाराज श्री चौथमल जी के सूचनार्थ भेंट की जावे और अगता पालने की खटिकान को हिदायत कराई जावे अमरिये बकरे कराने की हस्ब शरिस्ते काररवाई करने की हिदायत बीड़वान नाथूभाटी को की जावे। विक्रम सं० १९८३ का ज्येष्ठ कृष्णा ६ ता० २२ मई सन् १९२७ ई० रविवार

श्री चतुर्भुज जी ॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप
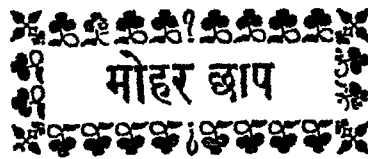
जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध उपदेशक मुनि महाराज श्री चौथमल जी का इस नगर बदनोर में सं० १९९० का मृगशिर कृष्णा सप्तमी को पधारना हुआ। आपके व्याख्यान गोविंद स्कूल में मृगशिर कृष्णा ११ व १२ को श्रवण किये। अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्रोताओं को भी पूर्ण लाभ हुआ। आपका कथन बड़ा प्रभावशाली है। जहां कहीं आपका उपदेश होता है, जनता पर बड़ा भारी असर पड़ता है। यहाँ भी यह नियम किया गया है कि आसोजी नवरात्रि में पहले से पाड़े बलिदान होते हैं उनमें

से आयन्दा के लिये दो पाड़े बलिदान कम किये जावें जिसकी पावन्दी रखाया जाना जरूरी है लिहाज़ाः—

हु० नं० ४४४

के वास्ते तामील असल शरस्ते खास में व एक-एक नकल महकमें माल व हिसाब दफ्तर में दी जावे और यह एक नकल इसकी मुनि महाराज श्री चौथमल जी की भेंट की जावे सं० १६६० का मृगशिर कृष्णा १२ मंगलवार तारीख १४ नवम्बर सन् १६३३ ईसवी।

श्री एकलिंग जी ॥ श्री राम जी ॥

सही

जैन सम्प्रदाय के पण्डित मुनि महाराज श्री चौथमल जी के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज मृगशिर सुदी ४ को व्याख्यान ततोली पधारने पर सुना। व्याख्यान परोपकार व जीवन-सुधार के बारे में हुआ। जिसके सुनने से मुझको व रियाया को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है इस मुताविकः—

(१) तीतर की शिकार मेरे हाथ से नहीं करूँगा।

(२) वटेर लावा की शिकार मेरे हाथ से नहीं करूँगा।

(३) ग्यारस, अमावस, पूनम शिकार नहीं करूँगा। न ततोली पटे में करने दूँगा।

(४) स्वामी जी महाराज श्री चौथमल जी के आने के दिन व जाने के दिन अगता पाला जावेगा।

(५) पौष विदी १० श्री पार्श्वनाथ जी का जन्म व चैत सुदी १३ महावीर स्वामी का जन्म होने से अगता रखा जावेगा।

(६) रामनवमी जन्मअष्टमी का भी अगता रक्खा जावेगा।

(७) नोरता में पाड़ा वध नहीं किया जावेगा।

सं० १९९० का मृगशिर सुदी ४

रामसिंह जी और जोरावरसिंह जी ने जीवन पर्यंत किसी जीव की हिंसा नहीं करने के त्याग किये और ढीकरे कँवर अमरसिंह जी ने हिरण की शिकार नहीं करने के त्याग किये।

दः रूपा साहब ततोली

श्री एकलिंग जी श्री रामजी

जैन सम्प्रदाय के पण्डित मुनि महाराज श्री चौथमल जी के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज मृगशिर सुदी ५ को व्याख्यान आमदला पधारने पर सुना। व्याख्यान परोपकार व जीवन सुधार के बारे में हुआ। जिसके सुनने से मुझ को व रियाया को बड़ा आनन्द हुआ। नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है इस मुताबिकः—

(१) तीतर व लावा बाटपड़ या जनावरा पर मैं बन्दूक नहीं चलाऊँगा।

(२) ग्यारस, अमावस, पूनम का पहले से ही अगता रहता है और अब भी अगता राखोगा।

(३) स्वामी जी महाराज श्री चौथमल जी के आने के दिन

अगता पाला जावेगा।

(४) पौष विदी १० श्री पार्श्वनाथ जी का जन्म चैत्र सुदी १३ महावीर स्वामी का जन्म है। इस लिए उस रोज अगता रखा जावेगा।

(५) वैशाख, श्रावण, कार्तिक इन तीन ही महीनों में मेरे हाथ से गोली नहीं चलाऊँगा।

॥ श्री ॥

नम्बर २८

राजेश्री कचेहरी ठि० नामली

महाराज श्री चौथमल जी की सेवा में—

आज रोज नामली मुकाम पर जैन-सम्प्रदाय के पुज्य श्री मुन्नालाल जी महाराज को सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री चौथमल जी महाराज के व्याख्यानों का लाभ हमें और प्रजा को मिला। उपदेश सुन कर बड़ी खुशी हासिल हुई। अतएव भेट-स्वरूप हम हमारे ठिकाने में हुक्म देते हैं कि मिति चेत सुदी १३ भगवान् महावीर जी का जन्म दिन है तथा पौष विदी १० भगवान् पार्श्वनाथ का जन्म दिन है। यह दोनों दिवस हमेशा के लिये अगता याने (पलती) रक्खी जावेगा। फक्त तारीख २४ माहे जनवरी सन् १९३३ सं० १९८९

मान महिपालसिंह

श्री चत्रभुज जी श्रीराम जी

साबत

श्री जैन-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि जी

महाराज श्री चौथमल जी महाराज के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज मृगशिर शुक्ला १४ तदनुसार ता० ३०-११-३३ ई० को असीम कृपा फरमा कर नादेसा जागीर को पवित्र कर व्याख्यान फरमाया जो जीव-सुधार व दया पर था, जिसके सुनने से बड़ी दिलचस्पी हुई। नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) हिरण, खरगोश, नार, शुवर, मगर, बकरा, मेंढ़ा के सिवाय किसी जानवर को मेरे हाथ से वध नहीं करूँगा।

(२) ग्यारस, अमावस, पूनम व श्रीमान् के पधारने व वापसी जाने के दिन अगता रहेगा।

(३) पोष विदी १० श्री पर्श्वनाथ जी का जन्म व चैत्र सुदी १३ महावीर स्वामी का जन्म होने से अगता रहेगा।

(४) रामनवमी, जन्म अष्टमी, कार्तिक, वैशाख, श्रावण, भादवा को अगता रहेगा।

(५) महीने में चार दिन के सिवाय शराब काम में नहीं लूँगा।

(६) इसी तरह काका जी जयसिंह ने भी अपने हाथ से किसी जानवर को वध नहीं करेंगे। अपने दिली चाह से पर-स्त्री गमन भी नहीं करेंगे। ऐसा नियम लिया।

सं० १९९० का मृगशिर सुदी १४ ता० ३०-११-३३ ई०

द० जयसिंह

द० नारायणसिंह

श्री हींगला जी श्रीराम जी

श्री जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध पण्डित मुनि जी महाराज श्री चौथमल जी के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज पोष वदी १ को असीम कृपा करके कोसीथल को पवित्र कर व्याख्यान फरमाया । जिसके सुनने से दिलचस्पी हुई और निम्न भेंट की ।

(१) ग्यारस, अमावस, पूनम महीने की सुदी ४ हर महीने की विदी ६ व श्रीमान् का पधारना होगा जिस दिन व वापस पधारे जिस दिन अगता रहेगा ।

(२) तीतर पर गोली नहीं चलावेंगे ।

(३) पाड़ो १ चोगानियो छूटे सो नहीं छोड़ागा ।

सं० १९९० पोष विदी १

द: राजचन्द्र सिंह

मुकरिया यह शिवसिंह वल्द पद्मसिंह जी ने भेंट नजर की—

(१) खाजरू, भीड़ा को लोह नहीं करूँगा ।

(२) हिरण पर गोली नहीं चलाऊँगा ।

(३) रिश्वत नहीं लूँगा ।

शिवसिंह मु० ठिकाकाना कोसीथल

॥ श्री ॥

मुनि श्री चौथमल जी महाराज का आज मिती पौष सुदी ७ संवत १९९१ को वनेड़िया में पधारना हुआ । व्याख्यान सुन कर के बहुत आनन्द हुआ । भेंटस्वरूप निम्न लिखित बातों का

प्रतिज्ञा पत्र लिख कर के महाराज श्री के नजर किया जाता है।

(१) जहाँ तक बन सकेगा महीने की दोनों एकादशी का व्रत (उपवास) वा अमावस्या के रोज एक वक्त भोजन किया जायगा।

(२) महीने की दोनों एकादशी माहवारी वा अमावस को अगता रक्खा जायगा।

(३) पौस विदी १० चैत सुदी १३ को अगता रक्खा जायगा।

(४) जन्मअष्टमी राधाष्टमी सक्रांति गणेश चौथ को अगता रक्खा जायगा।

(५) कार्तिक, श्रावण, वैसाख, अलावा पामणा परि के इन महिनों में अगता रक्खा जावेगा।

(६) शिकार इरादतन जरूरी के सिवाय नहीं की जावेगी।

(७) पर्यूषण हमेशा निभे जीं माफिक निभाया जावागा।

(८) एकादशी अमावस्या चड़स हलगाड़ी वग़ैरा बेलों से जोताई का काम नहीं लिया जावेगा।

(९) जो कुछ भी रकम मुनासिब होगा हर माह किसी नेक काम में लगाई जावेगा।

भोपालसिंह बनेड़िया

श्री
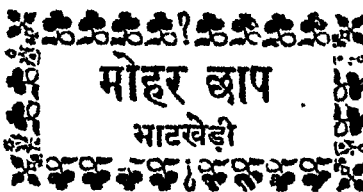
नंबर १३

ता० २८-३-३५

जैन-सम्प्रदाय के जगवल्लभ जैन दिवाकर सुप्रसिद्ध वक्ता

पण्डित प्रवर मुनि श्री १००८ श्री चौथमल जी महाराज के दर्शनों की मेरे दिल में बहुत अभिलाषा थी। सौभाग्य से महाराज श्री का भाटखेड़ी में तारीख २६-३-३५ को पदार्पण हुआ और कचहरी में आपके दो दिन प्रभावशाली व्याख्यान हुए। उपदेशामृत सुन कर चित्त बड़ा ही प्रसन्न हुआ। इस लिये मैं महाराज श्री के भेंट स्वरूप नीचे लिखी प्रतिज्ञाओं के विषय में यह प्रतिज्ञापत्र सादर नजर करता हूँ। इन प्रतिज्ञाओं का पूरी तौर से पालन सदैव होता रहेगा—

(१) इस ग्राम में पहिले से पर्यूषण पर्व व जन्माष्टम्यादि के धार्मिक अगते पाले जाते हैं उसी मुजब सदैव पाले जावेंगे।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथ जी का जन्म दिन होने से ये दो अगते भी अब आयन्दा सदैव पाले जावेंगे।

सदर प्रमाणे सदैव अमल रहेगा। शुभ मिती चैत्र कृष्णा ८ सं० १९९१ वि०

रावत विजयसिंह

श्री जा. ने.

२४

Thikana Raipur H. S. १६-५-१९३५ ई०

जैन सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध मुनि श्री. १००८ श्री चौथमल जी महाराज के दर्शन की हमें अत्यन्त आकांक्षा थी। ईश्वर की

कृपा से आपका पदार्पण ता० १५-५-१९३५ ई० को रायपुर ग्राम में हुआ। आपके यहाँ दो बड़े प्रभावशाली व्याख्यान हुए। आपके द्वारा उपदेशामृत पान कर के हम और हमारे यहाँ का कुल समाज अत्यन्त प्रसन्न हुआ। आप वास्तव में अहिंसावाद के प्रभावशाली व्याख्यान देने वाले महात्मा हैं। मैं महाराज श्री के भेंट स्वरूप निम्नांकित प्रतिज्ञाएँ करके प्रतिज्ञापत्र महामुनि को समर्पित करता हूँ।

(१) इस ग्राम में पर्यूषण पर्व व जन्माष्टमी पर धार्मिक अगते पाले जावेंगे।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्ण १० श्री पार्श्वनाथ जी का जन्म दिन होने से इन तिथियों पर भी धार्मिक अगते पाले जावेंगे।

(३) शराब एक दूषित पदार्थ है। इसका सेवन हम कभी आजन्म पर्यंत नहीं करेंगे।

(सही अंग्रेजी में)

राव जगन्नाथ सिंह

नकल हुक्म इजलासी महराज तेजराज सिंह जी साहब सरकार गेंता ता० ८-१-३६ ई०

श्री राघव जी महाराज

मोहर छाप गेंता — (सही अंग्रेजी में) तेजराज सिंह — नं० ४८७ नकल है

अज इजलास श्री सरकार साहब गेंता

ता० ८-१-३६

श्री चौथमल जी महाराज के फरमाने के मुआफ़िक कि श्री महावीर स्वामी जी के जन्म दिन चैत्र सुदी १३ व श्री पार्श्वनाथ जी भगवान जी के जन्म दिन पौष बुदी १० को अगता पाला जावे लिहाज़ा ये बात महाराज की मन्जूर की जाती है।

हुक्म हुआ कि

तामील को कामदारी में जावे। और एक नक़ल महाराज को भेजी जावे। फ०

रामगोपाल
सरिश्तेदार

नकल रुवकार इजलास खास राज्य इन्द्रगढ़ वाक़ै २३-१-३६
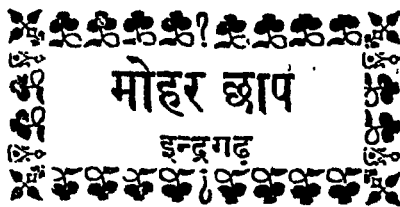
(सही अंग्रेजी में)

कामदार इन्द्रगढ़

आज मुनि श्री चौथमल जी का उपदेश कोठी खास पर हमारे सामने हुआ। उसके उपलक्ष में मुनि महाराज की इच्छानुसार साल में दो तिथियों पोष बुदी १० व चैत्र सुदी १३ पर राज्य इन्द्रगढ़ में अगता यानी पशु-वध न किया जाना स्वीकार किया जाता है—

हुक्म हुआ

पुलिस निजामत व तहसील बारह गाँव को इत्तला दी जावे कि इस हुक्म की पाबन्दी होती रहनी चाहिए। एक नकल

इसकी मुनि महाराज को दी जावे । कागज़ दर्ज रजिस्टर मुतफ़रक़ात माल होकर दाखिल दफ्तर हो ।

(सही अंग्रेजी में)

[आवाराज]

श्री हुजूर की आज्ञानुसार आपको विनम्र सूचना दी जाती है कि आपकी इच्छानुसार चैत्र सुदी १३ को जहाँ तक श्रीमान् आवागढ़ नरेश का प्रभाव चल सकेगा जीवहिंसा रोकने की चेष्टा की जायगी । श्री स्वामी श्री चौथमल जी को विदित हो कि हमारा राज्य जमीदारी है । और हमको कानून बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं है । इसलिए हुक्मन यह आज्ञा जारी नहीं की जा सकती । केवल प्रभाव से ही काम लिया जाना सम्भव है । ता० १-३-३७ ई०
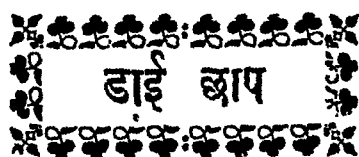
Raja's F0rt
Mainpuri

ता० १६-३-३७

श्री पूज्यवर श्री मुनि चौथमल जी महाराज मेरा प्रणाम स्वीकार हो—

मैं बहुत-बहुत धन्यवाद आपकी कृपा का करता हूं कि आप कष्ट करके यहां पधारे । और उत्तम उपदेश सुनाये जिससे चित्त बहुत प्रसन्न हुआ । सौभाग्य से आपके दर्शन हुए (बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता) अब आप की आज्ञानुसार कुछ लेख सेवा में भेज रहा हूं । उदेपुर व रतलाम के महाराजा लोग स्वतन्त्र हैं

वो कानून अपने यहाँ हर तरह की जारी कर सकते हैं। यहां विशेष अधिकार गवरमेण्ट का है। यह आपको विदित ही है। जहां तक मुमकिन होगा आपके उपदेश के मुआफ़िक कोशिश की जावेगी। विशेष क्या लिखूँ। कृपा बनाये रखिये।

राजा बहादुर राजा शिवमङ्गल सिंह

इति शम्